

**TEXT CUT WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180689

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83

Accession No. H 2716

Author

M 68N

Title

उपनिषद्
महाभारत

This book should be returned on or before the date last marked below.

नष्ट नीड़

नष्ट नीड़

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखिका

उषादेवी मित्रा

प्रकाशक

नैशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क :: दिन्ली

१६५५

मूल्य
चार रुपये

इकूमतलाल द्वारा
विश्वभारती प्रेस
पहाड़गंज, दिल्ली में मुद्रित ।

[१]

वादल गरजता, विद्युत् कड़कती और तब वर्षा भर पड़ती—भर भर भर भर । मानो विश्व-युद्ध के गोला-बारूद और गोल्फ़-गण एकत्र होकर आकाश में महायुद्ध कर रहे हों । पवन की उन्मत्त-गति से जाने कितने वृक्ष, वृक्ष-शाखाएँ, टूटकर गिरती, वर्षा में भीगे हुए काग, उम दिन सुप्त गृहस्थों के घर उत्पात करना भूलकर अपने पंखों को दबाए वृक्षों पर बैठे थे, वर्षा की बूँदें जब तेजी पर आती तब हवा कुछ कम हो जाती, शहर में तीन दिन में एक-सी वर्षा थी, तो भी कलकत्ता के पथ पर कहीं पानी रुका हुआ नहीं था ।

मुनन्दा की नींद खुली, अकुला कर वह उठ बैठी और कुछ देर सामने की खुली खिड़की के प्रति देखती रही, कदाचित् रात में देखे हुए स्वप्न की स्वप्निल छाया, तब भी उसके मन के प्राण में घुमड़-घुमड़ कर अपना अस्तित्व और अस्तित्व की काया के विषय में—सजग कर रही हो । जम्हाई लेकर उसने अपने बिखरे बालों को दोनों हाथों से समेट कर बाँधा, तब उसे ध्यान आया कि बिस्तर की चादर एवं उसका आधा शरीर वर्षा में भीग चुका है और वह सोती ही रही आई । मुनन्दा ने लौट कर देखा, मुप्रकाश का पलंग ग्वाली है—मुप्रकाश, कब उठकर चला गया, वह कुछ नहीं जानती, जाते समय मुप्रकाश ने खिड़कियाँ खुली छोड़ दी होंगी या तो भूल गया होगा और तब पानी की बौछार ने सब भिगो दिया ।

वैसी ही मुनन्दा, उठकर खिड़की के निकट पहुँची, पथ पर चलाचल कम था । दूर से ट्राम की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, छत्री सिर पर ताने

कोई कठिनाई से पथ अतिक्रम करता, पवन के तीक्ष्ण प्रवाह से धाता मस्तक पर स्थिर रखना भी कठिन था। बौछार से सुनन्दा भीग रही थी और अनमनी-सी देख रही थी। बिजली कड़की, मेघ गरजे, सुनन्दा खड़ी ही रही आई। सोच उठी वह—क्या संसार के रोदन में आज विश्व का हर्ष डूब मरा है?—विचारती हुई सुनन्दा वर्षा की बूंदों के साथ पवन का मल्लयुद्ध विस्फारित नेत्रों से देखने लगी।

गुनगुनाकर कहने लगी सुनन्दा—उस दिन की तरह आज भी संसार के रोदन में विश्व का हर्ष डूब मरा है और डूबता ही चला जाएगा।

मेज पर रखी हुई घड़ी में आठ की घंटी बजने लगी, चौक कर सुनन्दा ने घड़ी के प्रति देखा। बुड़बुड़ाई, आज मैं कितना सोई? आठ बज गए और उन्हें नौ बजे भोजन देना है, साढ़े नौ बजे उन्हे स्कूल पहुंचना है।

जल्दी उसने पलंग की चादर फटकार कर बिछाई, भाड़ू लगाया, मेज-पोश भाड़ा, उस पर रखी हुई दो-चार पुस्तकों को तथा राईटिंग पैड, दवात, कलम आदि को व्यवस्थित किया, कुर्मियाँ तथा कोन की आराम-कुर्सी को पोंछा, फिर घड़ी में चाबी दी, निकट की तिपाई पर रखे हुए जलपूर्ण कांसे के गिलास को उठाकर बाहर रखा, और भाड़ू में जल्दी-जल्दी कमरे को भाड़कर साफ किया, तब कमरे के दूसरे द्वार को खोलकर छोटी-सी कोठरी में पहुँची। वहाँ टूटी-सी अलगनी पर दो-चार साड़ियाँ, ब्लाउज, पेटिकोट रखे हुए थे, दीवार पर लगी अलगनी पर साधारण कोट, पेन्ट लटक रहे थे, एक और टूटे, अध-टूटे टिन के कई टुक, सूटकेस जमीन पर सुव्यवस्थित रखे थे, और थे दो-चार जोड़े जूते, दूसरी तरफ की दीवार पर धुंधला-सा दर्पण लटकता था और उसके नीचे टेबल पर तेल-कंधा आदि। कोठरी में लगा हुआ वाथ-रूम और पाखाना। सुनन्दा ने शीघ्रता से एक साड़ी खींच ली, हाथ में थोड़ा तेल लेकर सिर पर डाला फिर स्नान कर सकरी सिढ़ियों को तय करती हुई नीचे पहुँची।

अपने वृहत् मिट्टी के आंगन के प्रति उमने देखा। वर्षा ने नहीं, किन्तु आंधी-तूफान ने उसके कुम्हड़ा, लौकी, तोरई आदि के पौधों को छिन्न-भिन्न कर डाला था, भटे और टमाटर के पौधों की दशा देखकर वह स्तब्ध रह गई।

देखा मो देखती रही, देखती रही आई, मुनन्दा, देखते-देखते वह मुसकरा पड़ी—पीड़ित व्यथा म्लान वह मुस्कान; अरे सब कुछ खोकर तुच्छ पौधों के प्रति यह मोह ? मानो उसके मन में बैठा कोई प्रघ्न कर उठा। अपनी जड़ता को दूर कर वह दालान में पहुँची। मिट्टी का दालान वर्षा की वौद्यार से भीगकर कीचड़ हो रहा था, आंगन के केले, कठहर के वृक्षों के निकट तल के नीचे पड़ा हुआ वृहत् चीप, उगी चीप पर मुनन्दा ने हाथ के भीगे दस्त्रों को रखा, फिर भंडार खोल कर सामान निकाला, दालान से लगी हुई दो छोटी-छोटी कोठरियाँ, आंगन के उस ओर रसोई-घर और बैठक थी। दरिद्र पल्ली में शहर के एकान्त में वह मुनमान गृह था।

रसोई में प्रवेश कर चूल्हा जलाया, फिर एक ओर दान दूसरी ओर भात चढ़ाकर राग के रखे हुए, जूटे बर्तन, उमने माफ किये, दर्मान की लकड़ी फूँकते-फूँकते धुएँ में उमका गौरवर्ण मुख रत्ताभ हो उठा और आंखे लाल हो गई।

अ स्त पाकर मुनन्दा ने मुड़कर देखा, मनीश पर दृष्टि पड़ते ही वह सहमी। उसके सद्यस्नात बिखरे मेघ-नील कुन्तल वालों से, वूँद-वूँद कर मुक्ता-बिन्दु-मा पानी भरता। वह जल्दी में ब्याउज नहीं पहन सकी थी। मोटी किन्तु परिष्कृत साड़ी का आँचल खींचकर उमने मस्तक ढाका, हृदय पर आचल के पल्ले को दुहराया, हँसकर नन्दा बोली—“ऐसी वर्षा में ? ऐसा एक दुर्दिन, आप यहाँ तक कैसे पहुँच सके, मनीश बाबू ?” हँसती जाती वह—भरे हुए मुट्टी भर वासी चमेली की तरह वह हँसी।

“परन्तु मुझे यह पर्दा कैसा भाभी ? क्या मैं तुम्हारे खुन हुए

बालों से भरते हुए पानी को नहीं देख सका हूँ ?”

इस प्रश्न ने नन्दा के मन में प्रसन्नता या विरक्ति अथवा लज्जा उपजाई सो कह सकना कठिन है। उस मुख को देखकर किसी निष्कर्ष तक पहुँचना असंभव है ?

वैसी ही मुसकान के साथ वह बोली—“बैठिए तो। यही बैठेंगे ? वे बाहर नहीं है क्या ?”

इतने ढेर से प्रश्नों का जब कोई उत्तर न मिला तो कोने से मोढ़ा खीचकर मनीश को बैठाया, कहा—“अभी चाय देती हूँ, गरम चाय पीकर ताजे हो जाइये।”

मनीश मोढ़ा पर बैठकर मुसकराया—“तो क्या अब तक मैं बासी हूँ ?” दोनों हँस पड़े।

जल्दी-जल्दी मटरी बनाती हुई कहा नन्दा ने—“आपकी मोटर की आवाज तक न मिली।”

“अफमोस हो रहा है न भाभी ?”

बड़ी-बड़ी आँखों में विस्मय उभार कर नन्दा ने पूछा—“क्यों ?”

मिगरेट का धूम्र गोलाकार में छोड़ता हुआ मनीश बोला—“क्यों ?” क्योंकि हार्न सुन पाती तो मेरी भाभी अपने घने, लम्बे चँवर में बालों के छोर से भरते हुए ओम के विन्दुओं को देवर की आँखों से छिपा न लेती ? क्या यह कम अफमोस की बात है कि मैंने उन बालों का पूरा सौंदर्य देखा ही नहीं वरन् कुछ क्षण तक उस सौंदर्य का उपभोग भी कर लिया।”

उसके कहने के ढंग से सुनन्दा, खिलखिला कर हँस पड़ी, जब हँसी रुकी तो कहा—“आप खामे कवि बन बटे हैं।”

“मेरी भाभी कवियित्री, और मैं न बन् कवि ?”

“भाभी ? आपकी कौन-सी भाभी की बात कह रहे हैं ?”

“क्या मेरी दस-बीस भाभियाँ हैं ? बस एक तुम ही तो—नन्दा भाभी !”

नन्दा ने जबरन विस्मय को मुख पर बखेर कर कहा—“मे ?

“नही, नही, मैं क्या जातूँ कविता-भविता !”

“फिर भूठ ।”

नन्दा तब निकट गरम मटरियों की तश्तरी लिये खड़ी थी ।

“फिर भूठ ?” कहते हुए मनीश ने उसका हाथ पकड़ा “और मुझी मे भूठ ? क्या तुम कविता मे अपना नाम ‘विद्रोहिणी’ नही दिया करती हो ?”

मुनन्दा कुछ कहने को हुई । द्वार पर सुप्रकाश खड़ा था । उसके मुख पर दृष्टि पड़ते ही वह स्तब्ध रह गई ?

वह ?—वह दृष्टि ! नही, वैसी एक दृष्टि मे तो मुनन्दा का परिचय नही हुआ था न अब तक ।

सुप्रकाश को लौटते देखकर, आश्चर्य मे मनीश ने पुकारा—“अरे प्रकाश, आओ तो मही, देखो भाभी ने कैसे गरम मटरी बनाए है । और ऐसे अच्छे कि मुँह मे डालते ही गल जाएँ !”

मित्र के पुकारने मे केवल वह “हँ” ही कह सका ।

मुनन्दा ने कहा—“रमोई तैयार है, नहाकर आ जाओ ।”

“अच्छा” कह कर प्रकाश चल दिया ।

दो मिनट पहले, जिस वातावरण मे खुशी, आमोद की वायु मँडरा रही थी, वही पल भर मे गम्भीरता, एक अपार चिन्ता मे परिपूर्ण हो उठा । नन्दा को जैसे...वायु मे मँडरानी हुई लज्जा उसकी जीवनी शक्ति को भी पल-भर मे चूस लेवेगी ।

सुप्रकाश की अकारण विरक्ति जिस बात का निर्देश कर रही थी, वह जैसी तो अभद्र थी वसी ही असहनीय भी । उस वातावरण की कदर्यता को सदा की भांति, दोनों हाथों से दूर टेलकर हठात कह उठी नन्दा—“आपने छिप-छिपकर मेरी कविताएँ पढ ली है ?”

बात करने का विषय पाकर, जैसे मनीश का मन हल्का हो उठा,

बोला—“अजी, वाह, भाभी साहब, तुम्हारी कविताएँ, मासिकों में छपे और उन्हें पढ़ने वाला चोर बने ?” फिर जरा रुककर कहने लगा—“किन्तु मुझे लगता है भाभी कि कविताएँ बस, आहों से भरी हुई हैं। जैसे कि किसी अत्याचार पीड़िता की हृदयग्रासी आह ! और कल रात तो मुझे पढते-पढते ऐसा लग रहा था कि एक आहों की दुनिया ही मे मे रमा हुआ हूँ।” सुनन्दा जरा-सी मुसकरा दी—मानो कर्ज ली हुई वह मुसकान। सुनन्दा को देखता हुआ मनीश कह उठा—“एक बात और।” एवं नन्दा के तूलिका से खींचे हुए भौंहों के नीचे की तनी हुई आँखों की जिज्ञासा के प्रति देखता हुआ वह बोला—“जब तुम मुझसे बच्चों की तरह हँसी-मजाक करती हो, तब ऐसा भला लगता है भाभी कि भाभी को गले से लगा लूँ, लेकिन जब तुम तर्क करने बैठ जाती हो, तब सच कहता हूँ, मुझे ऐसा डर लगता है, सम्भ्रम जाग उठता है कि क्या कहूँ।”

“डर लगता है और मुझसे ?”

“हाँ जी—भाभी, उस पर उन तर्कों का न कोई उत्तर दे पाता हूँ, और न कुछ। यद्यपि सुप्रकाश और तुम मेरे थोड़े दिनों से परिचित हो, लेकिन जब तुम भोली हँसी हँसने लगती हो तब ऐसा लगता है...”

सुनन्दा ने मध्य में ही बात दूसरी ओर मोड़ दी, सतर्क दृष्टि में उसने द्वार की ओर देखा, उसे भय था कि कहीं यह शिशु-स्वभाव का युवक पुनः न कह उठे कि “तुम्हें गले लगा लूँ।” जल्दी में वह बोली—“कहाँ तो सही, मटरी कैसे बने है ?”

“बढ़िया,—तुम्हारे हाथ की सब चीजे अच्छी बनती है। इंग्लिश डिशें खाते-खाते ऊब गया। फिर किया भी क्या जाए ? घर में सिर्फ मैं हूँ, और दादा, और हैं खनसामा, बेयरा आदि। टंड लग रही है अब घर चलूँगा।”

“क्या घर में पहुँच कर गर्म हो जाइयेगा ?”

“हाँ जी, थोड़ी ह्विस्की ले लूँगा ।”

इस उच्छ्रंखल किन्तु शिशु-से स्वभाव के युवक को न जाने क्यों सुनन्दा इतना स्नेह करती थी कि उस स्नेह की तुलना भी कभी नहीं कर पाती । कहा—“यद्यपि आज हमारे हिन्दुस्थान में एक ऐसा समाज है, जहाँ मद्य-मेवन उच्च-सभ्यता का अंग विशेष है, किन्तु यह चीज़ ऐसी है मनीश बाबू, कि बढ़ती ही चली जाती है ।”

“माफ़ करो भाभी, तर्क नहीं, नहीं, नहीं । ऐसा सुन्दर सवेरा—तर्क में बर्बाद मत करो, आज की स्मृति ताजी रहने दो, अन्त तक घर जाने तक ही सही ।”—उसका नाटकीय ढँग से कहना, हँस पड़ी सुनन्दा और हँसती ही रही आई ।

मुद्रकाश के गम्भीर मुख की गम्भीर छाया तक उस भरने-सी हँसी के निकट द्वार मानकर बह गई ।

“बाहर आंधी-पानी, और भीतर हँसी का तूफान” पीढ़े पर बैठता हुआ बोला प्रकाश ।

“यह तर्क में डरते हैं ।”—थाली मुद्रकाश के सामने रखकर बोली सुनन्दा ।

“मैं भी डरता हूँ मनी । केवल तर्क ही नहीं, अजी जब यह अपनी कटु जानकारी कहने लगती हैं तब मैं डर जाता हूँ, समझे मनी । तब ऐसा भागता कि हफ्तो घर नहीं लौटता ।”

मुस्करा कर सुनन्दा ने खड़ी का कटोरा प्रकाश के आगे रखा—

“जल्दी में केवल, दाल, चावल और एक तरकारी ही बना पाई हूँ, खड़ी और केला से खा लो ।”

“चलूँ भाभी, प्रकाश, चलो बीच में तुम्हारा स्कूल पड़ता है, छोड़ता जाऊँगा, अरे भाभी, देखा भाभी कैसा भुलक्कड़ हूँ, जिस लिये आया, वही भूल गया, कल मेरा जन्म-दिन है ।”

“सच !”

“हाँ, दादा ने तुम्हें आज बुलाया है। पूरी व्यवस्था तुम्हारे सिर पर है? समझी।”

“अच्छा” धीमे स्वर से वह बोली।

“गाड़ी कब भेजूँ?”

“दोपहर में भेज दीजिये।”

“चलो भाई देर हो रही है। दादा मेरी राह देख रहे होंगे। कितना खाते हो? यों प्रकाश, आज रात में तुम और भाभी, वही भोजन करना, दादा ने विशेषकर कह दिया है।”

[२]

तीन दिनों की विरामहीन वर्षा के बाद बूँदें तब बन्द थी। कभी मेघों की आड़ से सूर्य भाँक उठता। मुट्टी भर धूप की भिल-मिली का शहर निवासी आनन्द से निहारते। मानो वर्षों बाद कोई अमूल्य निधि मिल गई हो।

तब सुनन्दा गृहकार्य समाप्त कर साफ-सुथरी साधारण काले कोर की साड़ी पहने तैयार बैठी हुई थी। बालों में कंधा कर एक बड़ा-सा जूड़ा वह पहले ही बाँध चुकी थी। जेवर उसे पहनना नहीं था। होते तो शायद पहन भी लेती। स्वर्ण के नाम से जाने कब के बने पुराने फूल कान में पड़े हुए थे। गाढ़े नीले रंग की काँच की चूड़ियों में एक हाथ में केवल एक बच रही थी, दूसरे में दो।

चमकती हुई कार पहुँच गई। फटे चप्पलों को घसीटती उसने बाहर के द्वार पर ताला बन्द किया। फिर चाबी अपने हैडबैग में रख कर गाड़ी पर जा कर बैठ गई। सुन्दर-दर्शन में था केवल उसके हाथ का

चमड़े पर मुन्दर चित्र अंकित वही बेग और स्वयं वह । यह बेग उसने बना लिया था सो भी चमड़ा मनीश ने लाकर दिया था । और बनाने के लिए यन्त्रादि भी । सो उसने दो तो मनीश के फरमाइश अनुसार उसे बनाकर दिए । एक सुप्रकाश को और बचे हुए चमड़े से स्वयं अपना बेग बना लिया था ।

गाड़ी उड़ती-सी चलती चली जाती । भीतर बैठी हुई सुनन्दा का जी अस्वस्थ हो रहा था । इन दिनों जब भी वह मोटर पर बैठती, आँसू की बूँदों से जी उसका भर उठता—वे ही बूँदें जिन्हें कि उसने जबरन मन के किसी एकन्त कोने में छिपा कर, दबा कर रख छोड़ा था । वे ही बूँदें जिन बूँदों का इतिहास केवल मन की व्यथा से ही सना हुआ नहीं था, वरन् हृदय की खूनी आहों में ओत-प्रोत था । हाँ, हिन्दुस्थान में पहुँचने के बाद । नहीं—नहीं । अपने इस नवीन जीवन, नवीन प्रेम, नए वातावरण में आने के बाद से उसका हृदय प्रण था कि आँसू की बूँदें मन के कोने में ही रहेंगी आवेगी । कहीं उसके यह निर्दयी माथी आँसू संसार के सामने व्यक्त हो कर उसे केवल दर्शनीय मात्र, किसी की मौखिक दया की पात्री न बना दें ।

तब वह उसकी पराजय होगी न, अपमानित पराजय । स्वार्थी पुरुष के सामने नारी की हार । पशु तुल्य नर के सामने नारी की पराजय । पशु ? किन्तु इस जीवन में आने के बाद में शायद पुरुषों को वह कपटी, निर्दयी, पशु और जानें क्या-क्या समझने लग गई ।

कार चलती चली जाती, पथ की धूल गोलाकार उड़ती—गाड़ी के पहियों की रगड़ में । और तब उस धूल के प्रति निहारती हुई उसकी आत्मा अकुला उठती । यह गाड़ी ? परन्तु उसकी अपनी कार—

अरे यह क्या से क्या सोचने बैठ गई है आज इतने दिनों के बाद सुनन्दा ? दाँतों पर दाँत दबाकर उमने अपने आपको नियन्त्रित कर लिया ।

वृहत् उद्यान के लौह फाटक के सामने कार आकर रुकी । सुनन्दा उतरी, द्वार पर हास्य-मुख, सौम्य-दर्शन वृद्ध श्रीनाथ खड़े थे । सुनन्दा ने उन्हें प्रणाम किया । श्रीनाथ ने सुनन्दा के मस्तक पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया—“सावित्री के समान हो । तुम्हारी ही राह देख रहा था । सब काम पड़ा हुआ है । इतनी देर क्यों लगाई ?”

“नही तो दादू, गाड़ी पहुँची कि मैं बैठ गई । कब से तैयार बैठी थी ।”

“तुम कहाँ गए थे जी ?” श्रीनाथ ने ड्राइवर से पूछा ।

“छोटे साहब ने मुझे दुकान पर भेजा था, वहाँ देर लग गई ।”

“चलो दादू, जल्दी-जल्दी काम करना है ।”—कहती हुई सुनन्दा अन्तःपुर पहुँची, पीछे-पीछे श्रीनाथ ।

इस जीवन में आने के बाद यदि सुनन्दा के हृदय में किसी पुरुष के लिए कुछ श्रद्धा बच रही हो तो इसी श्रीनाथ के लिए । पाश्चात्य रहन-सहन किन्तु प्राच्य सभ्यता के मतावलम्बी इस पुरुष को न जाने क्यों वह श्रद्धा करती, और कदाचित स्नेह भी करने लगी हो तो विस्मय नहीं । हाँ, पिता के समान वह स्नेह ।

श्रीनाथ को घर और बाहर सब पुकारते ‘दादा’, कोई अधिक सम्मान प्रदर्शन कर कहता ‘दादा जी’ । वही एक थी जो सबसे निराले ढंग के सम्बोधन से सम्बोधित करती । पुकारती—‘दादू’

उस दिन पड़ोस की यमुना देवी ने कहा था—“इस सुनन्दा लड़की की सब बातें निराले ढंग की होती हैं ।”

“क्यों ?”—पूछा दादा ने ।

“देखो न दादा, हम सब तो तुम्हें दादा जी कहते हैं और वह कहती है दादू ।”

“फिर इसमें बेढंगापन कहाँ है यमुना ?”

“है ही, अजी दादा, दादू भी कोई पुकार है ?”

तब वृद्ध जरा-सी स्नेह भरी हँसी हँसकर कहने लगा था—“उसे ममभ सकना जरा कठिन है यमुना । सब लोग जिम काम को करते हैं, कहते हैं, मेरी नन्दा को वह पसन्द नहीं । लड़की मुझे और भी निकट अपनाना चाहती है । अपने दादू को वह दादू ही बनाकर रखेगी । दूसरे के दादा को वह क्यों अपनाने चली ? जूँठन पर उसे कोई ममता नहीं । वह तो माक्षात लक्ष्मी है लक्ष्मी ।” बस उसी दिन से श्रीनाथ सुनन्दा को लक्ष्मी कहने लग गया । और अपमानित-सी यमुना चल दी थी ।

हाल में पहुँच कर सुनन्दा ने सूक्ष्म दृष्टि में चहुँ ओर देखा, फूल-पत्तों में हाल सजा हुआ था ।

“यही चाय-पान होगा न ? अभी बहुत काम बाकी है । एक डार्डनग टेबिल में काम नहीं चलेगा दादू, और कई छोटे-बड़े टेबिल चाहिए । यह पियानो बीच से हटाना पड़ेगा । मीताराम, विन्दा, तुम दोनों इसे उठाकर उम कोने में रखो । यों नहीं, जरा तिरछा करके रखो ।” इसके बाद वह क्षिप्रता से काम में जुट गई ।

श्रीनाथ ने कहा—“यह सब पीछे होता रहेगा । पहले उस घर में जाकर देखो कि फल, मिठाइयों, केक, पेस्ट्री आदि जो आए हैं, वह सब कम तो नहीं पड़ेगे ? और लक्ष्मी कचौरी तुम बनाओगी । चाय आदि वावर्ची को बतला देना, अकेली तुम कहाँ तक करोगी ?”

हँसकर वह बोली—“सब कर लेंगी दादू, तुम तब तक जाकर जरा आराम कर लो, नहीं तो जी खराब हो जाएगा । अभी बारह बजे हैं । पाँच बजे कही पार्टी है । समय बहुत है ।

स्नेह भरी दृष्टि नन्दा के परिपुष्ट शरीर पर डालता हुआ वृद्ध बोला—“नुम्हारी तरह मेरी लक्ष्मी बिटिया रहते हुए मैं सोचूँ ही क्यों ? लड़की की आँख चारों तरफ है, मुझे कब आराम की जरूरत है, कब भोजन की, वह सब जानती है ।”

जरा-सी मीठी हँसी बिखेर कर सुनन्दा चल दी ।

भारी नारंगी रंग का पर्दा हटाकर जब सुनन्दा श्रीनाथ के कमरे में पहुँची, तब श्रीनाथ दिवा-निद्रा समाप्त कर एक छोटी सन्दूकची लिए बैठे हुए थे ।

“तुमने बुलाया है दादू ?”—मैदा सने हुए हाथों को लटकाए हुए सुनन्दा ने पूछा ।

“हाँ, जरा इधर आओ लक्ष्मी ।”

सुनन्दा निकट पहुँची । श्रीनाथ ने सन्दूक से दो पुराने चाल के मोटे, भारी कड़े निकाले और उसके मैदा सने हाथों में एक-एक कर डाल दिया, कहा—“उस दिन तुमने मुझे हीरे की अँगूठी वापस करवा दी थी ।”

“मैं जेवर-ओवर नहीं पहनती दादू ।”

श्रीनाथ हँसे—“ठीक है, उस दिन तुम दादू की दी हुई अँगूठी वापस कर अँगूठी का नहीं किन्तु आपने दादू का अपमान अनायास कर मर्की थीं, परन्तु इन कड़ों की बात निराली है । यह कड़े तुम्हारी मृत दादी जी के हाथ के हैं । अब निकालो तो सही इन्हे ।”

ना समझ-सी सुनन्दा कुछ देर चुप खड़ी रही । फिर सहसा दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया । वह प्रणाम उन कड़ों की अधिकारिणी उम मृत आत्मा के लिए शायद हो । और फिर चलने के लिए लौटी ।

भोला भृत्य पहुँच गया—“साहब दुकान से यह बिल आया है ।” हाथ बढ़ाकर नन्दा ने बिल लिया—एवं श्रीनाथ को दे दिया । भोला में बोली—“तुम चौका देखते रहना, मैं अभी आ रही हूँ ।”

श्रीनाथ तब बिल देख रहे थे । उस श्रावण मास में भी ललाट पर मुक्ताविन्दु से स्वेद-विन्दु झलकने लगे । अपने आप मुँह से निकला—“मनीश इतनी विह्वली पीने लगा है !”

बिल टेबिल पर पड़ा हुआ था, कौतुक में नन्दा ने उस पर आँखें फेरी ;

वह मिहर उठी, स्थाणुवत् अचल वही जम-सी गई ।

“दादू !”—देर के बाद उसने पुकारा ।

उस गंभीर स्वर ने श्रीनाथ को चकित कर दिया । उसने नन्दा के प्रति देख भर लिया ।

• “मनीश बाबू इतना शराब पीते है, आप उन्हे क्यो नही रोकते ?”

“पहले मनीश इतना नही पीता था । वैरिस्टरी पढ़ने विलायत क्या गया कि शराब पीना सीख गया । सचमुच लक्ष्मी, मे नही चाहता था कि मनी विलायत जाए । क्या करूँ, बिना मा-बाप का लड़का था, जब वह ज़िद्द करने लगा तब ‘नाही’ नही कर सका । वहाँ मे लौटकर मेरा मनी शराबी बन गया है ।”

“तुम उन्हे रोको न दादू ।”

“सोचता हूँ रोकूँ ।”

“तो ?” कौतुक से नन्दा ने पूछा ।

“नही रोक सकता लक्ष्मी, जी दुखता है । लगता है उसकी चाह की, पसन्द की चीजो से क्यो रोकूँ ? बच्चा दुःखी हो जाएगा ।” और ज़रा रुक कर कहने लगे श्रीनाथ—“यह जो आज का मेरा घर, रहन-सहन देख रही हो न, पहले ऐसा नही था । मे एक पुराने विचार का आदमी उभी हूँगे मे रहता था । परन्तु पीछे मनी की पसन्द के अनुसार सब कुछ बदलता पड़ा । और वृद्धापे से मे भी अपट्टेड बन बैठा ।” कह कर वृद्ध जो खोल कर हँस पड़े । हँसी रुकी तब कहा—“इतना धन, सम्पत्ति मेरे किस काम का ? सब उभी का तो है न । मुझे कितावे चाहिएँ सो मेरी यह लायब्रेरी है ही । जानती हो लक्ष्मी, मनी को किस स्थिति मे मेने पाला ? हमके माता-पिता मनी को जन्म देकर ही हैजा के शिकार बने । वह मेरा इकलौता बेटा था । बेटे और बहू के शोक से गृहिणी ने ऐसा पलंग पकड़ा कि वर्षो बीमार रही आई । वे फिर कहाँ उठी ? नौकरों पर क्या भरोसा ? मे स्वयं उनकी और मनीश की सेवा किया करता । रात मे

मनी मेरी छाती पर चढ़ कर सोता था ।” वृद्ध ने आँसू की दो बूँदें पोंछीं । “मनी को उसके मनोनीत किसी भी काम से, इच्छा में रोकने मुझे सीने पर भारी धक्का लगता है, नन्दा ।”

स्तब्ध निर्वाक् खड़ी सुनन्दा श्रीनाथ के हृदय के खेद की गहराई को नापने-तौलने-सी लगी और एक समय वह सोच उठी—कैसा अन्धा 'दादू का यह स्नेह है—जो कि अपने प्रिय को, ममत्व की वस्तु को कीचड़ में सनते हुए देखकर भी नीरव रहे, अन्धे कूप में गिरते देखकर भी रोक न सके ?

गम्भीर विस्मय से सोचती जाती नन्दा—यह कैसा प्रेम है जोकि अपने प्रिय को अग्नि के प्रकोप से बचाने की चेष्टा नहीं करता ?

क्या है यह ? दूसरे पल अन्तःकरण से उत्तर आया । यह केवल कापुरुषता और दुर्बल मन की कमजोरी है । नहीं-नहीं । कहाँ प्रेम ? कैसा ममत्व । वरन् कोरा स्वार्थ ही है । नन्दा द्रुत एक सिद्धान्त के प्रवेश-द्वार तक पहुँची—ऐसा एक स्वार्थी पुरुष श्रद्धा, व सम्मान का पात्र नहीं बन सकता है । नहीं, कभी भी नहीं ।

सोचने को तो इतना सोच गई नन्दा । किन्तु न जाने क्यों श्रीनाथ के प्रति उसकी श्रद्धा द्विगुणित हो गई । कदाचित् यह बात उसी के निकट तक अनजान रह गई हो ।

[३]

तांगे, रिक्शा और मोटरों से श्रीनाथ के गृह का पथ भर उठा । गाड़ियाँ आती ही चली जा रही थी । ड्राइंग-रूम में वृद्ध हँस-हँसकर अतिथि-अभ्यागतों का स्वागत कर रहे थे । नाना वर्ण के स्त्री-पुरुष तथा उनके विचित्र वस्त्रों की विचित्रता दर्शनीय थी ।

मनीश को कचहरी में देर लगी। जब वह घर पहुँचा तब घर में भीड़ थी। उपहारों की बारी आई। नाना प्रकार के फूल के तोड़े, मालाएँ और जाने क्या-क्या। किसी ने रुमाल दिया, किसी ने फोटोफ्रेम, राइटिंग पेड। श्रीमती चौधरी का उपहार का छोटा-सा वेलवेट केस खोलकर मनीश हँस पड़ा—“चौधरानी जी, क्या यह मूल्यवान् अँगूठी मेरे लिए लाई है? अरे आपने तो मुझे बच्चा ही समझ रखा है?”

“क्यों मनीश?”

“अजी बच्चों ही को उपहार दिया जाता है। और मैं कहता हूँ यह जन्मदिन ही क्यों? मेरे दादा को कितना मना किया। वे मानते नहीं।” लज्जित हास्य तब भी मनीश के मुख पर लिपटा रहा।

श्रीनाथ ने पौत्र के मुख की बात रोक-सी ली—“मम लोग अपने बच्चों की जन्म-तिथि मनाते हैं। बूढ़े और जवान या बच्चे का प्रश्न इसमें नहीं उठता है न एला?”

लाल फ्रंम युक्त जापानी चरमे के अन्दर से एक बार एला ने पिता, परमेश्वर चौधरी के प्रति देखा, वह दूर बैठा था और बारीक आवाज से बोली—“जरूर दादा जी। बस, इन्हीं सब बातों के लिए ममी और पापा भगड़ते रहते हैं न। लेकिन मेरी ममी, भला वे कब किसी से डरने और दबने वाली है? सर एम० एन० की लड़की वे, किसी की बातें क्या सुनती? वे मेरा जन्म-दिन मनाती हैं। पापा की चलती तो आज मैं मूर्ख बनी रही आती। आज जो कालेज में पढ़ रही हूँ वह भी ममी की जबरदस्ती और हठ से। ममी के सामने पापा की एक नहीं चलती।”

इस अति माडर्न लड़की की बातें श्रीनाथ को कही खटकीं। वे चुप रह गए।

सुप्रकाश को प्रवेश करते देखकर मनीश बोला—“तुम अकेले कैसे आए प्रकाश? और भाभी?”

उत्तर दिया श्रीनाथ ने—“सुनन्दा तो दोपहर से यहीं है। बिना

उसके इतना बड़ा काम कौन करता ? जब से आई है, बस काम और काम । कचौरी बना-बनाकर ढेर लगा रही होगी । मनी, तुम जाकर उसे यहाँ बुला लाओ ।”

मनीश उठा और भीतर पहुँचा । काम-काज शेष कर सुनन्दा परम निश्चिन्तता से सेक्सपियर का मेकवेथ खोलकर बैठी हुई थी ।

विस्मित मनीश कह उठा—“अजी वाह, भाभी सब निमन्त्रित पहुँच चुके हैं और आप यहाँ आराम से किताब खोलने बैठी हैं । चलो उठो ।”

किन्तु सुनन्दा ने उठने की चेष्टा मात्र नहीं की, बोली—“पुस्तक पढ़ना क्या कोई पाप है ?”

“कौन कहता है ? लेकिन यह समय पुस्तक पढ़ने का नहीं है । उठो भाभी ।”

उसने विनय की—“मैं भीड़-भाड़ में नहीं जाती मनीश बाबू ।”

“क्यों ?”

“अपना-अपना सिद्धान्त तो है न ।”

मनीश ने उसके हाथ की पुस्तक खींच कर दूर फेंकी । चकित होकर कहा—“यह तो मेकवेथ है । इंगलिश तुम जानती हो ?” और तुरन्त स्वयं ही हँसकर उत्तर दिया—“इंगलिश तुम क्या जानो, फिर सेक्सपियर की इंगलिश । अच्छा, सेक्सपियर का फोटो देख रही होगी न भाभी ?”

मीठी मुसकान से नन्दा ने कहा “हाँ ।”

मनीश ने नन्दा का हाथ पकड़ कर खींचा—“चलो ।”

“नहीं ।” उठकर खड़ी नत-मुखी नन्दा बोली—“नहीं ।”

लगा मनीश को उस छोटी-सी ‘नाही’ में तीस मन का भारी पत्थर अड़ गया है, उस पत्थर को हटाने की ताकत उसमें तो है ही नहीं, वरन यों कि संसार में शायद ही ऐसी कोई शक्ति हो—जो कि उसे हटा सके । क्षुब्ध अपमान से मनीश चल दिया ।

श्रीनाथ ने पूछा—“क्या कर रही है नन्दा ? अच्छा-अच्छा, मैं ही लिवाए लाता हूँ । देखना चौधरी भाई, आज के दिन में भी साक्षात्

लक्ष्मी हमारे घर में हुआ करती है। अभी उसे लेकर आ रहा हूँ।”

मनीश को सुनन्दा सहज ही लौटा सकी थी, किन्तु पितृव्य तुल्य सदाशिव से श्रीनाथ की बात टाल सकना सहज नहीं हो सका। उसे वृद्ध के पीछे-पीछे ड्राइंग रूम में आना पड़ा। हाल के मध्य के प्रकोष्ठ में गोल भार्वल के टेबल को घेर कर निमन्त्रितगण कुर्सियों पर बैठे चाय-पान कर रहे थे। और भी कई टेबलें इधर-उधर रखी हुई थी। सबके आग्रह से गृहकर्ता, नन्दा के साथ बीच की गोल टेबल के निकट बैठ गए। बगल की कुर्सी पर बैठा मनीश।

मनीश ने आँखें पसार कर देखा—सिल्क, जार्जेट, नाना वर्ण के वस्त्र, मारिणक, हीरा, मुक्ता आदि के आलोक का उपहाम करती-सी जैसे कैलाश की योगिनी गौरी साधारण वस्त्र पहने अपने गौरव में मस्त-धीरता से आकर बैठ गई। देखा मनीश ने प्रत्येक के प्रति। लगा मनीश को उपहास, अबहेलना पूर्ण हास्य प्रत्येक के मुख पर क्रीडा कर रहा है। और उसकी दृष्टि लौटी सम्य, मुशिक्षित एला के प्रति, अबहेलना के साथ-साथ उसकी दृष्टि में जो कुछ था, उसे देखकर मनीश विस्मित हो उठा। उस दृष्टि में था विस्मय, प्रगाढ विस्मय एवं सम्भ्रम की एक जीवन्त छाया।

सब से पीछे मनीश की दृष्टि पड़ी नन्दा पर, न उस मुख में अपदस्थता का कोई चिह्न था, न अस्वच्छन्दता। सदा प्रफुल्ल वह आकृति। मनीश ने आराम की श्वास ली—नहीं, वह इस नारी की किसी प्रकार की अबहेलना नहीं सहन कर सकता।

चौधरी ने समूची कचौरी मुँह में भरकर प्रशंसा का पुल बाँध दिया—“श्रीनाथ दादा, अजी, वाह, कचौरी क्या बनी है, जैसे रसगुल्ला हों। मुँह में डाला और गायब।”

श्रीनाथ आनन्द गद्गद् हो उठे—“क्यों न हों। फिर बनाया किसने है? तुम में इनका परिचय करवा दूँ, यह है मिसेस राय, मेरी बेटा सुनन्दा

और आप हैं श्री परमेश्वर चौधरी, एला के पिता। हाँ, परमेश्वर ! इन्हीं ने यह सब बनाया है।” —जरा रुक कर एवं आँखें बन्द कर कह चले श्रीनाथ—“सोचता हूँ परमेश्वर, आज यदि ऐसी लड़कियाँ हिन्दुस्तान के घर-घर में हों तो भारत का पुरातन गौरव और सभ्यता पुनः भारत का मुख उल्लज्वल कर सकेगी। ऐसी सुरूप और गुणवती लड़कियाँ आजकल देखने ही में नहीं आतीं।”

चौधरी को मानो मुखरोचक चर्चा मिल गई, कहा—“सच दादा, आज की लड़कियों की बातें कुछ न पूछो। बस, मुँह पर सफेदी पोतना, श्रोतों को लाल रंग से रंगना और सिनेमा देखना। साडी तो ऐसी भीनी पहनेंगी कि यदि शरीर बेपर्दा हो जाए तो कुछ परवाह नहीं। एक दिन बावर्ची न आए तो होटल की हवा खाओ। अजी बालों तक को काटपीट कर साफ़ कर मर्द की तरह बनाना एक फैशन है। मेरी एला ही को देखो न—”

चौधरानी भुँभला पड़ीं—“अजी क्या अनाप-शनाप बक रहे हो। सर एम० एन० की लड़की, मैं बनाऊँ खाना ? वह तो यों कहो कि उस घर से तुम्हारा सम्बन्ध होने से आज इस पोजिशन तक पहुँच सके। क्या लड़की को मूर्ख बनाकर रखती ?”

पत्नी के क्रोध ने पति का कण्ठस्वर अवरुद्ध-सा कर दिया। एला का मन किन्तु इन सब तर्क-वितर्क से दूर था। आँखें उसकी गड़ी रही आईं सुनन्दा पर—रूप, किन्तु ऐसा रूप ? यह तो वह सौन्दर्य है जो कि स्वयं सिद्ध, एकाकी विश्व के प्राङ्गण में अपनी स्वतन्त्रता लिए रह सके। सोच रही थी एला—इस असभ्य, अशिक्षिता नारी ही पर जैसे ईश्वर ने अपनी पूर्ण कला, सारा सौन्दर्य निचोड़ कर अपनी सृष्टि को सफल करना चाहा हो। किन्तु ऐसा क्यों ? क्या जरूरत थी ईश्वर को ऐसा एक विश्वजयी रूप एक असभ्य नारी को देने की ? जल्दी-से एला ने अपना बेग खोला, उसे ज़रा ऊपर याने मुँह तक उठाया एवं उसमें जड़े हुए

दर्पण में अपनी आकृति देखी और पाउडर लगा हुआ छोटा बफ उसमें से निकाला, उसे मुँह पर फेरा, थोड़ा लिपस्टिक ओठों पर फेर लिया, फिर बेग बन्द करके केक का टुकड़ा मुँह में डाला ।

श्रीमती भटनागर जो कि केवल एक माह पहले सिनेमा में अभिनय करने उतरी थी, आश्चर्य से मुनन्दा से पूछ रही थी—“इतनी ढेर-सी कच्चीरियाँ आपने अकेले बनाईं मुनन्दा देवी ?”

कौतुक से मुनन्दा ने उत्तर दिया—“बनाई तो है, क्यों ? इसमें आश्चर्य क्या है श्रीमती भटनागर ?”

“ओ माई गाड ! मैं तो मर जाती । लेकिन गाँव की लड़कियाँ इन सब कामों में अभ्यस्त होती है । लिखने-पढ़ने से उन्हें सम्बन्ध नहीं, घर का काम, बामन माँजने में लेकर गोबर के कण्डे पाथना आदि सब वे किया करती है । और इसे वे पसन्द भी करती है । बात यों है कि आप लोगों का शरीर मजबूत हुआ करता है ।”

मुनन्दा जरा-सा मुसकरा भर दी ।

उधर गि० भटनागर और दीपेन में घोर तर्क छिड़ रहा था—महाभारत पर । दीपेन कह रहा था, भारतीय लेखकों की कल्पना बिना सिर-पैर की हुआ करती है । रामायण के रावण को देखो, बारह हाथ, मस्तक, आँखें, अजी बच्चों की-सी बातें । यों पचासो उदाहरण हैं । अस्वाभाविक कल्पना, अरे यार, कल्पना को पवन के पलने पर चढ़ा कर मँर करो लेकिन स्वाभाविकता पर तो ध्यान रखो । लेकिन अंग्रेजी साहित्य में ऐसा नहीं पाओगे ।”

उत्कर्ण हो कर कमरे के अधिकांश नर-नारियों का ध्यान उस तर्क पर केन्द्रीभूत हो रहा था ।

भटनागर ने कहा—“अजी, रखो भी तुम्हारा इंग्लिश साहित्य । वह रावण था—राक्षसों में सब कुछ होना स्वाभाविक है ।”

“राक्षस ?”—दीपेन व्यंग्य से हँस पड़ा, “तुम-सा उच्च शिक्षित विद्वान्

भी राक्षस, दैत्य, दानव की सत्ता माने ? हृद् कर दी यार ।”

पराजित होकर भटनागर का क्रोध उग्र हुआ, तर्क का स्थान कुतर्क ने ले लिया—“याने तुम मुझे मूर्ख कहना चाहते हो, यही न ?”

“बिल्कुल नहीं । तुम तो चिढ़ते हो । अच्छा चौधरानी जी से पूछो, कहिए चौधरानी जी, वास्तव मे कभी दानव-दैत्य का अस्तित्व रक्षा है या नहीं ? याने वे आदमी थे या दावन ? रावण को ही लो न । चौधरानी जी की बात तो मानोगे न ?” हाल भर के गण्य-मान्य व्यक्तियों के सामने श्रीमती चौधरानी को ऐसा बढ़ा-चढ़ा सम्मान दिया गया सो ठीक है । और चौधरानी अहंकार, गर्व से फूली नहीं समाती, यह गलती नहीं है, किन्तु कठिनाई यह रही श्रीमती के लिये कि महाभारत, रामायण से कभी सम्पर्क ही नहीं रहा ।

अकुला कर श्रीमती ने पति के प्रति निहारा । चौधरी उम दृष्टि का अर्थ समझा । कहा—“आप कहिए मिसेस दवे ।” मिसेस दवे की अवस्था उससे भी कही शोचनीय हो उठी । पिता के घर उसने कभी महाभारत-रामायण का नाम तक नहीं सुना । कृश्चन पिता, हिन्दुस्तानी माता की सन्तान मिसेस दवे ने कहा—“मैंने कभी इन बातों पर सोचा नहीं । आप कहिए मि० मनीश ।”

मनीश हँसकर बोला—“मैं तो भाई, तर्क-वितर्क से कोमो दूर रहता हूँ । मेरे बदले मेरी भाभी कहेंगी । कहो तो भाभी । रावण दैत्य था या मानव ?”

जरा-सा मुमकरा कर मुनन्दा ने कहा—“रावण ? आदमी था न । उन दिनों शायद जंगली, अमभ्य मनुष्यों को राक्षस की उपाधि दी जाती रही हो । युगों का धर्म और उसकी देन भी तो हुआ करती है न । विशेषतः परिस्थिति और वातावरण पर सब बातें निर्भर भी तो रहा करती है ।” धीमा, किन्तु दृढ़, संयत वह स्वर, उस स्वर ने हाल के अन्दर ऐसे एक वातावरण की सृष्टि कर दी कि कुछ क्षण तक उग्र तर्क में समाधि-सी पहुँच गई ।

“मे यही कहता हूँ कि वह आदमी था। और मेरा तर्क तब बिना नींव का नहीं रहता और यह सहज ही प्रमाणित होता है कि भारतीय लेखकों की कल्पना ऊटपटांग होती है।” उत्साहित दीपेन ने कहा। एक बार स्त्रके मुँह पर आँखें फेरता हुआ कहने लगा—“मनीष की आप भाभी हैं और मेरी भाभी नहीं ?”

“भाभी तो हूँ भाई।”—उन विस्मित दृष्टियों के प्रति ध्यान दिए बिना नन्दा बोली—“परन्तु आप एक बात भूल रहे हैं भाई साहब। हमारे उस दिन के कवि और लेखकों की रचनाएँ गंभीर और अतलस्पर्शी हुआ करती थी। वे अलंकार पसन्द करते थे। यो रावण के जो बारह हाथ आदि का वर्णन है, वास्तव में वैसा नहीं है। मेरा अपना तो विचार ऐसा है भाई साहब, कि उतने ढेर से हाथ, मस्तक, आँखे आदि यह सब उस रावण की दुष्ट बुद्धि का, हाँ, तीक्ष्ण बुद्धि ही का वर्णन है, याने मूर्त रूप है।”

“ऐसा ?” सिर हिलाते हुए दीपेन ने कहा—“केवल ऐसा।” चौधरानी बोली ?—“हिन्दुओं की भी कैसी रुचि है। छत्तीस कोटि देवता बना रखे हैं, और उन्हें मानने वाले असभ्य, अशिक्षित यह हिन्दू, इनकी बाते निराली ही होती हैं।”

“ऐसा तो नहीं है चौधरानी जी, उस दिन का हमारा भारत कितना सरल विश्वासी था, वह उनके छत्तीस कोटि देवताओं के निर्वाचन से समझा जा सकता है। याने गुण का वे ऐसा आदर-सम्मान किया करते थे कि गुण मात्र को देवत्व के आसन पर बैठाकर तृप्त होते थे। और अवाध रूप से गुण को देवत्व देते, ऐसा होना कोई असम्भव नहीं है न ? वैसे तो देखा जाए कि तुलसी भी देवत्व का आसन पा सकी। क्यों ? क्योंकि हम सब लोग जानते हैं—तुलसी कितनी उपकारी, गुण सम्पन्न और उपयोगी है। उसकी पत्तियाँ कई दवाओं में काम आती हैं। और यों हो सकता है कि उस दिन का सभ्य समाज जंगली असभ्यता को राक्षस, दानव आदि के

नाम से पुकारा करता हो । या तो राक्षस नामक कोई जाति विशेष ही रही हो ।”

उस असम्य मूक नारी की बातचीत करने की रीति को देखकर सब से अधिक विस्मित हो रही थी एला । और यदि प्रभावित भी हो उठी हो तो विस्मय नहीं ।

मनीश बोला—“भाभी के मतामत, सिद्धान्त विचित्र हुआ करते हैं दीपेन ।”

नन्दा मुसकराई ।

दीपेन ने कहा—“चाहे भाभी की सूझ सही निकले । फिर यह तो मानना पड़ेगा कि ऐसी कल्पनाओं की अस्वाभाविकता अंग्रेजी साहित्य में नहीं है । ठीक है न भाभी ?”

“नहीं, आप तो भाई साहब एकांगी विचार कर रहे हैं । मानती हूँ इंग्लिश साहित्य भारतीय साहित्य से कहीं सहज गुणा बड़ा-चड़ा है । यों कि भारतीय साहित्य से उसकी तुलना नहीं हो सकती । परन्तु इंग्लिश कल्पना में कल्पना की अस्वाभाविकता नहीं है, याने बिल्कुल ही नहीं है, ऐसा कहने से गलत कहना होगा ।”

जरा संकोच करती हुई चौधरानी ने पूछा—“आप कहीं तक पढ़ी हैं मिसेस राय ?”

अनमनी-सी वह बोली—“यों कुछ पढ़ लिया है । अन्तिम परीक्षा के समय वह अनहोनी बात, हिन्दुस्थान का विभाजन”—कहते-कहते सहसा नन्दा उठकर खड़ी हुई, सुप्रकाश से कहा— “कब की घर से निकली हूँ, चलो ।” और सब को नमस्कार कर द्वार से निकल गई । उसके गमन-पथ की ओर विस्मय से सब देखते रह गए ।

[४]

रविवार का दिन । दिवा-निद्रा शेष कर सुप्रकाश हाथ-मुँह धोकर तौलिये से पोंछ रहा था कि गर्म-गर्म समोसे एक तश्तरी में एवं दूसरे में पपीते के तथा गन्ने के कई टुकड़े लेकर पहुँची सुनन्दा । टेबिल पर तश्तरियों को रखकर सुराही से गिलास में जल ढाला और चाय लेने के लिए लौटी ।

सुप्रकाश जल-पान के प्रति देखता हुआ बोला—“खाने-पीने की परिपाटी देखकर मोचता हूँ नन्दा, तुम इतना सब कैसे कर लेती हो ? महीने के अन्त में मैं केवल सौ रुपये तुम्हारे हाथ पर लाकर रखता हूँ । उन गिने हुए सौ रुपयों में तुम इतना कैसे कर लेती हो ?”

“हो जाता है । तरकारी खरीदना नहीं पड़ता । मेरी छोटी-सी फुल-वाड़ी उममें थोड़ी बहुत तरकारी भी हो जाती है । यों कि उन्हे बेच भी देती हूँ, कुछ फल अपने घर होने लगे हैं । पपाता घर ही का है, पीछे की थोड़ी-सी जमीन को भी उपजाऊ कर लिया है ।”

सुनन्दा चाय के दो कप लेकर लौटी । एक सुप्रकाश के लिए रखा, दूसरा स्वयं कुर्मी पर बैठकर पीने लगी ।

“आज सन्ध्या छः बजे की ट्रेन में मुझे बाहर जाना है—कई दिन शायद लग जाँ । अकेली घर में डरोगी तो नहीं नन्दा ?”

“पाकिस्तान के उस नृशंसक, कठोर, अमानुषिक हृदय को जो एक बार देख चुका हो, और उस निष्ठुरता का जो एक बार शिकार बन चुका हो, उसके लिए डर ? क्या कहूँ कहो तो ? तुम क्या सोचते हो कि उसके बाद भी क्या उसके मन में स्वाभाविक सौन्दर्य, कोमलता, भय, आतंक जीवित बच रह सका होगा ?” सुनन्दा का स्वर उदास व्यथा से भरा हुआ था ।

सुप्रकाश संकुचित हुआ । सामने बैठी उस निर्याचित नारी के प्रति वह देख तक न सका । सोच उठा—मूर्ख वह, अग्नि की दहनकारी शक्ति में आज वह सन्देह कर बैठा ? बैठी हुई वह

कृश नारी दुनियाँ के सब कुछ को अस्वीकार कर अपनी सत्ता, अपनी महत्ता लिए संसार के एक तरफ खड़ी है—अटल शैल की भाँति, उस एक मुट्ठी भर की नारी को घेर कर जो पाशविक अत्याचार की कथा मूर्त हुआ करती है, दिन के प्रत्येक पलों में। वह स्वयं, हाँ, सुप्रकाश स्वयं उन बातों से भली-भाँति परिचित है न। तब उसके अकेले रह सकने की आशंका, भय का प्रश्न उठा कैसे सका ? इस विदुषी नारी का यथापूर्ण इतिहास—जैसा तो आतंकित है, वैसा ही दर्दिला।

“अजी, तुम चाय क्यों नहीं पीते। शरबत बनाकर पीना है ?”

“भूल गया था नन्दा।” मौन बैठा प्रकाश चाय पीने लगा।

“रास्ते के लिए कुछ बना दूँ ?”

“बनाओगी ? लेकिन क्या जरूरत है ?”

“और जब भूख लगेगी ?—मैं तब तक बना रही हूँ, तुम सूटकेस में कपड़े व जरूरी सामान रख लो। टार्च रख लेना।”

“पानी के लिए वह ढक्कनदार लोटा रख देना।”

“अच्छा” कहकर नन्दा चल दी।

इन दिनों सुनन्दा को पुस्तको के साथ अकेले घर में दिन बीताना नहीं पड़ता। कोई न कोई आ ही जाता। उसके भक्तों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही थी। उनमें मनीश प्रधान था। कभी एला, श्रीमती भटनागर, नलिनी आदि भी पहुँच जाती।

उस श्रावणी सन्ध्या की अलसानी-सी बेला में सुनन्दा की बैठक मनीश, दीपेन आदि से जीवन की स्फूर्ति युक्त हो रही थी। जैसे उस आलसता को अस्वीकार कर जिन्दगी के तप्त तेजमय स्फुलिंग उभर उठे हों।

बात छिड़ी हुई थी—पाकिस्तान की लुटी हुई स्त्रियों पर।

दीपेन कह रहा था—“उनमें से ज्यादातर स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली होगी।”

“क्यों भला ?” मनीश के स्वर में विस्मय था ।

“सतीत्व को खोकर वे करेगी ही क्या ? जी नहीं सकती मनीश, भारतवर्ष की स्त्रियों में उस सतीत्व की शुचिता ऐसी घुली-मिली कि वे अपनी सन्तान-वियोग का, उसका अपनी आँखों के सामने कत्ल होना चाहे सहलें परन्तु सतीत्व को खोकर जीना ?—वह उनके लिए असम्भव है ।” दीपेन का स्वर एक विशेषज्ञ की भाँति था ।

“गलत भाई साहब ।” धीरे बोली नन्दा ।

“भूल, क्यों ? कैसे भाभी ?”

“मेरे विचार से वह सब अभ्यास मात्र है ।”

“अभ्यास ? केवल अभ्यास ?”

“जरूर, क्या सोचते हो की वहाँ की स्त्रियों ने आत्म-हत्या अवश्य कर ली होगी ? विलकुल भूल । मेरे विचार से वे सब जी रही हैं, और जीवित रहेंगी । मैं ऐसी कितनों को जानती हूँ—जो कि एक धर्म, एक सतीत्व, वंश-गर्व, धन-मान् आदि खोकर, दूसरे धर्म, दूसरे वंश आदि में जीवित रह रही है । इसे अभ्यास नहीं फिर क्या कहा जा सकता है ?”

“आप स्त्री होकर ऐसी बातें मानती हैं ?”—कहा दीपेन ने ।

“किन्तु स्त्री होने से उसे मिथ्या ही कहना पड़ेगा, और सब कुछ जान-समझ कर उसे छद्म आवरण में अपने को छिपाकर रूखना पड़ेगा । क्या ऐसी भी कोई बात है भाई साहब ? यह किस शास्त्र में लिखा है । कह सकते हैं आप ? यदि आप भली-भाँति खोज करें तो देख पाएँगे सब, कुछ अभ्यास मात्र है ?”

“सतीत्व आपके निकट केवल अभ्यास मात्र है ?”

दीपेन के मुखभाव को देखकर नन्दा खिलखिला पड़ी—“आप ऐसे षबरा गए मानो बच्चाघात हो गया हो । ऐसा कब कहा कि मैं सतीत्व नहीं मानती या महत्व नहीं देती ? केवल प्रश्न है कि उसे खोकर नारी

जी सकती है या नहीं ? उत्तर में पुनः कहूँगी—वे आज भी जी रही हैं—एक नवीन जीवन में । बस कहना मेरा इतना है ।”

तो भी दीपेन अनमना-सा कहता—“आपका कहना है—वह अभ्यास है ?”

“है ही और भाई साहब, यदि हम सतीत्व की दुहाई देकर, उसकी महिमा का यशगान कर, और अपनी शुचिता लिए दूर हटकर खड़े न रहें एवं उन अभागिनों के लिए मुट्ठी भर जगह की व्यवस्था करने में ध्यान दें तो शायद दुनियाँ के मनु कार्य में हम हाथ बटाकर कुछ कर सकेंगे ।” जरा रुक कर वह पुनः कहने लगी—“हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का आमूल परिवर्तन जिसे कि मानवता का एक अद्भुत विकास कहा जा सकता है, ऐसे समय सतीत्व की कल्पित महिमा का गुण-कीर्तन कर और उसी मिथ्या गर्व में गर्वित होकर हिन्दुस्तान को अब क्या योंही सोने रहना चाहिए ?”

कमरा मौन में परिपूर्ण हो उठा, प्रत्येक अपनी-अपनी चिन्ता में लीन उचित, अनुचित के विचार में मग्न था । एता कब सुनन्दा के निकट पहुँची, यह बात वह स्वयं शायद ही जान पाई हो ।

अचानक उस फैशनबुल लड़की ने सुनन्दा के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—“जीजी, तुम कैसा मच-मच कह देती हो ।”

उसके मुख के प्रति देखकर नन्दा सहमी, जरा-सी हँसने की चेष्टा करती हुई बोली—“यों सत्य तो अमुन्दर और कठोर हुआ ही करता है बहन ।”

“तुम कहती हो भाभी कि पाकिस्तान की लुटी हुई स्त्रियों को समाज में जगह देनी चाहिए ?” कहा दीपेन ने ।

“यदि ऐसा कहा जाए तो क्या अन्याय कहना होगा ?”

“परन्तु वे समाज में जगह कैसे पा सकती हैं ?”

“पूछती हूँ भाई साहब, पा भी क्यों नहीं सकती ? उनका वास्तविक अपराध क्या है ?”

“अपराध ?”—वहाँ पर बैठे प्रत्येक के मन में प्रश्न उठा कि—
उनका अपराध क्या ? किन्तु गभीर चिन्ता के बाद भी वे किसी निष्कर्ष
पर नहीं पहुँच सके । मच ही उनका अपराध क्या है ? क्या हो सकता
है ?

देर के बाद दीपेन ने कहा—“अपराध कुछ नहीं है । जबरन उन पर
अत्याचार किया गया है, बात सही है, परन्तु फिर भी उन्हें—”

मध्य पथ में नन्दा गरज उठी—“तो भी उन्हें आत्म-हत्या कर लेनी
चाहिए थी ? यही न ? जिसमें आप पुरुषों का पुरुषत्व बचा रहा आता ।
और कृद्ध लोगों को सतीत्व की महिमा का गुण-कीर्तन करने का अवकाश
मिलता ?” —कहते-कहते हँसी नन्दा—विद्रोह पूर्ण वह मुमकान,
वह कहती ही चली जाती —ग्राहन निहनी-सी उमकी आँखों में अग्नि की
नहीं, बरन रक्त रंगीन चिगारियों निकलनी ।

वाक्दीन मनीश उसे देखता रह गया । इस भाभी से उसका कुछ
दिनों से परिचय हुआ था । परन्तु भाभी के इस उग्र रूप से उसका
परिचय आज यह प्रथम बार हो रहा था न ।

कह रही थी नन्दा—“सतीत्व, सतीत्व, सतीत्व । कोई एक संस्कार
विशेष का शृङ्खला-बद्ध रूप के सिवा है भी क्या वह ? कभी एक दिन
समाज की मुश्टुखला रखने के लिए नारी के इस सतीत्व की नींव पडी
होगी । और किसी युग के मानव ने उसे धर्म के पलन में चढा कर
सुदृढ कर दिया होगा । बस, है तो इतना ही न ? परन्तु ऐसी कोई बात
वेद-पुराण में नहीं लिखी है कि निर्दोष, अत्याचारिता नारी को;—जो
कि पाकिस्तान की नृशंसता में पति, पुत्र, घर-द्वार, सतीत्व तक को
लुटाकर जीवन-मृत बन गई हो, ऐसी एक को जबरन ही वेध्यालय में
जाने के लिए बाध्य किया जाए ? नहीं—नहीं, कही पर भी कुछ नहीं
लिखा है । फिर आप कहिए भाई साहब, कि संसार में जिस की जगह
नहीं है, वह वेध्यावृत्ति के सिवा करेगी भी क्या ? वह संसार में आई है,

मातृत्व के गौरव से गौरवान्वित होने के लिए, न कि वेश्याओं की संख्या बढ़ाने के लिए ।”

“भाभी—”

“और मैं कब कहती हूँ कि”—अपनी धुन में नन्दा कह चली कि “समाज के आप लोग समाज में उस बिचारी को स्थान दीजिए । वह तो अपना-अपना दृष्टिकोण और रुचि है । और इतना जरूर कह सकती हूँ कि मेरी ऐसी बहनों के लिए मेरे इस छोटे से घर का द्वार सदा जरूर खुला रहेगा ।”

“आप—आप उन पतिताओं को घर में जगह देगी मुनन्दा देवी ?” विस्मय, घृणा नलिनी के मुख की स्वाभाविकता पर अपना अस्तित्व जमाए हुए थी ।

विधवा नलिनी के बनाव, शृंगार के प्रति देखनी हुई नन्दा हँस पडी कहा—“सतीत्व आखिर है क्या ?”

“सतीत्व—याने सतीत्व ।”

“पाकिस्तान में निर्यातित नारियों को आप असती कैसे कह सकती हैं ?”

“आपके विचार से वे सब सती हैं ?”

जरूर, मेरे विचार से जिसका मन एकनिष्ठ प्रेम का पुजारी हो, उसके शरीर पर जबरन चाहे जितना भी अत्याचार क्यों न किया जाए, वह अवश्य सती कहलाएगी । आप उन निर्यातित सब स्त्रियों से पूछिए, यद्यपि उनमें से कितनी ही उन अत्याचारी पुरुषों की संगिनी के रूप में कदाचित्त मिल जाएँ, परन्तु अब भी उनका मन अपने पति पर आकृष्ट आप पाएँगी । और हाँ, यह जो हम एकनिष्ठ प्रेम की दुहाई दिया करते हैं, क्या हम अपने-अपने हृदय पर हाथ रखकर सच्चाई के साथ कह सकते हैं, शपथ-पूर्वक कह सकते हैं कि—”

“भाभी—” मनीश के उस आर्त स्वर ने सब को चौका दिया ।

तो भी नलिनी एवं दीपेन कहते “आपकी बातों ने आज हमें चकित कर दिया । स्त्री होने हुए भी आप सतीत्व को नहीं मानती, पाकिस्तान में जो स्त्रियाँ असती हो चुकी हैं—चाहे वे कैसे भी हुई हों; इसमें कोई सम्बन्ध नहीं—आखिर है तो वे असती, आज का मन्व्य तो यही है न ? और आप उन्हें सती कहती हैं ।”

मुनन्दा ने एक बार पूर्ण दृष्टि से उन दोनों के प्रति देखा, कहा—
“पढ़ने कहिए, असती का अर्थ क्या है ? एक बार पढ़ने भी पूछ चुकी हूँ । आप लोगों ने इसका सही उत्तर नहीं दिया ।”

“अजी वाह भाभी, असती—याने असती ।”

“नहीं । मन-वचन-कर्म द्वारा जो नारी सतीत्व को नष्ट करे, वही असती कहलाती है । भारत के पुराण, गीता, मनुसंहिता आदि पुस्तकों को आप खोलकर देखिए, सती और असती का अर्थ आप सहज ही पा जाएँगे । धर्पिता नारी के लिए त्याग का विधान कहीं पर भी नहीं है । और पहली बात, आप लोग जो पाकिस्तानी अत्याचार पीड़ित नारियों के लिए असती की आवाजे उठा रहे हैं, यह तो कहिए वे असती हुई ही कब ।”

इस प्रश्न के बाद कमरा एकदम नीरव, स्तब्ध रह गया । लगा मनीश को मानो उसके हृदय पर घूसा मार-मार कर नन्दा का प्रश्न दम्भ के साथ कह रहा है—ए पुरुष, ओ नर, कहो तो सही वे असती हुई कब ?

“आप क्या कह रही हैं ?”—एक ने उस स्तब्धता को भंग कर कहा ।

“ठीक कह रही हूँ महाशय । जिन पर जबरन अत्याचार किया जाए वे असती हुई कैसे और कब ? क्या उनके मन पर कोई अपना प्रेम, श्रद्धा का दीप जला सका है ? यदि अतर्कित भाव से कोई आपके शरीर पर अत्याचार करे, क्या आप स्वयं उसके लिए जिम्मेदार होंगे ? और आपका शरीर अपवित्र हो जाएगा ? उधर आपका मन तब भी आपका

निजी रहेगा न ? यों हमारे हिन्दु देवी-देवताओं के कितने मन्दिर अत्याचारी-गण तोड़ डालते हैं । तब क्या मन्दिर का देवता, शिवलिंग, काली, दुर्गा आदि अपवित्र, अस्पृश्य हो जाते हैं ? कहिए, जवाब दीजिए ।”

सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे । एला सहसा मुनन्दा से सट कर बैठ गई । उसे नन्दा की बातें इतनी भली लग रही थी कि कदाचित नन्दा के भक्तों में वह प्रधान बन गई हो तो विस्मय नहीं ।

सबके चने जाने के बाद एला उठी और अनिच्छा के साथ बोली—
“जा रही हूँ जीजी, क्या करूँ ममी नाराज हो जाएँगी । नहीं तो अभी न जाती । तुम्हारे पास से उठने को जी नहीं चाहता ।

वह चल दी ।

[५]

सब चल दिए किन्तु मनीश जड़ की भाँति बैठा रह गया । नन्दा ने धीरे पुकारा—“ओ—मनीश बाबू ।”

जैसे मनीश के ध्यान पर जंगली हत्ता के भोंके ने उद्दाम गति में पहुँच कर बवण्डर मचा दिया । वह असंयत-सा कह उठा—“क्या ?”

“इतना क्या सोच-विचार कर रहे हो ?”

प्रश्नकारिणी के मुख की शरारत भरी हँसी ने मनीश को गभीर बना दिया । भुँभलाकर वह बोला—“चाहे कुछ भी सोचू—”

“याने मुझे क्या ? यही न ?” उसके अर्द्ध-समाप्त वचन को पूर्ण रूप देकर नन्दा खिलखिला पड़ी ।

और मनीश ? उसकी शिक्षा ने मन की भुँभलाहट को मन में रोक दिया । गंभीरता में वह मौन बैठा रहा आया । परन्तु ज्यादा देर वह मौन

नहीं रह सका। एक समय पूछ उठा—“तुमने जो कुछ कहा था, वे बातें क्या सचमुच तुम्हारे मन की रही, या यों ही कह दिया?”

“कौन-सी बातें?” नटखट हँसी की छाया तब तक नन्दा के बुद्धि उज्ज्वल आयन लोचनो में पड़ी लोट रही थी।

“यही सतीत्व की, याने तुम सतीत्व को महत्व नहीं देती।”

कुछ कहने जाकर नन्दा चुप हो गई। मनीश के मुख को देख कर सिहरी। प्रश्न मन में उठा—यही युवक—जो आज स्वाधीन हिन्दुस्तान के राष्ट्र-निर्माता है—और पल-पल में नन्दा का विचार, प्रश्न गतमुखी हो गए—इन्हीं पर हिन्दुस्तान की स्वाधीनता जीवित रखने की जिम्मेदारी निर्भर है। जिनके हृदय उदार नहीं, किन्तु अति सकीर्ण हैं, जो कि अपनी मा-बहनों को बिना अपराध वेश्यालय में जाने का सकेत करते हैं, कर सकते हैं। वे करेंगे राष्ट्र का निर्माण? ज्ञान, विज्ञान की उन्नति? कैसी असम्भव बात है?

“अजी भाभी, क्या सोच रही हो? मेरे प्रश्न का जवाब दो।”

बड़े दुख में नन्दा को हँसी-सी आ गई। वहाँ—“मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा, जिसमें कि समझा जाए—सतीत्व का कोई मूल्य नहीं।”

“साफ नहीं कहा, यों मतलब वही निकलता है।”

बात बढ़ने न देकर नन्दा ने कहा—“मेरा कहना और आप जैसे भद्र, शिक्षित युवकों में मांग बस उतनी है कि—मन की सच्ची अनुभूति द्वारा वास्तविक सत्य को देखिए, और उन हासभागिनियों को—जो कि पाकिस्तान में सताई गई हैं, उनके लिए मुट्ठी भर जगह की व्यवस्था कर दीजिए। हा, मैं कहती हूँ—आप जैसे कुछ व्यक्तियों का यदि मिलित संगठन हो जाए तो उन्हें वेश्यालय में जाकर अपने मन पर अत्याचार न करना पड़े।”

मनीश के मीन मुख के प्रति देखनी हुई पुनः कहने लगी सुनन्दा—

“मेरे विचार से मनुष्य का वास्तविक मनुष्यत्व वही है जो कि पतित को देवत्व दे सके।”

जरा सोचकर मनीश बोला—“वह कैसे हो सकता है भाभी ? असती भी कही पति की पत्नी कहलाने के योग्य बन सकी है ?”

सुनन्दा को जोर का धक्का लगा । वह मनीश को देखने लगी । और देखती रही आई ।

“भाभी !” उस गंभीर दृष्टि के सामने मनीश के हृदय में जाने कौसी अस्वच्छन्दता उमड़ पड़ी ।

“भाभी—ओ भाभी ।”

“अच्छा, सोचो तो मनीश बाबू, यदि मैं स्वयं पाकिस्तान की सताई हुई होऊँ ?” कौतुक नन्दा के स्वर में भाँक रहा था ।

“तुम ?” मनीश के नेत्र बड़े-बड़े होगाग, वह धवरा उठा । प्रबल वेग से मस्तक हिलाता हुआ बोला “असम्भव है । कभी नहीं, कभी नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता है । तुम्हारा यह मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता है, भाभी ।”

“ऐसा ? पहले कहिये कि उस परिस्थिति में आप क्या करे ? आप मेरे हाथ का भोजन कर चुके हैं । उस अवस्था में आप क्या करते ? प्रायश्चित्त ?”

नन्दा के स्वर में भरे हुए व्यंग्य को मनीश न समझा हो, ऐसा नहीं, उमे अनसुना-सा कर वह बोला “और भाभी, आज भी उन्ही हाथों से बना हुआ अमृत खाना है । अजी डबल प्रायश्चित्त कौन करे, बस एक साथ कर लूँगा । तुमसे बक-बक करते-करते गला सूख रहा है । इधर जोर की भूख भी लगी है ।”

इस युवक पर अभी-अभी नन्दा का मन वितृष्णा से विमुख हो बैठा था और अश्रद्धा, विरक्ति से उस मन का कोमलत्व रूठ गया था सो भी सही है । तो भी क्षुधार्त की पुकार से वह बैठी न रह सकी । शायद

नारी का स्वभावसिद्ध वह अभ्यास ही क्यों न रहा हो, कहा कुछ नहीं जा सकता है। सुनन्दा उठी, “अभी लानी हूँ।”

“मुझे नहीं खाना है। तुम बैठो भाभी।”

ओठों में नटखट हँसी दबा कर नन्दा बोली, “ओः वही छुआ-छून वाली बात है ?”

“भाभी !” कहते हुए मनीश ने हठान् अपने हाथों को फैला कर नन्दा का मुँह बन्द कर दिया। नन्दा खिलखिला कर हँस पड़ी।

लज्जित मनीश बोला — “अजी मैं तो इसलिए कह रहा था कि चौके में जाकर बनाने में तुम्हें तकलीफ होगी और आपने कुछ उल्टा मतलब लगा लिया।”

“अच्छा ! फिर आपने भूख की खबर क्यों मुनाई थी ? अरे हाँ, आपने सोचा होगा कि मैं द्रौपदी हूँ, बिना आग का भोजन बना लूंगी। द्रौपदी को नहीं जानते ? वही पंच पाण्डवों की द्रौपदी।

मनीश भयानक चिड़ा। वह मुँह फेरकर बैठ गया।

नन्दा ने उसे देखा और साड़ी के आंचल को मुँह में दबाकर हँसी रोकती हुई चौके में पहुँची।

कुछ देर के बाद थाल लेकर पहुँची, फूली-फूली पूरियाँ, आलू का दम, पापड़ जल्दी में बस यही बना पाई नन्दा। गाजर का हलुवा बना रखा था। निकट बैठ कर, मनीश को भोजन कराने लगी, कहा, “टेबुल पर बैठ कर चाय, कटलेट, टोस्ट आदि खाने वाले को पूड़ी-साग में क्या मजा आएगा ?”

हाथ रोक कर मनीश बोला—“भूल है तुम्हारी; मच कहता हूँ, इतना सुन्दर स्वादिष्ट भोजन बनाती हो ! और ऐसा यत्न कहाँ मिलेगा यह सब मुझे ? नौकरों के पास ?”

नन्दा का जी स्नेह से परिपूर्ण हो उठा। पितृ-मातृ-हीन युवक के प्रति

उसकी सहानुभूति सिमट रही । कहा—“कच्चा-पक्का जाने क्या बना कर देता होगा बावर्ची ।”

“तुम वही चल कर रहो न भाभी ।”

नन्दा हँसी—व्यथापूर्णा वह हँसी । कहा—“उसे खाते क्यों नहीं—गाजर का हलुआ है । उस पर मेरे बगीचे के ताजे गाजर ।”

“तुम्हारे बगीचे के ?”

“हां, आपने मेरा बगीचा नहीं देखा ?”

“नहीं, देखना है । सोचता हूँ—एक स्त्री कितना काम कर सकती है ।” उसके बाद प्रशंसा करने लगा मनीश हलुए की । और निकट बैठी नारी नर का तृप्त भोजन देख देखकर स्वयं तृप्त होने लगी ।

[६]

वर्षा के शेष प्रहर में शीत का रौद्र गृहस्थ के गृहों में शीत की शीतल वार्ता घोषित करने लग गया था और कोकिला के गान में निद्रा की आलसता समाने लग गई थी ।

तब सुनन्दा नित्य-नैमित्तिक दिन-चर्या शेष कर धूप-छांह के बीच दालान पर चटाई बिछा कर पुस्तक लिए बैठी । पड़ोस की नलिनी पहुँची । कहा, “मेरा एक काम कर देगी मिसेस राय ?”

“चेष्टा करूँगी । और हां, मिसेस राय से सुनन्दा या केवल नन्दा कहने में और भी सुगमता होती है, नलिनी जी, सहूलियत मिलती है ।” मुसकराती नन्दा बोली । गृह से मोढ़ा लाकर उसे बैठाया ।

“लेकिन बात यों है कि हमारे सभ्य समाज में सभ्य रीति से बर्ताव जो किया जाता है । नाम लेकर पुकारना असभ्यता है ।”

“ऐसा ? फिर आपकी जैसी इच्छा ।”

नलिनी बैठी, एक बार गृह के चहुँ ओर तीक्ष्ण दृष्टि फेर कर कहा,
“आज आपका घर सुना क्यों है ?”

“सूना ?”—हास्यस्फुरिताधर मे नन्दा ने पूछा—“क्या मतलब ?”

“आपके भक्त युवकगण एक नहीं दीखते ।”

नलिनी के स्वर का मूर्ते परिहास नन्दा ने मुना; समझ कर भी
अनमुना कर दिया । बोली—“आते होंगे, जल्दी क्या है ?”

“लेकिन एक बात, भिमेम राय, जोकि मुझे कहनी नहीं चाहिए ।”

“ऐसा ।” तरलस्वर मे नन्दा कहने लगी—“तो भी आप कहना चाह
रही हैं । एक बार यदि आप भय्यता के विरुद्ध ही बात कर दे तो हानि
क्या है ? फिर यह मुनने कौन आता है ? छिप कर जो अन्याय, जितना
भी अपकर्म ओर पाप ही मही, क्रिया जाए, उमे पाप व अन्याय नहीं
कहा जा सकता ।”

पीछे के शब्द नन्दा यों सहज स्वर मे कह गई कि नलिनी समझ न
सकी कि नन्दा सचमुच अपने मन का सिद्धान्त प्रगट कर रही है अथवा
व्यंग्य कर रही है ?

तब उत्माहित कंठ मे नन्दा कह रही थी—“कह दीजिए श्रीमती
जी, सोच-विचार करने की क्या जरूरत ?”

“बस, बग । मेरे मत के साथ आपके मत का मेल इसी स्थान
पर है । मैं कभी सोच-विचार नहीं करती । सदा मुँह पर सच-सच कहने
वाली हूँ । सब लोग मुझे स्पष्टवक्ता कहते हैं । यो कह रही थी—आप
उन उच्छ्र्वल युवको से नहीं डरती ?”

“उन से उरूँ ? किन्तु क्यों ?” अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को खोलकर
नन्दा ने पूछा ।

“अजी इनका क्या विश्वास । पुरुषगण जवान औरतें जहां देखते हैं,
बस जोंक की तरह चिपट जाते हैं । दो दिन अपना मन बहलाया और
फिर दूर हटा दिया । बड़े ही डेजरस होते हैं ये लोग ।”

अवाक्-विस्मय से उस सभ्य स्त्री की असभ्य बाते नन्दा सुनती रही, फिर भटके दे दे कर अपने मन की जड़ता को दूर किया। बोली—“मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता—मेरे जीते जी, मेरी सुध रहते हुए, कोई कुछ नहीं कर सकता है।”

“देखिए मिसेस राय, धमंड भित्ति-हीन होता है। पाकिस्तान की औरत की दुर्दशा की बातें सब जानते हैं। नारी नारी के सिवा और क्या हो सकती है?”

निविड़ वेदना से नन्दा का मुँह पीला पड़ गया। परन्तु तो भी वह सहमी, कहा—“उस आमामानुषिक अत्याचार की कल्पना तक तब संसार को नहीं थी न। पाकिस्तान के अधिवासी उस अत्याचार के लिए प्रस्तुत कहां हो पाए थे? उन नर-नारी को जरा सोचने का समय तक नहीं मिला कि उस स्थिति में उन्हें करना क्या है? उचित क्या है? दो शब्दों में इन बातों की चर्चा नहीं हो सकती है नलिनी जी!”

“आपका अद्भुत मतामत है।”

नलिनी का मन्तव्य तब शायद ही नन्दा ने सुना हो। कह रही थी तब नन्दा—“डेन्जरस युवक नहीं हुआ करते; डेन्जरस होते हैं अंधे व्यक्ति—न वे अति वृद्ध हैं, न युवक। वे ही भयानक हुआ करते हैं।”

“न जाने आप क्या कह रही हैं?”

“ठीक कह रही हूँ बहन। उनके व्याघ्र की भांति पंजे हुआ करते हैं और वे तीक्ष्ण पंजे जहर से बुझे हुए रहते हैं।” नन्दा मृदु-मृदु हँसने लगी।

इतने में पहुँच गई श्रीमती चौधरी। नन्दा ने अभ्यर्थना कर उसे बैठाया, कहा—“कल आपके आने की खबर मिली और मैं आपके लिए बैठी ही रह गई, आई नहीं।”

अपने विपुल शरीर को कुर्सी पर डाल कर चौधरानी ने कहा, “मिसेस वर्मा पहुँच गई तो आ नहीं सकी। नलिनी, अच्छी तो हो न ?

इधर बहुत दिनों से आई नहीं ?”

“काम में फँसी हुई हूँ । आज एक जरूरी काम मे मिमेम राय के पास आई हूँ ।”

“ऐसा ?”

“जी हाँ ।”

“कहिए, न नलिनी जी । मैं जरूर करने की चेष्टा करूँगी । क्या काम है ?”

“इन दिनों आपके पास भीड़ लगी रहती है । लीजिए, यह टिकट-बुक, सहज मे उन लोगों के पास बेच लेंगी ।”

“कैसा टिकट-बुक ?”

“हम एक ड्रामा खेल रही हैं ।”

“ऐसा ?”

“जी हाँ । एक फैनसी क्लब बनाया जा रहा है, इसके सब पैसे उसमे लगाएँगे ।”

“मुझे क्षमा करे श्रीमती, मुझमे नही होगा ।”

“नही, यह काम तो आप को करना ही पड़ेगा मिमेम राय !”

“यह काम मेरे मिद्धान्त के बाहर है ।”

“क्यों ? जनता के लिए टिकट बेचना क्या कोई खराब काम है ?”

“नही । परन्तु यदि जनता के लिए होता तो मैं अवश्य करती ।”

“लेकिन काम तो जनता के ही लिए है, न ?”

“नही, यह है किमी एक संस्था विशेष के लिए, एवं फैशन विशेष के लिए । फैनसी क्लब आपने कहा न ?”

“फैशन करना क्या कोई पाप है ?”

“कौन कहता है ?”

“तब ?”

धीरे नन्दा बोली—वह कहने लगी—“जब देश भूखों मरता हो,

तब फैशन की रक्षा करने के लिए जनता को उभारना, उम और उसे आकर्षित करना, उस काम के लिए उससे पैसे लेना मैं एक प्रकार का पाप ही समझती हूँ। हमारे हिन्दुस्तान को स्वाधीन हुए अभी कितने दिन हुए ? वर्षों की गुलामी में अपने सारे ऐश्वर्य, अर्थात्—ज्ञान, विज्ञान, कला आदि को और शायद अपनी सभ्यता को खोकर हजारों देश-भक्तों का बलिदान कर वह आज पुनः स्वाधीन हुआ है। और उसके सब कोप प्रायः सूने हैं। इस समय हम हिन्दुस्तान निवासियों को अपनी पूरी ताकत लगाकर और ईमानदारी के साथ उसके सब खाली कोपों को भरना है। ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, संगीत आदि की पुनः उन्नति करनी है। केवल यही नहीं, वरन उन्हे समृद्ध करना है। नित नवीन खोजों द्वारा उन्हें चरम उत्कर्ष तक ले जाकर प्रतिष्ठित करना है। हिन्दुस्तान की स्वाधीनता अभी कच्ची भीत पर टिकी हुई है। हमें इतनी शिक्षा प्राप्त करनी है कि जीवन को वास्तविक दृष्टि से निकट में देख सकें। यदि हम प्रत्येक नारी अपनी एक-एक मुशिक्षित सन्तान नागरिक के रूप में उसे नहीं दे सकें तो हिन्दुस्तान की स्वाधीनता शायद ही चिरंजीवी बनकर रह सकेगी। और हम नारी भी कल्पित 'अबला' के भय को त्याग कर अपने शरीर, मन को इस प्रकार तैयार करें कि दस-त्रीस दुशमनों से अपना घर बचा सकें, तभी इस स्वाधीनता का कुछ अर्थ निकलता है।”

“याने आपका कहना है, फैशन करना पाप है, यही न ?”

वह अपनी धुन में कह चली—“अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो है। ऐसे वक्त फैशन और फैन्सी आदि की कल्पना ? मैं तो मोच ही नहीं सकती, फिर उसके लिए कैसे महायता करूँ ?”

“ऐसा !”

“जी हाँ, इस काम के लिए मैं कुछ भी सहायता नहीं कर सकती हूँ।”

नन्दा की दृष्टि चौधरानी के कटे हुए बालों ने आकर्षित कर ली।

चौधरानी जी की नवीन सूझ, याने कटे हुए बालों को देखकर वह मुसकरा पड़ी—तीक्ष्ण दर्दभरी वह मुस्कान, और पल भर में उस गत-यौवना नारी का हृदय नन्दा की आँखों के सामने दर्पण-मा स्वच्छ हो गया । चांद की छाया अंकित-सा उस मनोवृत्ति का चित्र देख-देख कर वह मिह्रने लगी ।

नारी के मन की यह कैसी हेय प्रवृत्ति है ? मोच उठी नन्दा—वह अपने यौवन को, बाँध कर रखना चाहती है ? बालों को काट कर, ओठों को रंग कर, शरीर को कम कर, पिचके हुए गालों पर क्रीम, पाउडर मल कर वह अब भी अपने को एक दर्शनीय, आकर्षक बनाकर रखना चाहती है ? वय-प्राप्त सन्तान के आगे पहने आप ही किशोर बनना चाहती है । नकल द्वारा वह वास्तविक को अस्वीकार करना चाहती है ? कैसी है यह नारी ? क्या यही है अनेक समवेत प्रवृत्तियों की एक आधारभूत इसकी प्रधान प्रवृत्ति ? इस प्रवृत्ति का आदि और अन्त कहाँ पर है ?

उत्तर आया उसके मन के प्राण से—नही-नही, नारी मात्र की यह प्रवृत्ति, यह मन-वृत्ति, और प्रकृति नहीं है । हो नहीं सकती है । उसक कई रूप हैं न, जोकि अवस्था के साथ-साथ क्रमशः विकसित होते हैं । किशोरी में जीवन का उन्मादक स्वभाव-सिद्ध होता है, युवती बन जाती है प्रेमिका । तब आगमन है माता का, प्रौढ़त्व तो मातृ-भाव का समन्वय कर देता है, संसार के हर पहलू से, हर दिशा में मातृ-स्नेह से ओत-प्रोत जो है प्रौढ़त्व । वृद्धत्व भक्ति रस को उभारता है । तो ? पुनः प्रश्न उठा नन्दा के मन में—तो कुछ नारियों में ऐसा व्यतिक्रम क्यों पाया जाता है ? तुरन्त मन कह उठा—पाश्चात्य का जबरदस्त अनुकरण हो सकता है; आए दिन के सिनेमा के चित्र, वे गायन और अति अग्रसर एक निराली सोसायटी का प्रभाव, जहाँ केवल नकल, केवल उच्छ्वलता, केवल एक दूसरे पर विजय की भावना—होड़ ही जी सकने का उद्देश्य बना हुआ हो ।

किसी से कुछ कहे बिना नलिनी चल दी, फिर द्वार पर से लौटी, चौधरानी को नमस्कार किया, सुनन्दा के प्रति देखा तक नहीं और द्रुत कमरे के बाहर निकल गई।

चौधरानी बोली—“मैं तुम्हारे पास विशेष काम से आई हूँ। दादा जी के घर तुम्हारी कार्य-कुशलता से मैं प्रभावित हो उठी। यों एला की शादी तय हो गई है। इस शादी में सब काम-काज तुम को करना पड़ेगा।”

“जरूर करूँगी। वर तो लिखा-पढ़ा होगा ही।”

“अब क्या कहें? मि० चौधरी के मारे हैरान हूँ। एला का योग्य वर यों मनीश था। सम्य, विद्वान्, सुसंस्कृत, किन्तु उन्हें पसन्द नहीं, खैर यह वर बुरा नहीं है। पाकिस्तान का भागा हुआ है। धन-कुबेर है। चार-चार मोटरों पर चढ़ेगी एला। वह खुश है।”

“खुश है?” बोली नन्दा इस तरह जैसे सहसा उस पर हिसक व्याघ्र टूट पड़ा हो। उसका मन वितृष्णा, अश्रद्धा में पूर्ण हो गया। नन्दा भली-भाँति जानती थी कि मनीश ही एक ऐसा है, जोकि एला के मन में बसा हुआ है। एला और मनीश का प्रेम प्रायः उनके मिलने वाले जानते थे। कुछ देर तक सुनन्दा हतवाक् हो रही। सोचने लगी वह—क्या आज की सभ्यता की माँग केवल अर्थ है? धन ही है? धन के निकट प्रेम का कोई मूल्य नहीं है? महत्व नहीं है?

प्रश्न के बाद प्रश्न उठने लगे उसके मन में—“तो इस युग का सतीत्व क्या लोकनेत्रों के अगोचर ही महत्व रखता है? क्या मानव नेत्र के अन्तराल यदिच्छाचार करने में दोष नहीं मानते?” विस्मित विराग से वह सोचती ही रही आई—“कैसी हैं वे नारियाँ जो कि एक के प्रेम को धूल की भाँति दूर फेंक कर धन के प्रति भुक जाएँ? उनके मन के प्राण में क्या केवल धन की लोलुपता, मोह ही भरा रहता है?” अपने विचार में सुनन्दा यों तन्मय थी कि चौधरानी की उपस्थिति वह विसर गई।

“मे चलूँ ? तुम्हें खबर देने आई थी, अब निश्चिन्त हो गई, याद रखना, सब काम तुम्हें सम्भालना है।”

अनमनी-गी नन्दा ने कहा—“तो एला खुश है ?”

“हाँ, बहुत खुश। अच्छा तो।”

चौधरानी को द्वार तक पहुँचा कर सुनन्दा लौटी, सुप्रकाश सफर में लौटने वाला था, उसके लिए भोजन तैयार करना था।

एक जंगली आँधी की भाँति मनीश प्रविष्ट हुआ।

“भाभी, तुमने उस नलिनी को क्यों मिर चटा रखा है ?”

“बैठो तो, क्या बात है मनीश बाबू ? आज मैंने आपके लिए खाजे बनाकर रखे हैं। बैठिए डम् पर।”

मनीश बैठा और नन्दा का हाथ पकड़ कर उसे अपने निकट बैठा लिया, फिर उसकी जंघा पर हाथ रखकर बोला—“इस नलिनी के मारे मैं छिपा-छिपा फिरता हूँ।”

“क्यो भला ?” कौतुहल में नन्दा ने पूछा।

“अजी, यह मुझमें प्रेम करने के लिए तुली हुई रहती है। जैसा कि पहले वह दीपेन, नाग साहब आदि में करती थी। और आज गजब होगया !”

“क्यों ?”

“मे यहाँ बहुत देर का आया हूँ। और ठीक उसी समय वह तुम्हारे पास में चली, उसने रास्ते में मुझे रोक लिया। फिर मुझे लेकर अपने घर पहुँची। चाय पिलाई।”

“अच्छा तो किया।”

“अजी, शादी का प्रस्ताव कर बैठी न।”

सुनन्दा खिलखिला पड़ी—“खराब क्या है ? शादी करलो।”

“शादी करलूँ ? उस असभ्य विधवा से ?”

“विधवा होना क्या कोई पाप है ?”

“नहीं। लेकिन जिसे देखने से घृणा होती है, उससे कोई शादी कर सका है? यों पहले दीपेन के पीछे पड़ी हुई थी, अब मैं मिल गया।”

नन्दा उठकर खड़ी हो गई। मनीश भी उठा।

“आप बैठिए, खाना ले आऊँ।”

“नहीं।”—कहकर गमनोद्यत नन्दा को उसने दोनों हाथों से जकड़ लिया।

नन्दा ने एक बार द्वार के प्रति देखा, इस शिशु स्वभाव के युवक के स्नेह का अत्याचार वह सरल स्नेह से सह लेती थी। किन्तु संसार? वह क्या जाने? वह कैसे समझ सकेगा कि उसके शरीर-स्पर्श के भीतर तिलमात्र भी उच्छ्वलता नहीं है।

जरा विरक्त होकर वह बोली—“आपको बिलकुल समझ नहीं है। छोड़िए, बैठती हूँ, क्या आदमी ये लिपटकर ही बात की जाती है?”

अप्रतिभ होकर मनीश ने मुँह बना लिया।

“नन्दा चल दी, थोड़ी देर के बाद तश्तरी में सफेद खाजे लेकर पहुँची, दूसरे हाथ में पानी का गिलास मनीश के सामने तश्तरी में रखकर स्वयं निकट बैठ गई—“खाइए।”

“मुझे भूख नहीं है।”

“भूख नहीं है? तो नलिनी देवी ने ऐसा क्या खिला दिया? इधर तो आप उसकी निन्दा करते हैं, उधर उसी के घर दूँस-दूँस कर खाते हैं।”

चिड़कर मनीश बोला—“तुम जल्म पर क्यों नमक छिड़क रही हो भाभी? लो सब खाए लेता हूँ।”

“ऐसा? मैं जल्म पर नमक छिड़कती हूँ? चोरी करने वाला चोर नहीं, देखने वाला चोर बने? उल्टी दुनियाँ है।”

“तुम भली भाँति जानती हो कि उसे मैं कभी भी अपना नहीं सकूँगा।”

“तो किसे अपना सकोगे ?”

मनीश कौतुक से कह उठा—“तुम्हें भाभी ।”

अकारण ही नन्दा के कपोलों पर लाली दौड़ गई। तब पूर्ण उत्साह से कह रहा था मनीश—“तुम सही रास्ते पर हो भाभी, देखो कि सतीत्व का गर्व करने वाली—यह नलिनी पुनर्विवाह करना चाहती है। ऐसी को कैसे सती कहा जाए। और यो जाने कितनी मे वह विवाह के लिए कह चुकी है ।”

नन्दा चपचाप मुसकराने लगी।

“विश्वाम नहीं हुआ ? मे प्रमाण दे सकता हूँ ।”

“दोहाई मनीश बाबू, मुझे प्रमाण आदि की जरूरत नहीं ।”

“और सब उसकी बनावटी बातें हैं। वह सतीत्व का दम्भ क्या करती है—नकल में अपने असली रूप को छिपाती है, एक दिन देख लेना भाभी,—इन सती की नकली आवाज लगाने वाली स्त्रियों का क्या से क्या हो जाएगा ।”

नन्दा वैसी ही बैठी मुसकराने लगी।

[७]

सुनन्दा गोश्त भून रही थी और सँगीत का पद गुनगुनाती जा रही थी। सुप्रकाश चौके में पहुँचा, जरा देर खड़ा रहा, फिर लौटने लगा। आश्चर्य से सुनन्दा ने पूछा—“कुछ कहना है ?”

“मुझे ? हाँ, नहीं, योंही ।”

सुप्रकाश के उस असम्बद्ध वाक्य से नन्दा चकित हुई, “क्या कहना है, कहते क्यों नहीं ?”—चौके के द्वार पर हाथ धोती हुई नन्दा ने कहा।

“विशेष कोई बात नहीं नन्दा, यों—”

“तो भी ?”

“यहाँ धुँए से जान निकल रही है, कमरे मे आओ ।”

मुनन्दा ने गोश्त का ढक्कन खोलकर उसमें थोड़ा पानी डाला । चूल्हे की एक लकड़ी निकाल ली । नमक की छोटी-सी हाँडी को टीन के टुकड़े से ढाँका, कटी हुई सब्जी पर थाली ढाँक दी, रसोई के दरवाजे पर कुंडी चढ़ाकर सुप्रकाश के निकट पहुँची । सुप्रकाश के निकट मोढ़े पर बैठकर उसने पूछा—“क्या बात है ?”

मस्तक खुजलाता हुआ प्रकाश बोला—“यह पत्र—”

“कैसा पत्र ? कहाँ का है ?”

“पिता जी ने लिखा है ।”

“क्या कोई विशेष बात लिखी है ?”

“मेरी शादी की तैयारी कर रहे हैं ।” एक श्वास में इतना कह कर अपराधी-सा प्रकाश धरती निहारने लगा ।

तरल स्वर से नन्दा ने उत्तर दिया—“इसमे सोच-विचार की बात क्या है ? शादी कर लो ।” अपने मन की अस्थिरता को दूर हटाकर वह पुनः बोली—“बस इसी के लिए सोच-विचार कर रहे थे ?”

सुप्रकाश की शादी की बात सुनकर नन्दा अधिक विस्मित हुई हो, ऐसा नहीं, यों जरा-सा विस्मय कदाचित् उसके मन के किसी कोने में जाग पड़ा हो तो कौन जाने ?

“कर लो न शादी ।” जोर देकर नन्दा ने पुनः कहा ।

“पिता जी ने लिखा है कि वंश लोप हो जाएगा । उन्हें ऐसी जल्दी है कि एक अमीर की लड़की को फलदान भी कर आए हैं । लगन तक बँच चुकी है ।”

कदाचित् दो मिनट तक नन्दा स्तब्ध, विमूढ हो रही, फिर भाड़न उठाकर टेबल भाड़ती हुई बोली—“अच्छा, इसीलिए तुम घर गए हुए थे । हाँ, आज जरा जल्दी खा लेना, मुझे चौधरी जी के घर जाना है ।

मोंटर पहुँचती होगी। लो, वह पहुँच गई। बाप रे ! चौधरी माहब की गाड़ी ने तो मेरा नाकों दम कर रखा है। एला की शादी क्या है मानो पहाड़ टूट पड़ा हो—चौधगनीजी के मिर पर। और तुमने सुना है ? वर झूट मार्गी है।

इधर एला एक नम्बर फ़ैगनेबुल लडकी, ऐसी को वे कहाँ ढकेल रहे हैं ? पैमा चौधरी परिवार के लिए सब कुछ है।” यो बोली नन्दा जैसे कही कुछ हुआ ही न हो। मुप्रकाश की शादी की बातें उसने सुनी ही न हों।

प्रकाश जो कि अपनी विवाह-वार्ता की नींव अभी-अभी डाल चुका था, और मुनन्दा के सामने मुँह उटाते जिसे संकोच लग रहा था, तब तक लज्जा, संकोच को लांघ न पाया था। वही प्रकाश दूसरे की गमालोचना करने की वार्ता पाकर मानो जी-मा गया। विस्मित भाव से बोला—“अरे सच ?”

“सच है जी, ऐमे विवाह का परिणाम किन्तु सुन्द नही हुआ करता है।”

“उन महाशय का नाम क्या है ?”

“वर का ? नाम नहीं जानती; पाकिस्तान से आया हुआ कोई धनवान् व्यापारी है। यहाँ कई बँगले, बगीचे, सिनेमा, स्कूल, और न जाने क्या-क्या खरीद लिए हैं। स्कूल खोले हैं। चलो भोजन कर लो, कार खडी है।”

“तुम चली जाओ, मैं खा लूंगा।” नित्य की भाँति नन्दा के सामने बैठ कर भोजन करते उसे लज्जा हो रही थी।

“और मैं भूखी चली जाऊँ ? चलो-चलो।” कहती हुई मुनन्दा चौके में पहुँची। पहुँची यह तो ठीक है, किन्तु वहाँ जाकर वह चुपचाप खड़ी रह गई। जैसे उसका चौके का सारा माधुयं सहसा ही छिन गया हो। हाँ, पुरुष को यत्न से भोजन कराकर नारी को जो आनन्द पुरस्कार स्वरूप

मिला करता है, वह जरा-सी खुशी, थोड़ा-सा सन्तोष भी मानो उसके रसोईघर से भागने के लिए उद्यत हो गया हो । प्रकाश का विवाह होगा ? उसका जी जाने कैसा हो उठा—इन कुछ दिनों का परिचय, अपनेपन की पुकार—वह सब सोचती हुई हठात् सुनन्दा इस एकान्त में हँस दी—विद्रोहपूर्ण वह हँसी । दूसरे पल कठोर सत्य को जैसे नन्दा ने अपने में कस कर पकड़ा और अवहेलना से सोचने की चेष्टा करने लगी—यह तो बसेरा है, चाहे जब टूट जाया करता है, इसमें सत्य है ही कहाँ ? चाहे कोई कहीं चला जाए, दुनिया उथल-पुथल हो जाए, किन्तु मैं तो मैं ही बनकर रही आऊँगी न ।”

सुनन्दा ने भटके दे देकर हाथ-पैर की जड़ता दूर की, कटोरियाँ लगाई, एक में लौकी पड़ी हुई मूग की दाल, दूसरी में आलू-टमाटर की तरकारी, छोटी-सी कटोरी में थोड़ा मक्खन रखा, गोश्त को हाथ से दबाया, कच्चा था । शाम के काम में आगमा । दही पत्थर की कूण्डी में रख, दही वह घर में जमाती थी । दो केने तश्तरी में रख, फिर थाली में फुलके रख कर सुप्रकाश को पुकारा, पूछा—“भात लोगे ?”

थोड़ा भात थाली में डालकर विही के पत्ते में चटनी रख दी ।

अनमना-सा सुप्रकाश ने भोजन किया और जल्दी उठ गया । नन्दा ने बर्तनों को समेट कर नल के नीचे रखा । चौका साफ किया । बाहर किसी के पद-चाप से अस्त-व्यस्त नन्दा गोबर भरे हाथ में, एक हाथ में लाल मिट्टी की हाँडी लिए हुए दालान में निकली और मि० चौधरी से टकरा गई । मिट्टी की हाण्डी छिटक कर दूर गिरी । वह मँभल कर खडी हो गई—“अरे आप ?”

“मैं देर से कार में बैठा हुआ हूँ, प्रकाश बाबू स्कूल चले गए, तब मैं अन्दर आया ।”

चौधरी जी की बातें नन्दा को जाने कैसी अटपटी-सी लगीं । उसने गोबर भरे हाथ से साड़ी का पल्ला सिर पर डाला, बोली—“आप

इतनी देर तक गाड़ी में क्यों बैठे रहे ? अन्दर आ जाते ।”

“अन्दर आता ? लेकिन प्रकाश बाबू कही मोच न बैठते कि मेरी बीबी के पीछे मि० चौधरी क्यों पडा रहता है ?”

चौधरी के वचन का कुत्मित इंगित समझ कर नन्दा मन ही मन भुँभलाई । पूछा—“आज आपने कैसे कष्ट किया ?”

“यो ही, किरी को देखने के लिए जब किसी का जी बेचैन होता है तो वह सब कुछ कर सकता है। मुनन्दा, मोचो कि मैं तुम्हें देखने को चला आया ।”

चौधरी जी के उम तुम सम्बोधन में नन्दा जल-सी उठी, कहा—
“क्यों ? मुझ में ऐसी कौन-सी विचित्रता है मि० चौधरी ?”

चौधरी ने हठान् उमका गोबर भरा हाथ पकड़ लिया—“तुम्हारा जन्म राजरानी बनने के लिए हुआ है मुनन्दा । गोबर-मिट्टी में सनने के लिए नहीं ।”

नन्दा ने तीक्ष्ण दृष्टि में उस वृद्ध-प्राय व्यक्ति को देखा । भटके से हाथ खींचा, नल पर पहुँच कर हाथ धोया । मोँढ़ा जरा हटा दिया । “बैठिए ।” और उम मडराते हुए अशोभनत्व को हलका करके परिहास-तरल कंठ से बोली—“जब कि उस जन्म में रानी नहीं बन सकी हूँ, मि० चौधरी, तब नौकरानी बन कर ही क्यों न सन्तुष्ट रहूँ ?” फिर विषय दूमरी और मोड़ने के अभिप्राय में कहा—“अब चलिए चौधरानी जी मेरी प्रतीक्षा करती होगी ।”

किन्तु चौधरी ने उठने का नाम तक न लीया, वरन पाकेट से सिगार केस निकाल कर एक सिगरेट मुँह में दबाया, माचिस से उसे सुलगाया—
“वे और एला मि० भटनागर के साथ मार्केटिंग को गई हैं । वहाँ से शायद पाँच बजे तक लौट सके ।”

“ऐसा ? तो आप जरा मुझे दादू के घर तक पहुँचा दीजिए ।”

“वहाँ जाने की ऐसी जल्दी क्या है ?”

“मनीश बाबू कई दिनों से नहीं आए, शायद बीमार हों ।”

“इस लिए जाना है या और कुछ ?”

“याने ?”

“पहले कहो कि अकेले मेरे साथ रहने में डर तो नहीं रही हो ?”

नन्दा ने सहज मुस्कान से उस प्रौढ़ व्यक्ति को देखा, कहा—“डर ? नहीं महाशय, मैं किसी से नहीं डरती ।”

“ऐसा ?”

“जी हाँ, आप कोई शेर-भालू थोड़े ही हैं ।”

“ओः, भूल गया था, सुना है तुम युवकों से घिरी रहा करती हो ।”

“परन्तु यौवन की सरलता प्रौढ़त्व से कही उच्च श्रेणी की हुआ करती है ।” चेष्टा करने पर भी नन्दा के कंठ की भुंभलाहट अव्यक्त नहीं रह सकी ।

ठोकर खाकर चौधरी चिढ़ा—“क्या प्रौढ़त्व कोई अभिशाप है ? प्रौढ़ व्यक्ति क्या कपटी हुआ करते हैं ?”

“नहीं तो । आप मेरे डरने की बात कह रहे थे, युवकों से बिलकुल नहीं डरती । यों किसी-किसी प्रौढ़ व्यक्ति से जरा दूर रहना पसन्द करती हूँ ।”

“समझा । याने आपके विचार से प्रौढ़त्व में प्रेम मर जाता है और पशुत्व प्रबल होता है ?”

मि० चौधरी के पुनः ‘आप’ सम्बोधन से मन में सुनन्दा प्रसन्न हुई, कहा—“नहीं जी ।”

“तो ?”

“क्या करोगे सुनकर मेरे विचार ? मेरा मतामत शायद दुनियाँ के लोगों को विचित्र लगे ।”

“कह ही दीजिए मिसेस राय ।

सहज स्वर से वह बोली—“प्रौढ़त्व अपने गत यौवन को खोजता

फिरता है, हाँ, युवती के यौवन की छाया में। अपने प्रौढ़त्व को ढाँककर यौवन की उमंगों को पुनः वापस लाने की मिथ्या चेष्टा करना उसके लिए स्वाभाविक तो है न मि० चौधरी ? युवकों का प्रेम उन्मत्त व उन्माद पूर्ण हुआ करता है। और इन वृद्ध प्रायः व्यक्तियों का नपा-तुला, मोह की मोल-तोल, नहीं महाशय, वह प्रेम नहीं एक प्रकार की हिंसा है, लोलुप लालसा ही तो है न ? जिस लालसा के पंजे तीक्ष्ण ब्रूल के काँटों के समान होते हैं। उनके लिए युवतियाँ मात्र एक स्वार्थ-साधना की वस्तु हुआ करती है।”

सहसा चौधरी के चीत्कार से नन्दा मध्य पथ में रुकी—“आपकी स्पष्टवादिता जैसी असम्मान से भरी हुई है, वैसी ही गन्दी, असभ्य।”

“परन्तु मैं तो कहना नहीं चाह रही थी मि० चौधरी।”

“आप कहती है, प्रौढ़ व्यक्ति का प्रेम झूठा होता है ?”

“ऐसा मैंने कब कहा ?”

नन्दा की बातें अनसुनी-सी कर चौधरी कहने लगा—“अगर प्रेम न होता तो मेरी तरह आराम-तलब आदमी को दोपहर में यहाँ तक घसीट कर कौन लाता ? किसमें इतनी ताकत है ?”

घृणा और विस्मय से नन्दा ने चौधरी के उन नेत्रों के प्रति देखा, जो कि किसी वासना के प्रबल प्रकोप से उन्मत्त से हो रहे थे। उसने कहा—“देखिये मि० चौधरी, अकेले घर में प्रेम की परिभाषा सुनना मैं पसन्द नहीं करती, अच्छा हो यदि आप उनके घर लौटने के बाद आँ, यो आज मुझे मनीश बाबू के घर भी जाना है।”

चौधरी अपने आपे में लौट आया। बोला—“मुझे माफ कर दीजिए मिससे राय, तर्क के नाते अगर आपके सम्मान के विरुद्ध कोई बात कही हो तो उसे भूल जाइये।”

“ऐसी छोटी-छोटी बातों पर मैं ज्यादा मस्तिष्क नहीं खपाया करती। आप निश्चिन्त रहें।”

“और हाँ, इन बातों की चर्चा दूसरों से करना याने आज अपने बीच जो तर्क-वितर्क चला था, उन बातों को वे नहीं जान पाँगे, थोडा-सा मुनकर किसी निष्कर्ष पर उतरना, हमारे भाइयों का दुर्गुण है।”

हँसकर नन्दा ने कहा—“आप निश्चिन्त रहें, गन्दी बातों की चर्चा करने के सिवा दुनियाँ में क्या और कोई काम नहीं रहता है ? मुझे इतना अवसर वहाँ जो छोटी-मोटी बातों को कहती फिरूँ ? संसार कितने महत्, उपयोगी कार्य पड़े हुए हैं।”

चौधरी को लगा कि नन्दा ने गन्दे शब्द पर जान बूझकर जोर दिया। अपमान की कटुता से उसके कान तक लाल हो गए। वह जल्दी से उठकर चलने लगा।

नन्दा ने रोका—“वाह चौधरी साहब, भूल गए ? मुझे दादू के घर तक पहुँचाना है।”

“मुझे ?”

“जी हाँ।”

वह विस्मय से वाक्हीन हो रहा नारी कैसी दुर्वोध, एक पहेली है, अभी जिसे अपमान कर कटुता से बिद्ध किया, तीक्ष्ण वाक्य-बाण से जिसे बिद्ध किया, उसी के साथ जाने में जरा भी हिचक नहीं है।

“आप तब तक कार पर बैठिए, मैं कपड़े बदल लूँ।”

कार भागती चली जाती ! कार की खिड़की से मुँह निकालकर नन्द मनीश की बातें सोच रही थी। इन दिनों वह उसके निकट बहुत कम आता है। किन्तु क्यों ? बहुत सोचने पर भी कारण का अनुसन्धान नहीं कर पाई।

श्रीनाथ के घर उतर कर नन्दा ने कहा—“चौधरानी जी से कह दीजिए, कल आऊँगी। नमस्कार।”

[८]

धूप-दीप और शंख हथेली पर लिए सन्धारानी संसार में उतरती चली आती। क्लान्त, श्रान्त-सा दिन अवसान की ओर बढ़ता चला जा रहा था। चलता दिन अवसान की ओर सो लौट-लौट कर, रुक-रुक कर देखता—विश्व के प्रति। दिन भर के बारह घण्टों में उमने न जाने कितने सुख-दुख, अत्याचार, प्रचार की स्मृतियों को अपने हृदय में अंकित कर लिया था। उन पद-चिह्नों की स्मृति को वह लौटकर बटोर लेना चाहता। बुझनी-सी सूर्य की रश्मियाँ कभी धूप-छाँह में छिपने लगतीं, कभी हलकी लालिमा लिए उभर आतीं, दिन चलता चला जाता अवमान की ओर।

तब घर लौटने के लिए सुनन्दा व्यग्र हो रही थी। बारह बजे की निकनी है, सुप्रकाश घर पहुँचता होगा। वह वन्द मकान के बाहर भटकता रहेगा। परन्तु श्रीनाथ अपनी बातें खतम नहीं कर पाए थे।

कह रहे थे श्रीनाथ—“मनीश इन दिनों अवारा हो रहा है। शराब पीना बढ़ता जा रहा है। कभी रात भर गायब रहता है। कमजोर होता चला जा रहा है।”

“उनकी शादी क्यों नहीं कर देते ?”

“वह शादी के लिए तैयार हो तब न ? मैंने एला के लिए कहा था, क्योंकि वैसी लड़कियाँ उसे पसन्द आती। यद्यपि मुझे एला बिल्कुल पसन्द नहीं थी। नाचने वालियों की तरह ऐसी लड़कियाँ कहीं घर की बहू बन सकी हैं ? केवल मनीश के लिए उस जसी लड़की भी मैंने घर की बहू बनाना स्वीकार किया।”

चौककर नन्दा ने पूछा—“क्या वे राजी नहीं हुए ?”

“खूब हँसा, ऐसा कि मुझे भी हँसी आ गई। मैंने कहा, यदि तुम्हें एला पसन्द नहीं तो और ढूँढ़ें। तुम जैसे लड़के के लिए पचासों सुन्दर

लड़कियाँ मिल जाएँगी । लेकिन वह तो शादी करने ही से इन्कार कर बैठा ।”

“क्यों दादू ! ऐसा क्यों ?”

“उसका कहना है कि हम बाप-बेटे ठीक हैं, मजे से हैं, किसी तीसरे को घर में लाकर अशान्ति मोल लेने की जरूरत नहीं ?”

“परन्तु शादी उनकी होनी चाहिए ।”

“मैंने पूरी तैयारी कर ली है ।”

“सच दादू ?”

“हाँ ! गणपति मेरा अन्तरंग मित्र था । उसकी लड़की कल्पना दम्बने में साधारण है । लेकिन लक्ष्मी, ईश्वर ने उसमें गुण कूट-कूट कर भरा है । गणपति अभी एक महीना पहले तो मरा है, मरते समय उसने कल्पना को मुझे सौंपा । बोला—‘आज से कल्पना तुम्हारी बहू हुई भाई’ । श्राद्ध के बाद कल्पना को घर लाऊँगा । लेकिन ये बातें अपने ही तक रखना । मने मनीश से कुछ नहीं कहा ।”

जरा रुककर श्रीनाथ कहने लगे—“अकेली क्वारी लड़की का रहना ठीक नहीं । गरीब की लड़की अपने यहाँ खा-पीकर दो दिन में तैयार हो जाएगी ।”

“कहाँ तक पढ़ी है ?”

“थोड़ा-सा कुछ पढ़ लिया है । गरीब बेचारा पढ़ाई का खर्च कैसे चलाता ?”

“तुम घर में लाकर रखोगे दादू, क्या यह ठीक होगा ? यदि अन्त में वे नहीं कर दें ?”

“ऐसा नहीं हो सकता है लक्ष्मी । एक साथ रहते-रहते ममता पड़ जाती है । और मुझे विश्वास है वह दादा के दिए हुए वचन की अवहेलना नहीं करेगा ।”

परन्तु नन्दा इस बार श्रीनाथ की हाँ में हाँ नहीं मिला सकी । उसे

कुछ खटका ।

श्रीनाथ अपने आप में मस्त सिर हिला-हिला कर कहने लगे—
“कल्पना को कुछ दिनों तक तुम्हारे पास रखूँगा नन्दा, जिससे कि वह तुम्हारी तरह लक्ष्मी बन सके । देखो न दो-तीन घण्टे हुए होंगे तुम्हें यहाँ आएँ, इसी बीच घर-मकान की सफाई कर डाली । यो कि आज मैं भी पेट भरकर अपनी बेटा की बनाई हुई गरम-गरम कचौरियाँ खाकर गत बीस वर्ष की आयु में पहुँच गया ।” श्रीनाथ हँसने लगे ।

नन्दा ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, उमकी दृष्टि द्वार पर खड़े मनीश पर आकृष्ट हुई । उसके रूखे बिखरे हुए बाल, सूखा मुँह, लाल आँखों के प्रति देखकर नन्दा मिहरी ।

“यह कैसा चेहरा बना रखा है ?”

वह वैसा ही एक-सा खड़ा रहा ।

“चलिए, स्नान करिए ।”

श्रीनाथ को मानो कुबेर का भण्डार मिल गया । वृद्ध ने दोनों हाथों में बालक की भाँति मनीश को समेट लिया — “दो दिनों तक कहाँ चला गया था मनी ?”

उत्तर दिया, मनीश ने नहीं—नन्दा ने— “मित्रों के साथ कहीं सफर में निकल गए होंगे । चलिए मनीश बाबू ।” और एक प्रकार उसे घसीट कर बाथरूम में कर दिया ।

समूचा सन्देश मुँह में भरकर मनीश हठात् कह उठा— “यदि कोई तुमसे दूर रहना चाहे भाभी, तो तुम उसे निकटतर घसीट लेती हो ।”

विस्मय से नन्दा उसे देखने लगी, कहा, “आज पहली-सा यह क्या बूझ रहे हो ? मैं बिल्कुल नहीं समझी ।”—और मन में सोच लिया नन्दा ने कि तब भी मनीश का नशा उतर नहीं गया ।

“मैं ? जाने क्या कह गया । यह तो बतलाओ कि आज मि०

चौधरी के घर से छुट्टी कैसे मिली ?”

चौधरी की बात के स्मरण से घृणा, विराग से नन्दा का मुह कुञ्चित हुआ ।

मनीश—जो कि नन्दा को देख रहा था, भाभी के मुख-भाव का वैसा परिवर्तन उसकी आँखों से छिपकर नहीं रह सका । पूछा—“क्यों भाभी, क्या बात है ?”

“कुछ तो नहीं । अरे कब की मैं घर से निकली हूँ । वे बन्द दरवाजे पर बैठे होंगे ।” कहती हुई नन्दा खड़ी हो गई । मनीश ने रसगुल्ले के रस भरे हाथों से उसकी कलाई मजबूती से पकड़ ली—“इन बहानों को मैं पहचानता हूँ । कहो, चौधरी जी के घर क्या हुआ ? सच-सच कहो, वरना मैं जाने नहीं दूँगा ।”

“दादू, देखो न इन्हें” कहती हुई नन्दा उस बज्रमुण्डी से छुटकारा पाने की चेष्टा करने लगी ।

एक हाथ से रस लेकर मनीश ने भाभी के मुख पर लेप दिया—नन्दा चिल्लाती जाती, हँसती और स्नेह के अत्याचार को सहन करती जाती ।

“बस, मैं ऐसी हँसमुख, बच्चों जैसी भाभी को चाहता हूँ । उस भाभी को नहीं, जोकि तर्क-वितर्क से गंभीर और पण्डितानी-सी विदुषी है, उस भाभी को फूटी आँखों भी नहीं देख सकता ।”

“और मैं उस मनीश देवर को चाहती हूँ—जोकि बच्चों-सा सरल, सत्, भद्र है । उस शराबी, रात-रात भर घूमने वाला देवर को आधी आँखों भी नहीं देख सकती हूँ ।”

“हूँ, यह बात ?” फिर जरा सोच कर बोला मनी—“तो भाभी, मैं शराबी हूँ ?”

“हो ही । पर क्यों कहूँ कि होते चले जा रहे हो, अब तो रात में बाहर रहना भी सीख लिया है । बूढ़े दादा तक की फिकर जाती रही, सोचो तो सही—कितना विशाल वह स्नेह है जोकि केवल आपके

पसन्द-न-पसन्द पर अपने मतामत का बलिदान देवे ?”

“याने ?”

“उन्होंने एला तक को बहू बनाना चाहा था, यद्यपि उसका आचरण, रहन-सहन उन्हें पसन्द नहीं था।”

मनीश चुप हो गया और नन्दा कहती ही चली गई—“एक ऐसे स्नेह की उपेक्षा करना, न जाने आप किस ढंग के आदमी है।”

“जबकि कह ही रही हो, तब तुम्हीं कह डालो न भाभी ?”

“मैं तो उसे अकृतज्ञ; स्वार्थी, हृदयहीन कहूँगी।”

“बस, परन्तु मैं उसे महापापी कहूँगा।”

“फिर भी शराब का पीना बन्द नहीं करूँगा, और दो-चार दिन के बदले तीसो दिन बाहर रहा करूँगा।”

सुनन्दा ने कहा इस तरह परिहासपूर्ण स्वर में कि मनीश हँसी नहीं रोक सका, कहा—“मानता हूँ कि शराब पीना अच्छा नहीं है।”

“तो क्यों पीते ?”

“क्यों ? लेकिन भाभी सीने का यह दर्द।” कहते हुए सुनन्दा का हाथ खींचकर उसने अपने हृदय पर रखा।

दो मिनट बाद नन्दा ने हाथ हटा लिया, कहा—“यहाँ दर्द है मनीश बाबू ? किन्तु इसका इलाज आप ही को करना पड़ेगा—वीर की तरह, आदमी की तरह। हाँ, मैं जानती हूँ आपकी इस व्यथा का कारण। नहीं, मैं सुनना नहीं चाहती इस दर्द का गोपन इतिहास, परन्तु दावे के साथ कह सकती हूँ, शराब के नशे में मस्त रह कर दर्द का इलाज नहीं किया जा सकता है। चाहे कैसा भी दर्द हो। वह तो कापुष्पी कल्पना है, साहस के साथ जीवन को भेलो और निकट से उसे देखने की चेष्टा करो, बस।”

दीर्घ श्वास के साथ मनीश ने कहा—“खैर, चेष्टा करूँगा। जबकि मेरी भाभी का हुक्म है, तब उसकी पसन्द के अनुसार चलूँगा।”

“तो आप मुझे वचन दे रहे हैं न ?”

“इसके बदले में क्या दोगी ?”

“जो भी आप चाहें ।”

“चाहता हूँ मैं निकटत्व, अपनापन ।”

“फिर क्या अभी आप दूर हैं ?”

“पूर्ण रूप से । योंकि मेरी ही अपनी भाभी मुझे आप कहें ।”

वह हंसी, फिर इठला कर बोली—“अरे, अब तुम खड़े-खड़े मुझसे लड़ते रहोगे या एक बेचारा भला आदमी जो बन्द मकान के सामने खड़ा होगा, उसकी भी कुछ फिकर करोगे ?”

“चलो, तुम्हें पहुँचा दूँ । सुप्रकाश दरवाजे पर खड़ा होगा ।”

गाड़ी में बैठकर मनीश ने पूछा—“अच्छा भाभी, शहर में तो अच्छे से अच्छे मकान हैं, फिर तुमने गन्दी गली के भीतर वैसे घर में रहना क्यों पसन्द किया ?”

“वह घर ? वह मेरी नानी का है, साथ में बड़ी-सी जमीन है, यह सब मरते समय नानी मुझे दे गई थी; उसी मकान की बदौलत आज मैं गृहस्थी चला रही हूँ । मकान का भाड़ा नहीं देना पड़ता, फल, तरकारी खरीदनी नहीं पड़ती, क्योंकि कुछ बेच भी लेती हूँ, दूध घर का है, गाय आदि उन्हीं के थे । वरना आज के दिन डेढ़ सौ में होता क्या है ? उसमें उनके स्कूल जाने के लिए ट्राम, बस का खर्चा, सिगरेट; चाय का खर्च पचास निकल जाते हैं ।”

“ऐसा ! तुम सही कह रही हो भाभी । तुम पाकिस्तान से आई हो न ? अपनी इज्जत-आबरू लिए तुम दोनों यहाँ तक पहुँच सके हो, इसलिए ईश्वर को अनेक धन्यवाद ।”

इज्जत-आबरू लिए ?—तीक्ष्ण तीर-सा लगा सुनन्दा को मनीश का वह वाक्य । मुँह से सहसा निकल गया नन्दा के—“हाँ जी, इज्जत-आबरू लिए ही तो लौटी हूँ ।” उस स्वर ने मनीश को चौका दिया ।

अन्धकार में वह सुनन्दा की मुखाकृति देख नहीं पा रहा था, वरना देख पाता उस नारी-आकृति में व्यथित आह की दाहकारी ज्वाला किस प्रकार से दहक उठी है।

“भाभी।” —देर के बाद मनीश ने पुकारा।”

“हाँ।”

इस बार उस स्वर को सुनकर मनीश विस्मित हुआ —कैसी जादु-गरनी है यह सुनन्दा लड़की ? दो मिनट पहले जिस स्वर ने उसे विमूढ़ बना दिया था और दो मिनट के बाद वही स्वर सहजता से कैसे भर उठ सका ? यह बात हजार सिर पीटने पर भी मनीश की समझ में नहीं आई। कैसी बहुरूपिया है यह सुनन्दा ?

“चुप क्यों हो रहे ? कुछ कह रहे थे न मनीश बाबू ?”

“यही कि तुम विचित्र हो भाभी।

“विचित्र ? फिर उस विचित्रता में क्या-क्या देखा तुमने ?”

गाड़ी नन्दा के द्वार पर रकी। छायामूर्ति-सा सुप्रकाश अन्धकार में हट गया, किन्तु सुनन्दा की तीक्ष्ण दृष्टि से बात छिपकर नहीं रह सकी। उतरी, द्वार खोला, पूछा—“उतरना नहीं है मनीश बाबू ?”

“नहीं भाभी, दादू मेरी प्रतीक्षा में बैठे होंगे। कल जरूर आऊँगा।” नन्दा की आवाज गाड़ी की भरभराहट में दब गयी। गाड़ी आगे बढ़ी।

नन्दा भीतर पहुँची, सुप्रकाश को बुलाने की कोई चेष्टा न की, बाहर का दरवाजा खुला छोड़कर वह दालान में भोजन बनाने बैठी। देर हो गई थी, स्टोब जला लिया, गरम-गरम पूरियां और आलू-परमल की तरकारी बनाई, खड़ी उसने सबेरे बना रखी थी।

देर के बाद सुप्रकाश पहुँचा—“मैं दिन भर का थका बन्द दरवाजे पर बैठा रहूँ और उधर पार्टी-वार्टी चलती रहे। मेरी फिकर भला किसी को क्यों होने लगी।” कटुतापूर्ण स्वर।

अपमान से नन्दा का मुँह पीला पड़ गया, परन्तु उसकी शिक्षा

ने कुछ अशोभन करने से बचाया। बोली—“दादू ने आज देर लगा दी, भोजन तैयार है।”

वक्र नेत्रों से सुप्रकाश ने एक बार नन्दा को देखा, फिर बाथरूम में पहुँचा, मुँह-हाथ धोए, कपड़े बदले और भोजन करने बैठ गया।

[६]

वर्षा का अन्त था। शीत का प्रारम्भ। मुनन्दा के मन में तब भाव और भावना इन दोनों का युद्ध-सा मचा हुआ था। उसकी आकृति बाहर से जैसी गंभीर, शान्त दीखती, किन्तु हृदय में वैसी ही विशृंखलता उपस्थित थी। वैसी स्थिति में सुप्रकाश ने जब आकर कहा कि, “मेरे प्रभु की शादी सोमवार को है, तुम्हें भी मेरे साथ चलना है।” तब मुनन्दा अकारण ही भुंभला पड़ी,

“तुम तो जानते ही होगे कि हिन्दुस्तान में आने के बाद से मैं शादी-ब्याह से दूर रहती हूँ, फिर कहना क्यों?”

“परन्तु यह मेरे मालिक ठहरे?”

“तुम तो स्कूल के हेडमास्टर हो न?”

“अरे भाई, स्कूल तो उन्हीं का है, प्रायः एक या दो वर्ष से उन्हीं ने यह स्कूल खोला है।”

मुनन्दा का जी उस दिन तर्क-वितर्क से दूर भाग रहा था। वह चुप रही।

“चलोगी न?”

“नहीं, यों कि एला की शादी के दिन भी नहीं जा रही हूँ।”

“इसी एला से तो उनकी शादी हो रही है।”

“सच? परन्तु एला से तो किसी पाकिस्तान से आए हुए धनवान की शादी है।”

“यही वह धनी है। यहां इन्होंने ऐसी जल्दी कार-बार फैलाया कि क्या कहूँ, कही मशीनें चल रही है तो कहीं कुछ, आयल मिलें, स्कूल और जाने क्या-क्या।”

“देखने में सुन्दर है न ?”

“मैंने आज तक देखा ही नहीं, ऐसे छोटे-मोटे स्कूलों में आने की उन्हे कहाँ फुरसत, उनके सेक्रेटरी आते हैं।”

दरवाजे पर कार भरभरा उठी। नन्दा ने खिडकी से भाँक कर देखा, स्वयं श्रीनाथ गाडी से उतरे।

“तुम दादू को बँटाना, मैं अभी आई।” जल्दी वह चौके में पहुँची, मच्छली की कुरी चढाकर गई थी, ढक्कन खोला, देखा, फिर उसे उतार कर भात चढा दिया।

श्रीनाथ के निकट पहुँची, कहा—“बापरे, दादू, मेरे घर कितने दिन के बाद आए, वही एक बार आए थे और आज आए, ठीक कह रही हूँ न ?”

“जरूरी काम से आया हूँ लक्ष्मी।”

“यों भला गरीबों के घर क्यों आने लगे दादा जी ?”

“नहीं भाई प्रकाश, अच्छा लो आज दिन भर मैं तुम दोनों के पास रहूँगा। और लक्ष्मी बेटी के हाथ का बनाया खाना खाऊँगा। लो अब तो भगडा नहीं है ?”

‘सच दादू ?’ अत्यन्त आनन्द से नन्दा बोली।

“हाँ लक्ष्मी, और सुनो, कल्पना अपने घर आ गई है। उसे मैंने अपने कमरे के बगल वाला कमरा दे दिया है। तुम्हें लेने को आया हूँ, बाकी व्यवस्था तुम चलकर करोगी।”

प्रकाश ने कहा—“आप अभी कह रहे थे, यहीं भोजन करना है।”

अपनी बात स्मरण कर वृद्ध मुसकराए।—लज्जित वह मुस्कान। कहा—“नन्दा को दोपहर ले जाऊँगा। आज रात मे तुम दोनों वही

खाना खाओगे। कहाँ चली गई लक्ष्मी, मेरे लिए विशेष कुछ मत बनाना। लो, मैं यह चला। जो भी बना हो, वही रहने दो, बस।”

श्रीनाथ, सुप्रकाश को लेकर चौके में पहुँचे—“सुनो तो सही नन्दा, चौधरानी जी कह रही थीं कि तुम एला की शादी के दिन नहीं जाओगी?”

श्रीनाथ उस जिद्दी नन्दा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। नन्दा के परिचित जन उस नन्दा की जिद्द से भली भाँति परिचित थे। ईश्वर का अथवा प्रकृति का नियम शायद एक बार टल भी जाएँ किन्तु नन्दा की जिद्द अटल शैल-सी अड़कर रहती। न हिलती न डोलती, फिर टलना तो दूर की बात होती है।

सुनन्दा भात का माँड़ पसाती हुई बोली—“शादी-ब्याह, भीड़-भाड़ से मैं दूर रहती हूँ दादू।”

“क्यों?”

“अपना-अपना सिद्धान्त ही तो है।”

“लेकिन आज तुम्हारा दादू चौधरानी जी को बचन देकर आया है। मैं क्या जानूँ? अब? क्या अब इस बुढ़ापे में मेरी ही लड़की संसार के सामने दादा का अपमान करेगी?”

सुप्रकाश धीमा-धीमा हँसने लगा।

नन्दा हँस पड़ी—“यानी दादू अपनी नन्दा को बहाँ लेकर ही जाएँगे। तो चलूँगी।”

सुप्रकाश ऐसा विस्मित हुआ कि देर तक बात नहीं कर सका। इस नन्दा लड़की से उसका परिचय आज का नहीं किन्तु बचपन का था। इसकी जिद्द को जितना वह जानता था, दूसरे शायद ही उतना जानते हों। उस नन्दा को ऐसे सहज में श्रीनाथ की बात पर और अपने सिद्धान्त के विरोध में राजी होते देखकर विस्मय के साथ ही साथ उसे लगा कि यह वृद्ध वास्तव में ही कोई मन्त्र-सिद्ध है।

“जल्दी करो नन्दा, मुझे भूख लगी है।”

नन्दा हँस पड़ी—भरती हुई वर्षा-सी वह हँसी अश्विराम, छन्द, तालहीन। हँसी रुकी तब बोली—“भूख लगी है या मुझे जल्दी लेजाकर कल्पना से मिलाना है दादू ?”

अप्रस्तुत हो कर श्रीनाथ चिढ़ गये—“तू तो हर बात में अपनी अकन लगाती है। छप्पन भोजन बनाने को बैठ गई। अब दो बजे तक मुझे भूखो मारेगी।”

“नही, अभी देती हूँ। तुम दोनों पीड़े पर बैठो तो सही। कुर्सी, मेज पर तो रोज खाया करते हो, आज पीड़े पर ही सही। जीवन विचित्रतामय होता है, आज एक विचित्रता हो जाए, है न दादू ?”

नन्दा ने उठकर दो गिलाम पानी पीड़े के सामने रखा। भोजन परोस कर सामने बैठी उन्हें खिलाने लगी।

भोजन करते-करते श्रीनाथ तृप्त कंठ से बोले—“यह छना की तरकारी, जानती हो लक्ष्मी, तुम्हारी नानी की मृत्यु के बाद आज खाने को मिली है। और किसमिस डाले हुए मूँग की दाल, मानो अमृत-सा लग रहा है। मांस-मछली खाते-खाते उकता उठा हूँ। सो भी बावर्ची साहब एक रीति से बनाता है। कितना अच्छा बनाती है मेरी लक्ष्मी। हर चीज स्वादिष्ट बनी है। क्यों प्रकाश ?”

“जी, यह बहुत अच्छा बनाती है, और यदि आप कभी मेरी माताजी के हाथ का बनाया भोजन खाएँ तो—”

“क्या वे नन्दा से अच्छा बनाती है ?”

“दसगुना अच्छा।”

“होगा भी। मुझे तो मेरी लक्ष्मी की सब बातें भली लगती हैं। वे कहाँ पर हैं ?”

“गाँव में।”

नन्दा टमाटर की मीठी चटनी परोसती हुई बोली, “दादू, इमली

का और बेर का अचार खाना है ? लाऊँ ?”

उन दोनों के भोजन के बाद स्वयं भोजन कर नन्दा ने चीका साफ किया । बर्तन माँजे । फिर कपड़े बदले । बाज़ संवार कर श्रीनाथ के निकट पहुँची—“चलो दादू”

चाबी सुप्रकाश को देकर वह श्रीनाथ के साथ कार पर बँठी ॥

कौतुक से नन्दा श्रीनाथ के घर पर उतरी, उसे कल्पना को देखना था, उससे मिलना था, न जाने वह कैसी होगी ! घर पहुँचकर श्रीनाथ ड्राइंग रूम में सोफे पर लेट गए—“आज इतना खाया है कि कमरे तक पहुँचने की हिम्मत नहीं है, कल्पना को यही बुलवा लो ।”

“नहीं, तुम सोओ, मैं मिललूँगी ।”

“और सुनो, रामाधार से कहना—आज चार-पाँच आदमी खाएँगे, नलिनी देवी आदि को डिनर पर बुलाया है । तुम जरा व्यवस्था कर लेना लक्ष्मी ।”

“अच्छा ! आज क्या है दादू ?” चाँदी के डब्बे में बाजार के लगे हुए पान टेबिल पर रखे थे, डब्बा खोलकर एक पान नन्दा ने मुँह में डाला ।

“यों ही, कल्पना से इन लोगों का परिचय करवाना है ।”

“अच्छा, इसलिये । म जा रही हूँ ।”

“चाबी लेती जाओ ।”

चाबी लेकर नन्दा अन्तःपुर में पहुँची । श्रीनाथ के कमरे में पहुँच कर ड्रियर खोला । कुछ रुपये निकाले, फिर कागज-पैन्सिल लेकर भोजन की लिस्ट बनाई, जो चीजें बाजार से मँगवानी थीं, उनके नाम लिखे और रामाधार को बुलाकर सब कुछ समझाया । लिस्ट और रुपये दिए । कहा—“सामान लाकर सब तैयारी कर लेना, तब मुझे खबर करना, जाकर कुछ-कुछ करवा लूँगी । हाँ, मछली की ‘मोली’, सैलाट, रसगुल्ले की खीर और ‘पाई’ तो मैं ही बनाऊँगी । तुम से ठीक नहीं

बनता । बाकी चीजे, यानी पलाओ नही, बिरियानी, मुरगी, आलू के पराठे आदि तुम बनाना । देखो, मुरगी की करी में ज्यादा मिर्च नहीं डालना । और न गरम मसाला ।

“जाओ, जल्दी करो ।”

रामाधार चलने लगा तो नन्दा ने पूछा—“कल्पनाबाई किम् कमरे मे है ?”

“जी, मै समझा नही ।”

गृहस्वामियों से अधिक सम्मान उस घर के दास-दामी नन्दा का करते । वे जानते कि इस घर की स्वामिनी यही सुनन्दा है ।

“नई मिस साहब जो आई है, उन्हें पूछ रही हूँ ।”

“जी हुजूर वे तो—”

“फिर तुमने हुजूर और मेम साहब की धुन लगाई ? भाई, चाहे और सब से साहब, मेम साहब कहा करो । मुझसे दीदी कहो, बस दीदी ही ।

“जी, दीदी जी, वे तो एक बार अपने कमरे से खाने के टेबुल पर आई थी, बस, वह भी बडे साहब के बहुत कहने-सुनने से ।”

“अच्छा, तो तुम जाओ, जल्दी करो, एक बज रहा है ।”

सुनन्दा खोजती-ढूँढ़ती पहुँच गई उस कमरे मे, जहाँ चटाई बिछाकर कल्पना सिमटी बैठी हुई थी । कोई पुस्तक हाथ मे लिए पढ़ रही थी ।

सुनन्दा पहुँची और उसी चटाई पर बैठ गई, आँखें पसार कर उस मोटी-ताजी, श्यामवर्ण युवती को देखा । परिपुष्ट शरीर, श्यामल रंग सुन्दरी किसी तरह भी उसे कहा नहीं जा सकता, परन्तु कुरूप भी नहीं अति साधारण कल्पना, सुन्दर थे केवल उसके केश । खुली हुई केशराशि धरती पर लहरा रही थी ।

नन्दा ने निस्संकोच उसके गले में हाथ डाला ।

“कहो, भला मै कौन हूँ ?”

कल्पना लजाई, संकुचित हुई, एक बार उसने नन्दा की तनी हुई आँखों के प्रति देखा, खिले गुलाब-सा चेहरा देखा, बोली-धीरे—

“आप सुनन्दा देवी हैं ।”

“अरी चुप, नाम नहीं लेते । बड़ी बहन को क्या कहते हैं ? तुमने दादू से मेरा नाम तो सीख लिया, परन्तु जीजी कहना क्यों नहीं सीखा ?”

“अब तो सीख रही हूँ ।”

तिनककर नन्दा बोली—“तो तुम सीख सीखाकर जीजी कहोगी । मन से नहीं ? तो ऐसी बहन मुझे नहीं चाहिए ।”

नन्दा को जाते देखकर कल्पना उसके निकट पहुँची, पुकारा—
“जीजी ।”

“दुर पगली, रो दिया ?” अपनी साड़ी के पल्ले से उसके आँसू पोंछकर सुनन्दा ने उसे गले लगाया, कहा—

“अच्छा, फिर पुकार तो सही ।”

“जीजी !”

“और पुकार ।”

“जीजी ! जीजी !! जीजी !!!”

सुनन्दा आँखें बन्दकर खड़ी रह गई—जैसे उस ‘जीजी’, सम्बोधन को उसका रिक्त, सर्वशान्त हृदय समेटकर अमूल्य निधि की भाँति मन के किसी एकान्त में सहेजकर रख रहा हो ।

जाने कब तक नन्दा वैसी ही खड़ी रही, बाहर से भृत्य ने पुकारा—
“दीदी जी, बड़े साहब बुला रहे हैं ।” नन्दा कल्पना के आँलिंगन से मुक्त हुई । विस्मय से कल्पना ने देखा, उसकी जीजी की आँखें अभ्र-पूर्ण हैं ।

“अभी आ रही हूँ कल्पना । तुम चलोगी ? चलो ।”

“नहीं ।” कल्पना बैठ गई ।

“क्यों ?”

“मुझे डर लगता है ।”

“किससे ? दादू से ?”

“हाँ जीजी, सबसे । यों कि इस घर-मकान तक मे ।”

“कैसी पगनी है ? ऐसा डर क्यों ? नहीं डरते बहन ।”

“जीजी ।” उठकर उसने नन्दा का हाथ पकड़ लिया ।

“क्या ?”

“तुम यहाँ से कभी मत जाना जीजी ।”

हँसने जाकर भी नन्दा गंभीर हो उठी—“यदि सम्भव होता तो मैं तुम्हारे पान रह जानी कल्पि, अच्छा, अब रोज आऊँगी ।”

“तुम जहाँ रहती हो, वहाँ मुझे ले चलो ।”

गम्भीर विस्मय से मुनन्दा ने उम तहगी को देखा, फिर चन दी

[१०]

श्रीनाथ के भोजन टेबिल पर हँसी का ऋरना उभरा हुआ था । नानाविधि भोज्य की सुगन्ध पथ तक फैलती, भोजन टेबिल के चारों तरफ की कुर्सियों पर झटनागर दम्पति, नलिनी आदि उपविष्ट थे । और कल्पना नवोठा बध्-सी सिमटी हुई किसी प्रकार एक कुर्मी पर बैठी हुई थी । न उमका हाथ प्लेट तक पहुँच रहा था, और न कुछ खा रही थी ।

बाय के हाथ से हँस-हँस कर भोज्य-वस्तु पूर्ण प्लेटों का लेकर मुनन्दा टेबिल पर रख रही थी, और नौकरों को आदेश करती—“फल उस टेबिल पर रखो, मीठी चीजें यहाँ रखो, गुलाब जल डला पानी देने को न भूलना ।” यों जैसे इस घर की स्वामिनी वही हो ।

“श्रीमता भटनागर शुरू करिए न ।” नन्दा ने कहा ।

“पहले आप आइए मिसेस राय ।”

“मुझे जरा देर लगेगी, तब तक सब चीजें ठंडी हो जाएँगी । आप लोग बैठिए ।”

मनीश भुँझलाया—“काम और काम, प्रकाश, तुम इन्हें जरा डाँट तो दो, हम लोग भाभी के लिए बैठे हुए हैं, उन्हें परवाह ही नहीं ।”

“तुम्हारी भाभी को डाँटने की हिम्मत मुझमें नहीं है, यह काम तुम्हीं करो ।”—प्रकाश हँसकर बोला ।

एक नारी का ऐसा प्राधान्य नलिनी को अच्छा नहीं लग रहा था, बोली, “यह भी कोई बात है ? स्त्रियों की ऐसी स्वाधीनता किस काम की—जो पुरुषों की उपेक्षा करे ? बैठिए न मिसेस राय । देखती नहीं हैं ? आपके लिए सब बैठे हुए हैं ।

“बैठ तो जाऊँ नलिनी देवी, किन्तु उसके बाद आपको खाना ठंडा मिलेगा । नौकर भी कभी यत्नपूर्वक काम करते हैं ?”

“तो आपकी बला से, घर वाले समझेंगे ।”

‘मेरे यहाँ उपस्थित रहते हुए ऐसा कैसे हो सकता है ?’

“पहले कैसे चलता था ? आप तो अभी आई हैं ।”

उत्तर दिया सुनन्दा ने नहीं, मनीश ने—“पहले की बातें पहले खत्म हो चुकी हैं नलिनी जी, अब इस घर की स्वामिनी मेरी भाभी हैं ।”

“ऐसा” अपमान और शायद ईर्ष्या से नलिनी का मुख नीला पड़ गया । किन्तु विस्मय ! एक ऐसे अधिकार की स्वामिनी हो कर भी उस सुनन्दा लड़की के मुख-भाव का जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ । अप्रियता होते देखकर नन्दा टेबिल पर बैठ गई । प्लेट को अपनी ओर खींच लिया । भोजन करते हुए पूछा—“कलना से तुम्हारा परिचय हुआ है मनीश बाबू ?”

अवहेलना से मनीश ने कहा—“हाँ। आज सबरे दादा ने कराया था।”

कल्पना का इस घर में आना न जाने क्यों नलिनी को बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। कहा, “जड़भरत क्यों बैठो हुई हैं ? हाथ निकाल कर खाइए ना”

मनीश ने आवाज लगाई—“टेबिल पर बैठकर खाने की आदत शायद उनकी न होगी। उन्हें जमीन या चौके में बैठकर तुम्हें खिलाना था भाभी।”

सुनन्दा को उन लोगों की बातें खराब लगीं—माना कि सभ्य समाज में कल्पना का आचरण शोभन नहीं हो रहा था, सो यह भी माना कि उस वातावरण में, वहाँ की सभ्य दृष्टियों में यह लड़की जंगली की तरह लग रही है, किन्तु साथ में यह भी मानना पड़ जाता है कि सभ्य समाज का जो बर्ताव कल्पना के साथ हो रहा है, वह जैसा तो निन्दनीय है, वैसा ही असभ्य। सभ्यता के नाते इस समाज में असभ्यता का स्थान नहीं होना चाहिए न। तो अब प्रश्न एक नन्दा के मन में यह रह जाता है कि सभ्यता की दुहाई देने वाले व्यक्तियों को सभ्य कहा जाए या असभ्य ? और यदि सभ्य कहा जाए तो ऐसी सभ्यता का संसार से विनाश होना ही काम्य हो जाता है।

अपनी विरक्ति और क्रोध को नन्दा ने घोठों तले दबाया और बोली, “मैं नहीं जानती थी मनीश बाबू, कि स्त्रियों के अभ्यास और अनाभ्यास के तुम इतने बड़े समालोचक हो। और कोर्ट में अब धरा क्या है ? ढेर से बैरिस्टर और वकील। पेपरों में आलोचनात्मक लेख दे दो। विशेषतः स्त्रियों की समालोचना। देखना, कितना आदर होगा तुम्हारा।”

सुनन्दा के उस व्यंग्य से मनीश तो नहीं, किन्तु नलिनी का मुख अपमान से रक्तमय हो उठा। मनीश की लज्जा उसी तक सीमित रही।

किसी और ध्यान दिए बिना ही नन्दा ने धीरे से कहा—“कल्पना !

खाओ, सब ठडा हो रहा है।”

नन्दा ने भोज्य वस्तुओं को उठाकर कल्पना की प्लेट में डाला और स्वयं खाने लगी।

“दादू, तुम खा क्यों नहीं रहे हो ? सब ज्यों का त्यो पड़ा है।”

चोक कर श्रीनाथ बोले—“मैं ? भूख नहीं है।”

उस स्वर को सुनकर नन्दा चकित हुई। श्रीनाथ की उदासी का कारण ऐसा स्पष्ट था कि नन्दा जैसी बुद्धिमती नारी को समझने में देर नहीं लगी। कल्पना के प्रति प्रथम दर्शन से ही मनीश ने अवहेलना प्रकट की। उससे दादू का निराश होना स्वाभाविक था। वह क्षुब्ध हुई, व्यथित हुई, दृष्टि अपने आप मनीश के प्रति उठ गई, उसके नेत्र नन्दा ने अपने मुख पर आबद्ध पाए। अपनी दृष्टि नन्दा ने फेर ली। और तब लज्जा की गम्भीर आह ने उसके सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया। इसकी खबर उस तक शायद ही पहुँची हो। वह लजाई, शर्माई, सहस्र बार देखी हुई और अपने मुख पर उसकी आबद्ध दृष्टि को पूर्व में जाने कितने ही बार देखी होगी, परन्तु उस दृष्टि के नीचे न जाने आज वह क्यों लजा गई।

तब नलिनी पूछ रही थी कल्पना से, “आप कहाँ तक पढी है कल्पनादेवी ?”

नन्दा ने अपने को संभाल लिया सो भी मिनट भर में। सुनन्दा ने उत्तर दिया, “कल्पना का परिवार स्त्री-शिक्षा का सहयोगी नहीं था न, अब यहाँ पढ़ेगी।”

विस्मित चौधरानी कह उठी—“क्या आज के दिन में सचमुच ऐसे परिवार है ?”

सहज स्वर से नन्दा ने उत्तर दिया—“विस्मय का इस में क्या है ? अपना-अपना मत और सिद्धान्त तो है न ? इस विचित्र दुनियाँ में विचित्र मनुष्य रहते हैं। कालेज की डिग्री को कोई महत्व देते हैं,

कोई नहीं ।”

“तो बामन मांजना, धान कूटने ही को क्या वे शिक्षा कहकर मानते हैं मिसेस राय ? उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सीडियाँ ही हैं डिग्रियाँ लेना ।” कह उठी नलिनी ।

“शायद वे उसे उच्च शिक्षा और वास्तविक शिक्षा कहकर मानते हो — जो कि डिग्री लिए, बिना ही शिक्षा के स्वास्थ्य से स्वयं स्वस्थ हो । आप किसे शिक्षा कह कर मानती हैं नलिनी जी ? और मुनिए, जिसे आप शिक्षा कहकर मानती हैं; दूसरे उमी को अशिक्षा कहकर मानने हो, दुनियाँ मैं ऐसे कितने ही हैं । आपकी दृष्टि में जो सभ्यता कहलानी हो, दूसरे की दृष्टि में वही असभ्यता कहना सकती है । ऐसा होना स्वाभाविक है । एक शिक्षा, सभ्यता वह कहलाती है—जो कि बनाव, श्रृङ्गार, याने विलासिता, नकली पर निर्भर हो । एक वह कहलाती है—जो कि उन वस्तुओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखे, जो कि शायद उन सब से दूर रहनी हो, स्वाभाविकता, अमली को ही महत्व देती हो ।”

श्रीमती भटनागर आग्नेय गिरी-सी फट पडी—“याने आप मुझे क्रिटीमाइज कर रही हैं मिसेस राय ।

“जी नहीं, सच पूछिए तो मैं आपको याने आपके रहन-सहन को भली भाँति जानती तक नहीं हूँ । मेरे विचार से सब बातों में अच्छाई और बुराई रहा करती है, अपना-अपना दृष्टि कोण, सिद्धान्त है । और हम मनुष्यों का स्वभाव ही है एक-दूसरे पर हँसने का, जबकि कोई वस्तु स्वभाव के अन्तर्गत हो जाती है, तब आलोचना, प्रत्यालोचना की परवाह कम रखना भी स्वभावभूत होता है । परन्तु मेरी समझ में अब तक नहीं आया कि व्यक्तिगत रूप से आप इस में कैसे घिसट आई ?”

“लेकिन आप मुझे स्पष्ट कह रही हैं ।”

“आखिर बात क्या है ?”—विस्मय से नन्दा ने पूछा ।

और देखकर नन्दा विस्मित हुई, कि विकृत मुख से एवं नन्दा को मुंह चिढ़ाकर वह बोली—“जी, मैं सब जानती हूँ, मेरा सिनेमा में जाना, मेरी सुन्दरी बहनों को कहाँ तक अच्छा लगा है। वे पीछे रह गई और मिसेस भटनागर की तारीफ संसार के कोने-कोने में गूँजने लगी।”

नन्दा ऐसी विस्मित हुई कि देर तक बात न कर सकी। नन्दा सोच उठी, यही है सभ्य समाज ? यही-यही ? जोकि सभ्यता का दम्भ भरने वाले नर-नारी सभ्य रीति से बात करना भी नहीं जानते ?—ईर्ष्या, विलासिता, क्रोध करना ही प्रधान अंग होता है, इसे ही सभ्य समाज कहते हैं ? आए दिन का सभ्य समाज क्या यही है ?

तब गर्व से नलिनी को साक्षी स्वरूप मध्यस्थ रखकर कह रही थी श्रीमती भटनागर—“सचमुच नलिनी देवी,—जब मेरी तसवीर प्रेम का सौदा’ पर सिनेमा हाउस में भीड़ लगी रहती है—” हठात् श्रीमती भटनागर चुप हो गई, नन्दा से पूछने लगी—“आप सिनेमा एक्ट्रेस को खराब मानती ह मिसेसराय ?”

“मैं ?”—जरा-सा मुसकराकर नन्दा बोली—“नही तो, अपना अपना मत जो है बहन।”

“अच्छा सोचिए, यदि कभी आपका सौभाग्य हो सिनेमा स्टार बनने का तब ?”

“सौभाग्य ! नहीं-नहीं, वह तो मेरा सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा बहन।”

“ऐसा !” भौंहे ऊपर चढ़ाकर श्रीमती भटनागर बोली—“तो आप सिनेमा स्टारों से घृणा करती है ?”

“नहीं। मुझे किसी को अच्छा या बुरा कहने का कौन-सा अधिकार है ?”

“तो ?”

“बहन, मैंने ऐसी बातें क्या कही, जिनसे आप इस सिद्धान्त तक

पहुँच सकी है ?”

“फिर आप सिनेमा स्टार बनना दुर्भाग्य क्यों समझती है ?”

“क्यों ? यह मेरा मतवाद है । मेरे विचार से माता की जाति नारी के लिये यह समय नहीं है सिनेमा में एक्टिंग करने का ।”

“तो घर में बैठे-बैठे सोने का है ?” नलिनी के परिहास ने मानो मुनन्दा के मन को जाग्रत-सा कर दिया । वह कहने लगी शान्त धीरता से—“सोने का ? नहीं । जागने का है । नलिनी जी, घर बैठकर भी हम स्वाधीन हिन्दुस्तान की स्वाधीनता चिरजीवी रखने के लिए सच्चे और ईमानदार नागरिक बनाकर उसे दे सकते हैं , और उसे देना भी है, हमारा कर्तव्य है कि अपनी सन्तानों को इस योग्य बनाएँ— जो आगे चलकर हिन्दुस्तान की स्वाधीनता, उसकी बागडोर संभाल सकें । आज युगो के बाद हिन्दुस्तान स्वाधीन हुआ है । कब ? जबकि उसकी सारी विभूतियाँ लुट चुकीं । पूरा सौन्दर्य, धन, व्यवसाय ही केवल नहीं वरन शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान आदि-जलकर भस्मीभूत हो गए, तब आई यह स्वाधीनता । इस स्वाधीनता का अर्थ तब तक कुछ नहीं निकल सकता, जब तक कि हम अपने सूने भंडार ऐश्वर्य से भर न लें । मे तो धन को नहीं किन्तु गुराओं को, याने शिल्प-संगीत आदि को ऐश्वर्य मानती हूँ । लुटा हुआ हिन्दुस्तान, सूना, उजड़ा हुआ यह देश, शस्य विहीन वे उजड़े हुए प्रान्तर, जहाँ केवल राख पड़ी हुई है, उस राख को साफ़ करने की शक्ति किसी एक में नहीं है, वरन समवेत, मिलित शक्ति की जरूरत है । जरूरत है अब यहाँ की जनता को शिक्षित करने की । हम नारी की जाति आदि से देश और उसकी स्वाधीनता का एक अंग विशेष होकर है, अब आज, एक ऐसे दुर्दिन में नाटक, ड्रामा और, विलासिता में डूबकर हम कैसे रह सकती हैं ? मेरे विचार से वैसा जीवन हमारे लिए कलंक के स्वरूप है और दुर्भाग्य है ।”

जरा रुककर सुनन्दा पुनः कहने लगी— “सोचो तो बहन, आज यदि हमारे पास साधन होते, यदि हम प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी जिम्मेदारी को समझते, तो क्या पाकिस्तान का यह अत्याचार ? नहीं, नहीं ! पाशविक प्रवृत्ति के हाथ से अपने धर्म को, सम्पत्ति को, पति, पत्नि और सन्तान को नहीं बचा सकते थे ? पति के सामने पत्नी, माता, पिता और सन्तान पर अत्याचार, जिस अत्याचार की कल्पना शायद मानव इससे पहले नहीं कर पाया हो, वैसा राक्षसी अत्याचार और—” कहते-कहते उस एक दिन की भाँति सहसा सुनन्दा उठकर खड़ी हो गई, एवं उन विस्मित दृष्टियों के सामने से चलकर बाहर गाड़ी पर जा बैठी ।

मौन सृप्रकाश नमस्कार कर बाहर निकल गया । तब प्रत्येक के नेत्रों में विस्मय अवश्य था । किन्तु मनीश के नेत्रों का विस्मय जैसे उसकी बड़ी आँखों को चीर-फाड़कर बाहर आने के लिए बद्ध परिकर हो रहा था । प्रश्न बस एक ही था मनीश के मन में—भाभी होते हुए भी नन्दा उसके निकट आज भी एक समूची पहेली बनकर है ।

[११]

“भाभो, ओ भाभी !”

पपीता का जड़ सावल से खोद रही थी सुनन्दा । परिश्रम के कारण ललाट पर बूद-बूद कर स्वेद भलक रहा था, साड़ी का आँचल कमर में लपेट रखा था । सुनन्दा ने लौटकर मनीश को देखा और मिट्टी भरे हाथों से साड़ी का छोर खोलने लगी । जिस शीघ्रता से वह शरीर के उन्मुक्त अंगों को ढकना चाह रही थी, उलभे हुए वस्त्र से उसी प्रकार ढेर होने लगी ।

उच्च शब्द से मनीश हँसा— “क्या मैं शेर-चीता हूँ जो तुम्हें निगल जाऊँगा ? वाह भाभी, सफेद साड़ी तक मिट्टी लगे हाथों से गन्दी कर डाली !

अकृतकार्यता से नन्दा चिढ़ी, दोनों हाथों से कमर में लिपटी हुई साड़ी के छोर को खींचने लगी ।

मनीश जोर से हँसा ।

“क्यों हँसते हो मनीश बाबू ?

“उन नरम हाथों से कमर का फन्दा नहीं खुलने का, लो, मैं खोले देता हूँ ।” वचन-समाप्ति के साथ ही मनीश उसके कमर से साड़ी का आँचल खोलने लगा । किस शीघ्रता से यह सब हुआ कि नन्दा समझ सकने के लिए तैयार भी न हो सकी थी ।

मनीश कह रहा था— “भाभी, तुम जैसी भी उलझी हुई पहेली क्यों न हो परन्तु हो मुन्दरता का प्रतीक । यह तो मानना ही पड़ेगा ।”

रूप की प्रगंसा, सो भी युवक पुरुष के मुख से ! हाँ, पुरुष के मुख से नारी के रूप की प्रशंसा, वह भी स्वयं उसी की, उष्ण होते-होते नन्दा हँस दी— “तो अब खोलोगे भी या मेरी कमर पकड़कर यो ही खड़े रहोगे ?”

“लेकिन इससे तो तुम्हारा कुछ भी बिगड़ता नहीं है न भाभी ?”

बिना कुछ सोचे-समझे ही शायद नन्दा कह उठी— “बिगड़ता कैसे नहीं ? इस दशा में यदि कोई देखले ?”

तरल परिहास से मनीश ने कहा— “ज्यादा और क्या समझेगा ? यही कि मनीश भाभी से प्रेम करता है, बस ।”

बात यों ही कौतुक वश कदाचित् कही गई हो । हो भी सकता है, पिरहास की एक सरल हँसी । परन्तु न जाने क्यों नन्दा की घन पलकों से घिरी हुई आँखें नत हो गईं ।

“अरे भाभी, तुम काँप क्यों रही हो ? बुखार तो नहीं चढ़ा है ? चलो ! इस मिट्टी सनी साड़ी को बदलकर लेट जाओ ।” तब तक सुनन्दा अपने को नियन्त्रित कर चुकी थी । कहा—“चलो मनीश बाबू, अपने हाथ के लगाए हुए पेड़ों के फल खिलाऊँ ।”

उसने पके हुए पपीते और बिही तोड़े, कहा, “कई दिन पहले केले का छीर तोड़कर रखा है । वे पक गए होंगे, दो रकम के केले हैं ।”

मनीश ने मनोयोग से बगीचे को देखा और देखता हुआ आगे बढ़ा । पीछे-पीछे सुनन्दा फल की टोकरी लिए वृक्षों का परिचय देती हुई चली—“यह चार कलमी आम के पेड़, इन्हें मैं मिस्रज घोष के बागीचे से लाई थी । यह दो लंगड़ा आम के पेड़, इनके पौधे मैंने रामबाग के माली से खरीदे थे । और अँगूर तो अभी गए साल लगाया है । लीची नहीं है, कठहर तो देखो, नीचे से ऊपर तक फले हैं, इनमें एक भूइयाँ कठहर है ।”

“भूइयाँ ! याने ?”

“यह जमीन के अन्दर होते हैं ।”

“ऐसा ! इससे पहले तुम कहाँ थी भाभी ?”

मनीश के प्रश्न को जैसे नन्दा टाल-सी गई—“इधर चलिए मनोश बाबू, यह लौकी जितने तो लम्बे होते हैं, उतने ही नरम । भांटे दो रकम के हैं, सेम तो प्रायः बारह महीने होती है ।”

“वाह, यहाँ फूल के पेड़ भी हैं, इतने ढेर से गेंदा क्यों लगाए ? यह कोई अच्छे फूल थोड़े ही हैं ।”

“गेंदा ? यह सब बिक जाते हैं । गेंदा, सदा मुहागिन आदि के हार बनाकर रखती हूँ, मन्दिर और बाहर के माली शाम को आकर ले जाते हैं ।”

“रोज ?”

“हाँ ।”

“और इतनी ढेर-सी तरकारी क्या करती हो ?”

“सब बिक जाती है। मेरे घर जो खर्च होता है उतनी रखकर सब्जी वालियों को बेच देती हूँ, वे रोज आती है, यदि खुद बेचती तो इससे दुगना पैसा मिलता।”

“फिर स्वयं क्यों नहीं चली जाती हो ?”

हँस कर नन्दा ने कहा—“हानि क्या है ? उन्हें स्कूल मास्टरी कर थोड़े-से पैसे मिलते हैं। और इधर गृहस्थी के लिए ज्यादा पैसे की जरूरत है न। और हां, दिन पर दिन मँहगाई बढ़ती चली जा रही है। मनीश बाबू, मेरे विचार से परिश्रम कर, इज्जत के साथ जीने में कोई लज्जा नहीं होनी चाहिए।”

“अरे भाभी, अगर तुम कही बाजार में बैठ जाओ तो बस भीड़ लग जाएगी।”

“रहने भी दो। चलो, फल खिलाऊँ।”

दोनों भीतर पहुँचे। और तब “लक्ष्मी-लक्ष्मी” पुकारते हुए श्रीनाथ पहुँचे—“जल्दी करो लक्ष्मी, कल एला की शादी है। तुम्हारे बिना चौधरानी घबरा रही है।”

“किन्तु मैं तो शादी-ब्याह में नहीं जाती हूँ न दादू ?”

“सुन लिया था प्रकाश से, तुम सबको हटा सकती हो। लेकिन अपने दादू को नहीं। तुम्हें मानना ही पड़ेगा।”

और विस्मय से मनीश ने सुना—उसकी वह जिद्दी भाभी एक वाध्य शिशु की भांति कह रही है—“चलूँगी दादू।”

“अच्छी लड़की, मैंने क्या यों ही लक्ष्मी नाम रखा है ?” कहकर हँसने लगा—“अरे मनीश, तुम यहाँ हो ? अच्छा-अच्छा। इस लक्ष्मी के संगत में—”

“क्या बक रहे हो दादू !” कहकर नन्दा वही पर हँसिया लेकर बैठ गई और पानी में फलों को धोकर काटकर दो प्लेटों में रखने लगी !

“कल दस बजे तुम और प्रकाश तैयार रहना । हम सब लोग साथ-साथ चलेंगे ।”

“दस बजे से क्या करूँगी जाकर, शादी का लग्न रात आठ बजे है न ?”

“हां, लेकिन बाकी का सब वन्दोबस्त हम तीनों को करना है । और काम रविवार का है, प्रकाश की छुट्टी भी रहेगी । चलो लक्ष्मी ।”

“और यह फल जो काट रही हूँ ? खाकर जाओ ।” दोनों के सामने फल की प्लेट रखकर नन्दा बोली—“चाय ला रही हूँ ।”

“यह भी कोई चाय का वक्त है ? तुम मुझे खिला-खिला कर बुढापे में जवान कर रही हो लक्ष्मी !”

मुनन्दा मुसकराने लगी ।

चलते-चलते श्रीनाथ लौटा—“और हाँ, कल्पना को भी लेता चलूँगा, ऐसी अच्छी सीधी लड़की है कि क्या कहूँ ।”

मनीश ने उत्तर दिया—“आप भी जाने कहाँ की जंगली लड़की को उठा लाए और उसे घर में रखे हुए है । आज मैं साफ कह रहा हूँ दादाजी, अगर वह घर में रह जावेगी तो मैं घर छोड़ दूँगा । अन्ततः उस जानवर को एला के घर न ले जाना ।”

एला के घर जाना श्रीनाथ भूल गया । घुटने टेककर वहीं जमीन पर बैठा । हृदय पर पहाड़-सा टूट पड़ा । हताश, निराशा से जैसे श्वास हृदय ही में घुटने लगा ।

देखा एक बार नन्दा ने मनीश के विरक्ति—विराग से भरे हुए मुख को, देखा दूसरी बार दादू के उस उजड़े-से चेहरे को और बोली—“बात क्या है दादू ? अभी हम कल्पना को किसी के घर लेकर भी क्यों जाएं ? बस, उसे मेरे पास भेज देना दादू ।”

प्रबल वेग से मस्तक हिलाता आ मनीश बोला, “नहीं, नहीं, किसी तरह भी नहीं । उस असभ्य लड़की की यहाँ क्या जरूरत ? भाभी,

क्या तुम यही चाहती हो कि मैं न आऊँ ? दिन में दो घड़ी जो हूँ-बोस लेता हूँ, वह भी बन्द कर दूँ ? याने अब दिन-रात बाहर ही बाहर रहा करूँ ?

पौत्र की बातें सुनकर श्रीनाथ का वृद्धत्व जैसे और भी दस वर्ष आगे बढ़ गया। कहा—“नहीं मनी, ऐसा नहीं कहा जाता, उसे यहाँ नहीं भेजने का।”

वाद-प्रतिवाद का अक्सर दिए बिना ही श्रीनाथ चल पड़े, मनीश मुँह बनाकर बैठा रहा।

“मनीश बाबू।”

“सच भाभी, अगर दादा उमे घर में रखे रहे तो मैं घर छोड़ दूँगा।”

“वह निराश्रय लड़की अब कहाँ जाए ? यह तो कोई भूलने की बात नहीं है न, कि मरने वक्त कल्पना के पिता उसे दादू के हाथ सोप गए। और यह भी हम नहीं भूल सकते कि दादू की इज्जत तुम्हारे हाथों है।”

“मेरे हाथ ! क्या मतलब ?”

नन्दा चुप रही।

“दादू उसकी शादी क्यों नहीं कर रहे हैं ? क्या वे उसकी शादी नहीं कर सकते ?”

जरा सोचकर नन्दा ने कहा—“कर क्यों नहीं सकते ? किन्तु एक को मृत्यु सेज पर वे वचन दे चुके हैं न।”

विस्मय, विराग से मनीश कह उठा—“याने उसे मेरे लिए रखे हुए है। वाह ! माफ करो भाभी, उस गोल-मटोल, बदसूरत लड़की से। कभी भी शादी न कर सकूँगा।” जरा रुककर उत्तप्त स्वर से का चला, और दादू या दुनिया के किसी को भी ऐसा कौन-सा अधिकार : जो कि मेरे अमत से मेरी जिन्दगी बरबाद करे। मुझ पर अत्याचार कर :

का किसी को कौन-सा अधिकार है ?”

सुनन्दा जरा-सा हँसी—उस हँसी की जाति ही निराली हुआ करती है। कहने लगी—“अत्याचार करने का अधिकार ? फिर यह तो एक बड़ा प्रश्न है मनीश बाबू ! मैं पूछती हूँ पाकिस्तान में मनुष्य ने जो मनुष्य पर अत्याचार किया है, क्या वह अत्याचार करने का उन्हें कोई अधिकार था ? हमारी भारतीय सभ्यता का आधार ही व्यक्तिगत स्वाधीनता है। भारत का सन्देश है—स्वाधीन रहो। परमात्मा अनादि, स्वतन्त्र एवं स्वयं दर्शी है। सो मानव मात्र स्वतन्त्र एवं स्वयं द्रष्टा हुआ करता है। मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है स्वतन्त्रता, किन्तु मैं पूछती हूँ—हाँ, पाकिस्तान की बातें तो जाने भी दो। यों नित प्रतिदिन कितनों पर अकारण अत्याचार हुआ करता है। बलवान् निर्बल को दबाता है। धनी गरीब का गला घोटता है। कहो, किस अधिकार से ऐसा हुआ करता है ?”

भुँभलाकर मनीश ने कहा—“बस वही तर्क। अरे भाई, जरा आदमी की तरह तो सोचकर देखो, जिसे देखकर घृणा होती है, उससे कोई शादी भी कर सकता है ? विवाह क्या बच्चों का खेल है ? कहो भाभी ।”

भाभी खिलखिला पड़ी—“अजी, नलिनी बैठी तपस्या कर रही है। उसी से कर लो ।”

“बस, अच्छा न होगा भाभी ।”

सहसा सुनन्दा गम्भीर हो गई, कहा—“यदि एला को तुम चाहते थे तो दादू से कहा क्यों नहीं ?”

मनीश की आँखों में विस्मय भर उठा—“क्या तुम मुझे ऐसा ही अपदार्थ समझती हो ? भाभी, क्या एला जैसी खेल की गुड़िया का मैं जीवन-संगिनी बनाता ? आश्चर्य, आखिर तुम ऐसा सोच ही कैसे सकती ?”

सुनन्दा भी कम विस्मित नहीं हो रही थी—तो क्या मनीश को समझने में उसीने गलती की ?

अनमनी-सी नन्दा पूछ उठी—“तो ?”

दूसरी ओर मुँह फेरकर मनोश बोला—“शायद जिन्दगी में मैं शादी नहीं ही करूँ ?”

उस आहत किन्तु वेदनातुर स्वर में क्या था सो नन्दा ही जाने किन्तु देर तक वह मौन हो रही, इतना तो सही ही है ।

मनुष्य की छाया द्वार पर पड़ी । दोनों ने लौटकर देखा । श्रीमती चौधरानी के साथ नलिनी उपस्थित थी । नन्दा ने उन्हें बैठाया ।

हाँफती हुई चौधरानी बोली—“स्नो-पाउडर और साड़ियाँ खरीदते-खरीदते थक गई हूँ । क्या करूँ । मैं न करूँ तो करे भी कौन ? मि० चौधरी तो ऐसे हैं कि सिवा क्रिटिसाइज के और कुछ नहीं कर सकते । सोचा कि चलो मिसेस राय के घर एक कप चाय पी लूँ । यह विचारी नलिनी सबरे से मेरे साथ है ।”

नन्दा उठी—“अभी लाई मौसी जी, और आप मुझे नन्दा कहा करिए मौसी, मिसेसराय नहीं ।”

वह चल दी ।

नलिनी ने तौल-तौल कर बातें करना शुरू कर दिया—“आज इस सभ्यता के युग में भी कोई मौसी, मामी सम्बोधन किया करता है ? मिसेस राय सभ्य होकर भी असभ्य रह गई ।”

भाभी की निन्दा ? मनीश उबल पड़ा, कहा—“वे अपने को मिसेस राय नहीं कहलाना चाहती हैं, इस लिए ? लेकिन मेरी भाभी जैसी असभ्य अगर आज दो-चार स्त्रियाँ हमारे घर निकल आतीं तो मेरे विचार से हमारे जैसे भाग्यशाली कम होते । और हमारे घरों का चेहरा ही बदल जाता ।”

चौधरानी ने कहा—“जरूर-जरूर, सुनन्दा बड़ी ही बुद्धिमती है ।”

“लेकिन तो भी अभी उनके भक्तों की कमी रह गई है । है न मनीश बाबू ?”

उस परिहास को मनीश ने सुनकर भी नहीं सुना । बोला—“ऐसी स्त्रियों के लिए भक्तों की जरूरत नहीं पड़ती नलिनी देवी, वे स्वयं अपने आप में एक करोड़ हुआ करती है । सभभी न आप ?”

चाय लेकर सुनन्दा पहुँची ।

“अरे यह सब क्या ? इतने फल, यह बालूशाही । नहीं बेटो, मुझे तो सिर्फ चाय चाहिए बस ।”

इसके बाद चम्मच से बालूशाही का टुकड़ा मुँह में डालकर कहा—
“तुम लार्ई हो, क्या करूँ जरा-सा टुकड़ा मुँह में डाल लूँ । अजी वाह, यह बालूशाही, यह तो अमृत के समान बनी है । बाजार से मैंने कभी ऐसी बालूशाही नहीं खाई, यह क्या तुमने आर्डर देकर बनवाई है ?”

“नहीं तो कल मैंने बनाए थे मौसी ।”

“अरे सच ? मुझे तो तुमने अचम्भे में डाल दिया, ऐसी स्वादिष्ट और खस्ता बालूशाही मैंने तो कभी नहीं खाई ।”

और इसके बाद वह पूरा प्लेट खाली कर गई ।

मनीश ने कहा—“केवल यह—बालूशाही ? जो फल आप खा रही है, यह सब इनके हाथ के लगाए हुए हैं, और मेहनत के हैं ।”

“बाप रे, यह तो गजब की लड़की है । इसे जितना देखती हूँ, जितना मित्र नहीं हूँ, उतना ही इसके गुणों पर मुग्ध हो रही हूँ ।”

इतनी प्रशंसा, नलिनी से नहीं सहा गया, कहा—“इन्हें शायद बचपन से काम करने की आदत हो ।”

किसी ने उसकी बातें सुनी ही नहीं, या ध्यान नहीं दिया । वह बोली—“आप खड़े-खड़े चाए क्यों पी रहे हैं, बैठिए न ।”

‘धन्यवाद, मैं आराम से हूँ,’ मनीश ने कहा ।

चलते वक्त चौधरानी बोली—“सब कह रहे थे नन्दा, कि तुम

शादी में नहीं जाओगी। अगर ऐसा है तो मैं मि० चौधरी को भेज दूँगी। वे तुम्हें पकड़कर ले जाएँगे।”

“नहीं, नहीं, उन्हें मत भेजिए, मैं जरूर जाऊँगी।” सुनन्दा के उस स्वर ने मनीश को चकित कर दिया। वह नन्दा के प्रति देखता ही रह गया।

[१२]

विवाह और फिर एला का विवाह। धनवान् की एक मात्र सन्तान, सभ्य, शिक्षित, अप्टुडेट एला का विवाह। ग्राइम्बर तो था ही, उपरान्त पुष्प और पुष्पहार, गुलदस्तों की थी भरमार। वह था चौधरानी का अपना एक दृष्टिकोण। पति के मतामतों की उपेक्षा कर अपने मत को प्रमुख रखना—यही थी चौधरानी की चिरकाल की रुचि। परन्तु यदि वह पति से हारी थी तो बस इस विवाह में। एला और चौधरानी के हजार सिर पीटने पर भी चौधरी अपने मत में अटल रह आया—‘नहीं, सिविल मैरिज नहीं हो सकता, एला का विवाह हिन्दु मत से ही होगा।’

भोज्य पदार्थ बनवा रही थी—पड़ोस की सत्या देवी और माया, जलपान तथा स्त्रियों की अभ्यर्थना, भोजन की व्यवस्था आदि सब कुछ सुनन्दा को सौंपा गया था। सो नलिनी चौधरानी के साथ फूलों के हार बांटती और कमरों में लटकाती फिर रही थी।

स्थूल शरीर लेकर चौधरानी हाँफती हुई दालान के मोढ़े पर बैठ गई। नलिनी ने जल्दी से रूमाल निकाल कर उसके माथे का पसीना पोछा।

“दौड़ते-दौड़ते आप पसीने में डूब गई हैं, आइए बैठिए। मैं सब कर

लूंगी, अब तुम को उठने भी न दूँगी। कहीं हार्टफेल हो जाए तो ?”

वहाँ से जाती हुई सुनन्दा ने लौट कर देखा।

“देखा न नन्दादेवी आन्टी का पसीना ? बस, अब यहीं बैठो, ऐसे ही में तो हार्ट फेल हुआ करता है।”

नन्दा निकट पहुँची, परन्तु पसीने का चिह्न तक न देख कर विस्मित हुई।

शुष्क कंठ से चौधरानी ने कहा—“एक कप चाय नन्दरानी।”
“अभी आई” कह कर उसने चाय दी।

बारीक आवाज से नलिनी ने बाय को पुकारा—“बाय, आन्टी को दो स्लाईज केक और मक्खन-बिस्कुट दे जाओ।”

चौधरानी ने कहा—“तुम्हारा मुँह भी तो सूख गया है नलिनी, मुँह-हाथ धोकर जरा कपड़े बदल डालो। नहीं, साड़ी बदलने के लिए घर जाने की जरूरत नहीं। लो, यह आलमारी की चाबी, मेरी साड़ियों से जो पसन्द आए, पहन लो। नहीं, नहीं, मत करो, आन्टी कहती हो, फिर परायापन क्यों ? आलमारी में सामने ही पाइपिंग बार्डर की सफेद जाजंट की साड़ी रखी हुई है, कल मि० चौधरी मेरे लिए खरीद लाए थे। वे जानते हैं कि सफेद साड़ी में फूटी आँखों भी नहीं देख सकती, फिर भी वे लाए।”

“तुम पसन्द नहीं करती हो, जानते हुए भी उन्हें नहीं लाना था।”

“अजी, उनकी बात छोड़ो, शादी के बाद से मैं जल-भुन कर मर रही हूँ। जो भी मैं करना चाहूँ, सब में उन्हें बाधा देने की बुरी आदत है। पुराने सड़े-गन्दे संस्कार में सने हुए आदमी तो है वे। मेरा जो कुछ हुआ वह तो हो ही चुका, एक लड़की, उसके तक पीछे पड़ते हैं। वह भला क्यों सहने चली ? खरी-खरी सुना देती है। हाँ, तुम जाओ, कपड़े बदल कर ताजा हो लो। एला को जरा भेज देना।”

नलिनी चाबी लेकर चल दी। एला पहुँची। चाय पीते-पीते चौध-

रानी ने एला को देखा; कहा—“हा, ठीक है। आठ बजे लग्न है, उससे पहले नहा-धोकर तैयार हो लेना। लिपस्टिक जरा डीप शेड देना, पहले शेम्पू से बालों को धो लेना, मैंने आया से कह रखा है कि मिस बाबा के बालों को धोना है। सूखने पर हेयर क्लिप्स लगाना जिससे कि खासे फूले हुए घुंघराले बाल बन जाएं और गोल्डन ब्रोकेड की साडी व ब्लाउज मैं शादी के वक्त के लिए लाई हूँ। मोती के नहीं, हीरे के सेट पहनना और सुनहला फ्रेम वाला एमरिकन डिजाइन का चश्मा अच्छा मेच करेगा।”

“ममी, मैं ब्लाउज गोल्डनेट वाला पहनूंगी।”

‘उसे ? बहुत पतला है, तेरा पापा नाराज होगा।’

मूँह बिचका कर कन्या ने कहा—“मेरी बला से।” और माँ की मोद में बंठकर, दोनों बाहो से कंठ लपेट कर बोली, “ममी, मैं अब उस से शादी नहीं करूँगी।

“किससे ?”

“उस रवीन्द्र से।”

माता हँस कर बोली—“किससे करेगी ?”

“मिस्टर रे से करूँगी।” और तब परम उत्साह से वह कहने लगी—
“जानती हो ममी, अभी उस दिन की तो बात है, वह सिनेमा में एक्टिंग करने उतरा, बस दो ही चार महिनों में ऐसा नाम कर लिया कि जनता उसके नाम से पागल है, एकट्रेसिंग उसके साथ एक्टिंग करने के लिए खुशामद किया करती है। सिनेमा के मैनेजर से लेकर डायरेक्टर तक हाथ जोड़े खड़े रहा करते हैं। तुमने भी उसका एक्टिंग जरूर खा है।”

सोचती हुई माँ बोली—“देखा होगा। कौन-सा है ?”

“अजी, वही तो है ममी, मिससे भटनागर याने सुव्रता का नर”

आँखें निकालकर माँ ने कहा—“अच्छा, वह गोरा-दुबला-सा आदमी?”

“हाँ, हाँ। कितना अच्छा एक्टिंग करता है। है नममी?”

माँ ने लड़की की हाँ में हाँ मिलाई—‘सच, बहुत की अच्छा।’

“मैं उसीसे शादी करूँगी ममी।”

एला के मस्तक पर हाथ फेरती हुई चौधरानी ने कहा, “आज आठ बजे शादी है। अब चार बज चुके हैं। पगली, अब कहीं यह शादी रुक सकती है? पहले तूने क्यों नहीं कहा? लड़-भगड़कर मैं तेरे पापा को राजी कर लेती। तब तो तुम्ही ने कहा था एला—“रवीन्द्र पुराने चाल का है तो होता रहे, पर अनुल धन तो है। चाहे वह जैसा रहा आवे। एक कार मेरे लिए रहेगी, बस, रुपयों की गद्दी पर बैठी मन-मानी किया करूँगी, नहीं कहा था?”

“कहा तो था, लेकिन वह पुराने विचार वाला है, मोना कह रही थी—‘तुम्हें वह सुव्रता की तरह डिनर पार्टी में थोड़े ही जाने देगा। न सुव्रता की तरह बालडान्स ही करने देगा, हर बात में टोका करेगा। पर्दे में रखेगा।’ सच ममी?”

अहंकार के साथ चौधरानी ने कहा—“अगर वह ऐसा करेगा तो मैं भी देख लूँगी। इसीलिए न मैं सिविल मैरेज देना चाहती थी। खैर, तू जाकर नहा ले। वक्त कम है। अरी नलिनी, ओ नलिनी, श्रीनाथ साहब आए कि नहीं? जरा देखना। मैं तो शादी-व्याह का कुछ नहीं जानती। आ गए। जान बची, नमस्कार, नमस्कार, अब आप उधर संभालिए, देखिए, मण्डप-अण्डप क्या कहा जाता है, और वहाँ क्या-क्या चाहिए? मुहल्ले की बूढ़ी पुरानी स्त्रियाँ ने बहुत कुछ कर रखा होगा।”

रात्रि के आठ बजने में कुछ ही विलम्ब था। चौधरानी की आपत्ति होते हुए भी शहनाई, बैड सब कुछ बज रहे थे और लाउडस्पीकर भी। दोनों हाथों से कानों को आच्छादित किए चौधरानी मण्डप के नीचे

बठ गई, कहा—“इन बाजों ने तो मेरे कानों के पर्दे फाड़ दिए। सब बातें गँवारों की तरह। मारे दर्द के सर फटा जा रहा है। मुझसे अब कुछ नहीं हो सकेगा। समझे न श्रीनाथ साहब !”

नलिनी गुलाब जल और पंखा लेकर दौड़ी आई। चौधरानी के मस्तक पर गुलाब जल मला जाने लगा।

श्रीनाथ ने कहा—“आप बेंटी रहिए, सब हो जाएगा।”

विवाह आरम्भ हो गया। वर मण्डप के नीचे आया।

व्यस्तता से श्रीनाथ ने पुकारा “लक्ष्मी, ओ बेंटी लक्ष्मी।” सुनन्दा पहुँची और उसकी दृष्टि वर के मुख पर पड़ी। वही समय था जब कि रवीन्द्र की आँखें उठी और सुनन्दा के मुख पर स्थिर हो रही। भूतग्रस्त की भाँति उनकी दृष्टि विचित्र हो रही। नन्दा एक बार सिहरी, कापी और तब सयत स्वर से पूछा—“पुकारा था दाहू ?” निकट खड़े मुप्रकाश ने वर को देखा और कदाचित् उसके अनजान में मुख से निकल गया—“यह यह कौन है ?”

कोई बोला—“अजी, वाह, मुप्रकाश बाबू, आप ही अपने मालिक को नहीं पहचानते ?”

“पहचान ?”—स्वप्नग्रस्त की भाँति कहने लगा प्रकाश “पहचान ? एक रवीन्द्र से मेरा शायद परिचय रहा है, और वह पहचान पाकिस्तान ही मैं खतम कर आया था। वे भी प्रायः ऐसे, इन्हीं की तरह देखने में थे।”

“विचित्र आदमी हो यार ? अपने मालिक को नहीं पहचानते। यह शायद बाहर से आए है। अमीर आदमी है, किसी से मिलते-मिलाने कम है, इनके कई कारखाने हैं। स्कूल है, इन्हीं का तो वह स्कूल है, जहाँ मास्टर हो। करोड़ों रुपये का कारबार है।”

सहमकर प्रकाश ने कहा—“लेकिन यह तो कभी स्कूल में जाते नहीं। इनके शायद वे सेक्रेटरी हों, जिनसे अब तक वास्ता पड़ा।”

तब नन्दा से कह रहे थे श्रीनाथ — “समझी लक्ष्मी, अब सब नियम-दस्तूर तुम्हें ही करना है। चौधरानी जी अचानक बीमार हो गई है। उनके बदले उनका सब काम, याने मढ़वा के नीचे दुल्हा-दुल्हिन की आरती उतारने से लेकर सारा नियम तुम्हारे सिर है। इन सब शुभ कार्यों के लिए सती-पाध्वी, पतिव्रता की जरूरत पड़ती है न। और तुम्हारे सिवा ऐसी साक्षात् लक्ष्मी यहाँ शायद ही कोई हो।” इसके बाद नन्दा के कान से लगाकर निम्नस्वर से वृद्ध ने कहा — “इनमें कौन स्त्री कैसी है ? कौन कह सकता है ? मुझे तो तुम्हारे सिवा किसी पर विश्वास नहीं।” और तब कठस्वर को उच्चर कर कहा — “तैयार हो।” यह काम तुम्हें ही करना है।” किन्तु इतने पर भी जब नन्दा ने हिलने का नाम नहीं लिया, तब सहसा ही श्रीनाथ ने नन्दा के मुख के प्रति देखा। वैसा सर्वस्व लुटा हुआ, रिक्त, रक्त शून्य मुख इससे पहले शायद ही श्रीनाथ ने कभी देखा हो। आकुल स्वर से वे बोले — “तुम्हें, तुम्हें क्या हो गया है ?”

पुरोहित ने आवाज लगाई — “लग्न निकाला जा रहा है, नियम-रस्म पूरा करो।”

“नन्दा जल्दी, लो यह घी के दिए हैं। थाली में उठा लो और चलो। मेरी सती-लक्ष्मी बेटी के सिवा यह काम कोई नहीं कर सकता।”

श्रीनाथ ने उसका हाथ पकड़कर खींचा।

“नहीं।”

“क्या नहीं।”

“सुप्रकाश मेरे पति नहीं है।” परिष्कार किन्तु धीरस्वर से वह बोली।”

श्रीनाथ को मानो करोड़ों वृश्चिक ने दंशन कर लिया। अनजान से पूछने लगे — “तो प्रकाश तुम्हारा कौन है ?”

सो प्रकाश ? वह वर्ण-हीन मुख से उन शत-सहस्र कौतुहली नेत्रों

के सामने से हट जाना चाहने लगा। और निकटवर्ती जिन्होंने सुना, वे सब नन्दा के चहुँ ओर घिर आए। नलिनी के मुख पर व्यंग्य की हँसी भर उठी। चौधरानी सिर दर्द भूल गई।

और जो नारी कि इतने सब का दर्शनीय बन रही थी, उस नन्दा की अवाज मानो जलन्त विद्रोह से भर-मी उठी—“वे ? प्रकाश बाबू ? वे मेरे आज के साथी हैं। और हैं पाकिस्तान के खूनी वातावरण से मुझे यहाँ तक लाने वाले ! मेरे आश्रय दाता मित्र, मेरे बान्धव।”

चौधरानी कह उठी—“या भगवान् ।”

“चलो भाभी, मुझे नींद आ रही है। तुम्हें घर पहुँचा दू। फिर आराम से सोऊँगा। दो दिन से जाग रहा हूँ।”—वचन समाप्त कर मनीश ने सुनन्दा का हाथ पकड़ा और भीड़ को चीरता हुआ बाहर निकला।

तब बाहर शहनाई में वेहाग की मीठी धुन बज रही थी।

नन्दा धीरे जाकर कार पर बैठी।

मनीश ने आखे घुमाकर चहुँ ओर देखा, सुप्रकाश का कहीं पता न चला।

श्रीनाथ भागे हुए आ रहे थे। चिल्लाकर पुकारा—“मनीश, ओ मनीश।”

“भाभी को घर ले जा रहा हूँ” तीव्र स्वर से मनीश ने कहा।

“सुनो तो।” श्रीनाथ बोले।

“पहले भाभी को पहुँचा दू।” और वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कार पर बैठ गया—“चलो मोहनसिंह।”

सुनन्दा के द्वार पर गाड़ी रुकी। हड़बड़ाकर सुनन्दा से पहले मनीश घर में घुसा और नीचे की दालान में बैठ गया—‘बाप रे, मारे भूख के आंखें निकली आ रही है। कल से भूखा हूँ। तुम कपड़े पीछे बदलना भाभी, पहले मेरा खाना तैयार करो। बस, गरम-गरम

पूरियाँ; और आलू का फ्राई । पापड़ भी तल लना । जरा तौलिया देना, मे नहा लूं ।”

कहा मनीश ने और ऐसे सहज ढंग से जैसे कहा कि मानो कहीं कुछ हुआ ही न हो ।

[१३]

सन्ध्या, सिन्दूर भरी डिबिया-सी, साँभ की नवोढ़ा-सी भाँक रही थी गृहस्थो के द्वार पर, प्रातः सन्ध्या में समाहित हो चुका था । और गत काल आज मे । जन्म की व्यथा लिए मौन रात्रि विश्व के प्रान्तर में खड़ी बिखरे कुन्तलो में संसार की वार्ता समेटने लगी थी ।

जब उस मौन व्यथा की मुखरित आह, कम्पित गुजंजा के साथ सुनन्दा के मुक्तद्वार पर पहुँची, तब वह चाँद भरी रात्रि मे ऊपर के भरोखे में बैठी स्वयं ही एक जीवित आह बनी हुई थी । कब सन्ध्या रात्रि में परिवर्तित हुई, नन्दा कुछ नहीं जानती ।

सोच रही हो शायद वह पथ के उस पार की अट्टालिका के प्रति दृष्टि निबद्ध किए—जन्म की वेदना में सनी यदि वह जन्मी थी, तो वेदना का अन्त भी कहाँ है ?

अट्टालिका का वातायन खुला । राशि-राशि उज्ज्वल प्रकाश बाहर निकलकर खुशी की वार्ता में स्वयं ही मस्ताने लगा । देखा नन्दा ने उस प्रकाश को, निबद्ध हो रही दृष्टि प्रकाश की उज्ज्वलता में ।

यह प्रकाश जीवन की हरी खुशी में रंगा, दूर्वादल के शीर्ष-सा ताजा यह प्रकाश—उस उतरती हुई सन्ध्या के मोहजाल-सा । नन्दा के मन में आया—क्या उसे उस प्रकाश का तिल बराबर अंश भी दुनिया में प्राप्त नहीं हो सकता था ? किन्तु क्यों ? माना कि दुनियाँ की पूर्ण

व्यथा लिए वह जन्मी । परन्तु एक उसी को सब कुछ सह सकने के लिए क्यों बनाया गया ? क्यों विधाता ने उसे सिरजा ? और उस विधाता को कौन-सा अधिकार था — उसे मरुभूमि की आह की तृप्णा में बसाने का ? नहीं-नहीं ! वरन स्वयं उस एक नारी ही को एक मरुभूमि की आह बना देने का ?

पथ चलता पथिक गा उठा— “प्रेम के गान सुनाओ राधे, प्रेम गीत मे समाओ ।” —उम अन्धकार में भा सुनन्दा के नेत्र अग्नि-शिखा से प्रज्वलित हो उठे ।

भीहें सिकोड़कर वह गुनगुनाई—मानो अपने आपको सुना रही हो—“सब भूठा है, सब भूठा ।” और फिर विद्रोह की तीव्रता मे फट-सी पड़ने लगी— “प्रेम ! प्यार ! स्नेह ! ममता ! सब भूठा है । बच्चो का खेल है, कवि की कोरी कल्पना है । है अलैया का दीपक, जिसे कि कल्पना के हवाई जहाज पर चढाकर असम्भव विचित्रता मे रंग भर दिया जाता है । किन्तु जिमके वास्तव जीवन में वह जैसा तो मिथ्या है, वैसा ही हास्यास्पद भी ।

प्रेम ! और उस मौन बेला में पुनः नन्दा के मन में प्रश्न उठा— प्रेम ! वह तो कवि-कल्पना की उडान है । न उसकी कोई सत्ता है, न वारतधिकता । प्रेम की परिभाषा मानव ने कितने ही प्रकार से की । युग-युग में वसे हुए उस प्रेम को किसी ने आदिम सत्ता के रूप में चाहे क्यों न माना हो, परन्तु है वह,— हाँ, उसकी भित्ति स्थापित है बालुका के ढेर मात्र पर । सो है स्थापित स्वार्थ पर । नहीं-नहीं । पुनः नन्दा ने अपमे मन के अन्तरतम प्रदेश मे कहा — उसकी भीत जमी हुई है—अन्याय पर, सच तो यह है कि वह छूत मार्ग का साथी है ।

नन्दा के नत्रों की ज्वाला के स्थान को विस्मय और वेदना ने निगल-सा लिया — सो भी ऐसे सहसा कि वह वार्ता कदाचित नन्दा ही के निकट गोपन रह गई । उसका जी अखण्ड विस्मय और वेदना से

भर उठा ।

बैठी-बैठी नन्दा सोचने लगी— बाल्यावस्था में पितृ-मातृहीन होकर, उस स्नेह से वह वञ्चित रही थी । परन्तु हिन्दुस्तान में पहुँची तो पाया दादू को । सौम्य, देवतुल्य वह दादू, और शायद जी भरकर नन्दा ने उस दादू को श्रद्धा-भक्ति से स्नेह किया । और वह दादू ! उनका वह अकृत्रिम-सा स्नेह ? जो कि एक दिन उसे देखे बिना आतुर होकर भरी दोपहरी में भागकर आते थे और अपना ममत्व जतलाने लगते थे । जो कि भ्रमर-गुजना-से उसके कानों में गुनगुनाया करें—मनीश और उसमें कोई भी अन्तर नहीं रह गया है उनके पास । और उन्हीं वृद्ध हृदय का वह परिपुष्ट प्रेम, स्नेह, ममता— जो कि अपने पौत्र के शत अन्याय, अत्याचार, उच्छृङ्खलता पर भी उदार बाहों में समेटे रहा करें । वही वह उच्चगामी प्रेम आज एक असहाय नारी को— जिसे कि एक दिन उस प्रेम ने अति निकट अपना लिया था, वही प्रेम एक छोटे से शब्द पर चूर्ण-विचूर्ण हो गया ! एक दिन के स्नेह की पात्री दूसरे दिन की घृणा की पात्री बन भी कैसे सकी ?

प्रश्न पर प्रश्न उठने लगे उसके मन में—तो ऐसा क्यों ? दण्ड उसे दिया गया — गुस्तर दण्ड । परन्तु उस पर क्या कभी विचार किया गया था ?

और न्याय ! दुनियाँ ने उसे त्याग दिया है, सो ठीक है । परन्तु यदि वह अपराधिनी है तो उसके अपराध का उचित विचार क्या कभी दुनियाँ ने करना चाहा है ?

नहीं ।—मन के प्राण से उत्तर आया—नहीं-नहीं, नहीं ही । सो तब दूसरा और तीसरा प्रश्न सामने अड़ गया ।

नहीं ? तो वह अपराधिनी भी क्यों ? वह दादू—जो कि छूत मार्गी होते हुए भी पौत्र के मतवाद में इस वृद्ध अवस्था में भी अपने आपको रंग सके हों, छुआछूत को मानते हुए भी मुसलमान बावर्ची के

हाथ का भोजन कर तक रहे हों, और अपनी रुचि, अपने संस्कार से बहिर्भूत भोजन कर सक रहे हो। वही स्नेही हृदय, अपने परम स्नेह की पात्री के एक ऐसे अपराध को बढ़ा-चढ़ा कर वास्तविक अपराध के रूप में मान बैठा जो कि उस नारी का वास्तविक अपराध न हो। और ऐसा स्नेह, प्रेम, ममत्व, क्या वह भी स्नेह कहला सकने योग्य है ?

“भाभी—ओ भाभी ।” —कोमल, निकटनापूर्ण स्वर से पुकारा मनीश ने ।

और तब नन्दा ने मानो अपनी चिंता को दोनो हाथों से समेट कर दूर फेंक दिया । उठी, स्विच दबाया और हँस सकने का प्रयास करती हुई बोली—“आज भी तुम पहुँच गए मनीश बाबू ?”

“न आजँ ? क्यों भाभी, ओ भाभी, तुम मुझे आने को मना कर रही हो ?”

“नही तो ।”

“नही न ? फिर क्यों कह रही थी—कि आज भी आ गए ?
आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?”

“मै ?” —और वह चुप रह गई ।

“नही, तुम्हे कहना ही पड़ेगा । आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?”

“जब कि मुझे सब ने त्याग दिया, तुम, तुमही एक ऐसे क्यों बचो कि उन सब से अलग रहो ।”

“फेंक देना और उठा लेना क्या कोई मजाक समझ रखा है ? और अपनी ही सुनन्दा को मै फेंक दूँ ? क्यों भला ?”

“परन्तु वही जो दुनियाँ का नियम है ।”

“ऐसा ? शायद दुनिया का यह मतवाद हो । और मेरी भाभी के मत से ?” मनीश हँस रहा था ।

जरा सोच कर सुनन्दा बोली—“मैं तो एक समूची नारी ही हूँ । सुनन्दा सुनन्दा होकर ही रही आऊँगी और हूँ भी । यों रक्त का सम्बन्ध ही सबसे बड़ा होकर थोड़े ही रहा आता है मनीश बाबू ।”

“तो ?” उत्सुकता से ओतप्रोत मनीश की वह जिज्ञासा ।

“हृदय ने जिसे एक बार अपनत्व दे दिया हो, उस अपनत्व का विनाश कभी हो कैसे सकता है ?”

“नहीं, मैं सुनन्दा का सिद्धान्त सुनना चाहता हूँ ।”

सुनदा केवल मुसकराने लगी ।

“कहो भाभी, तुम्हारा अपना मत, निज सिद्धान्त ।”

“कह जो चुकी ।”

“नहीं, अपना निजी मत कहो ।”

“मत ? नहीं-नहीं मनीश बाबू, जानकारी कहो । सुनोगे ? किन्तु उसके बाद भी भाभी कहकर पुकार सकोगे न ?”

“ओ भाभी ।”

“चुप—चुप । हाँ । मेरी अपनी जानकारी, खोज का निष्कर्ष ।”

“क्या ?”

“सब भूठ है, सब भूठा ।”

“भूठा है ? प्रेम, प्यार । सब-सब ?”

“चौक रहे हो ? सब मिथ्या है । है केवल अभ्यास का एक छोटा-मोटा रूप जिसे कि तुम प्रेम कह रहे हो । मेरे विचार से हजारों फन्दे में जकड़ा हुआ वह है मात्र एक सङ्कीर्ण और अस्थायी वस्तु । जिसे कि कलाकारो ने अपनी कल्पना की उड़ान में बसाकर उच्चस्तर में बैठाने की चेष्टा की है । संसार को धोखा देकर बेवकूफ बनाया है । उस प्रेम की न कोई स्वतः स्फूर्ति है, न कोई स्थायीत्व । एक शब्द में है — वह बच्चों का खेल । ताश का बना हुआ सुदृश्य महल जो कि एक जरा से धक्के से सदा धूल में मिट जाता है, टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाता है ।”

सहानुभूति पूर्ण दर्दीली दृष्टि से मनीश नन्दा को देखने लगा और देखता ही रहा ।

सोच उठा मनीश—वह जो रिक्त, सर्वशान्त नारी आज उसके सामने खड़ी आहों की अंधेरी दुनियाँ बसा रही है, पुरुष वह, वह उमे ऐसी कौन-सी वस्तु दे सकता है । जिससे कि उसकी अंधेरी दुनियाँ में खुशी का एक दीप जल उठे ?

उस निर्यातिता नारी को ऐसी कौन-सी बातें मुना सकता है, ऐसा कौन-सा विश्वास दिला सकता है, जिसे कि उसकी अंधेरी दुनियाँ पुनः हरियाली से हरी हो उठे ?

“क्या सोच रहे हो मनीश बाबू ?”

“तुम्हें ।”

“क्या मेरे लिए कुछ सोच-विचार करने को भी है ?”

मनीश चुप हो रहा, क्या उत्तर देता उसे ? एक युवती, सुन्दरी नारी पुरुष के सामने खड़ी पृष्ठ रही है, मेरे लिए कुछ सोचने को भी है ? क्या उत्तर देता उसे ?

वही, वह पुरुष अपने पुरुषत्व को सँवारे, सँजोए, नारी के निर्यातिन का, अत्याचार का शेष पृष्ठ देखने के लिए चुप-चाप बैठा हुआ है ? सो भी—एक साक्षी के रूप में । सोचते-सोचते मनीश का पुरुषत्व कदाचित् अन्तःकरण में अपनी सत्ता जता उठा । मन के कोमल अश में सहानुभूति का मधु-प्रलेप लिप गया, और शायद नर के हृदय के प्रेम का प्रथम चुम्बन भी उस हृदय में अंकित हो गया हो तो कौन जाने ?

सहसा कह उठा मनीश—“अगर अपने लिए तुम्हें सोचना खत्म हो चुका हो, तो मेरे लिए बहुत कुछ सोचने को है न ।”

“सोचना ? और मेरे लिए ?”

“हाँ, नन्दा विश्वास नहीं होता ?”

“विश्वास ? दुनिया पर विश्वास ? पुरुष पर नारी का विश्वास ?”

नन्दा दातों तले अघर दबाकर वक्र हंसी ।

“सब दानव नहीं है संसार में । आदमी भी है भाभी ।”

“सच ?, जैसे कि तुम एक हो ?”

उस चपल परिहास से मनीश चिढ़ा—“सचमुच नन्दा तुम एक पहेली हो। बेवकूफ नहीं हूँ । समझ रहा हूँ कि पुरुष के, संसार के कठोर अन्याय, अत्याचार ने आज तुम्हें विद्रोहिणी ही नहीं, वरन पत्थर बना दिया है । नारी-हृदय की कोमलता, नम्रता सब कुछ को चूस लिया हूँ । तो भी कहूँगा तुम गलत रास्ते पर हो । अगर यहाँ दानव है, तो मानव भी है । अगर अत्याचार है तो विचार भी है, न्याय भी है ।”

“नहीं, सब भूठा है. सब भूठा । केवल है अधिकार का दम्भ । मानव की स्वाधीन इच्छा को नाखून द्वारा छिन्न-भिन्न कर डालना । और—” वह हाँफने लगी ।

“हमेशा तुमने मुझसे छिपाया है । छिपाती रहो । पाकिस्तान से आई हुई सुनन्दा ने भूल धारण करली है, इतना तो मैं जोर के साथ कह सकता हूँ । किसी एक पुरुष के अत्याचार से पुरुषमात्र को घृणा करना कहाँ तक ठीक है, वह तो तुम्ही जानो । लेकिन मैं कहता हूँ, एक दिन तुम्हें इसी पुरुष को श्रद्धा के साथ अपनाना ही पड़ेगा ।”

“ऐसा ! तो वह पुरुष कौन है ? तुम स्वयं ? उस डलंग परिहास से मनीश उत्तप्त हो उठा ।

कहा—“भाभी ।”

“कैसी भूलती हूँ, आज तुलसी मंच पर दीप तक नहीं जलाया ।”

मनीश ने उसका पथ रोध किया—“ठहरो, भागने का वक्त मिल जाएगा । तुम चाहे जैसी भी पहेली क्यों न हो, लेकिन मैं शायद सुलझा पाया हूँ । ठहरो ।”

“ठहरूँ ? और तुलसी पर—”

“बस करो भाभी, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो ।”

और न जाने क्यों सुनन्दा-सी जिद्दी नारी वाध्य शिशु की भाँति खड़ी रह गई, पूछा — “कहो ।”

“प्रकाश ने क्या उसी दिन से यहाँ रहना छोड़ दिया है ?”

“नही तो ।”

“भूठ बोल रही हो, और मुझी से भाभी ?”

“और मैं कहती हूँ, मेरी बात मुझ ही पर क्यों न छोड़ दी जाए ? दूसरे को वे बातें जानने की क्या जरूरत ?”

अपमान की लज्जा से मनीश तिलमिला उठा । कठोर व्यंग्य से हठात् वह कह उठा—“बहुत अच्छा नन्दरानी, अनधिकार चर्चा है ? अच्छा तो अधिकार और अनधिकार का पाठ भी अब शायद तुम्ही से लेना पड़ेगा । पाकिस्तान से जो आई हुई हो न ।”

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही मनीश चल दिया । सुनन्दा ने एक बार उस ओर आँखें उठा कर देख भर लिया ।

[१४]

ऊपर के कमरे में पहुँचकर नन्दा अवाक् हो रही । स्कूल न जाकर प्रकाश आँखें बन्दकर आराम कुर्सी पर पड़ा हुआ था । नन्दा निकट पहुँची, माथे पर हाथ रखा । पूछा—

“क्यों ? बुखार है क्या ?”

सुप्रकाश ने आँखें खोली, उठकर बैठा । फिर अपना मस्तक हटाकर बोला— “मैं अच्छा हूँ, जरा उस कुर्सी पर बैठ जाओ ।”

सुनन्दा के मुख पर न तो विस्मय था, न विराग । वह जानती थी कि उन दिनों सुप्रकाश उसके सान्निध्य से कोसों दूर भागता फिरता था । यों कि कभी-कभी भोजन करने घर तक नहीं आता । पहले की

तरह आराम कुर्सी के हाथ पर वह स्वयं ही नहीं बैठ रही थी। सुनन्दा एक कुर्सी जरा दूर हटाकर बैठी।

“कहो।”

“पिताजी ने सब कुछ तय कर लिया है।”—दूसरी ओर देखता हुआ प्रकाश कहने लगा—“याने—शादी का दिन तक।”

शान्त स्वर से नन्दा ने कहा—“जिस दिन जाना हो, उसके एक दिन पहले कह देना। तुम्हारा सब सामान बाँधकर तैयार कर दूँगी।”

ऐसे सहज में बात बन गई, यह देखकर प्रकाश अत्यधिक विस्मित हुआ। जरा रुका, और मस्तक खुजलाता हुआ बोला—“शायद समझ रही हो कि मेरा यह जाना चिर दिन के लिए है।”—और शुष्क कण्ठ को साफ कर बोला—“सोचता हूँ, तुम्हारा क्या होगा?”

“मेरे लिए यह मकान और फल तरकारी का बगीचा क्या यथेष्ट न होगा? एक स्त्री के लिए और कितना चाहिए!” जरा मुसकरा कर नन्दा पुनः बोली—“मेरी नानी जरूर ही भविष्य की जानकार रही है। तभी तो मेरे नाम अपना यह मकान लिख गई।”

“अकेली तुम कैसे रह सकोगी?”

“परन्तु नहीं भी क्यों? संसार में तो हम अकेले ही आए हैं न? फिर सोचो तो सही—पाकिस्तान में मेरी दुर्दशा की बात। मुझे मरा हुआ समझ कर शायद किसी ने रास्ते में मुझे घसीट कर फेंक दिया था। वह तुम्ही तो थे न जो कि संकट, विपत्ति की अवहेलना कर मुझे उठा लाए थे। सोचो, यदि आज तुम न लाए होते तो मुझे अकेली ही रहना पड़ता न?”

अनमना-सा प्रकाश ने कहा—“वह तो मैं अपनी बहन के लिए पहुँच गया—पाकिस्तान। सोचा—चलो तुम्हें भी देखता जाऊँ, एक साथ कालेज में पढ़ने की साथिन तुम। हम दोनों तुम्हारी शादी के बाद से बिछुड़े हैं न? तुम अमीर की स्त्री बनकर चली गई। और मैं

कलकत्ता ही में रहा आया।”—उसके बाद सुप्रकाश ने आँखें बन्दकर लीं और अपने आप बड़बड़ाने लगा—“किनना भयानक, वीभत्स दृश्य था। रास्ते खून से रंगे हुए थे, जले और अधजले मकानों का कफ़ा चित्र, तड़फते हुए नर-नारी, नग्न मृत शरीरों का ढेर, और उसी भयानक वातावरण में मृतको के बीच तुमको पाया।”

नन्दा चुप रही।

“रवीन्द्र को मैंने वही शादी के वक्त देखा था और दूसरी बार उसे पुनः वर के वेश में देखा। जब तुम्हारी वह दुर्दशा हो रही थी, तब क्या रवीन्द्र पाकिस्तान में नहीं था?”

“वे पहले ही धन-सम्पत्ति की व्यवस्था करने के लिए वहाँ से चले गए थे।”

“मैं कई बार पूछना चाहता था कि तब वह तुम्हें साथ क्यों न ले गया?”

“मेरी मास उन दिनों मृत्यु शय्या पर थी न।”

“ऐसा? उसके बाद?”

जब वे घर वापस पहुँचे, तब सब कुछ का अन्त हो चुका था। कौन जाने वे कब पहुँचे। मैं तो तब बेमुग्ध थी।”

“और तुम्हें रास्ते में कौन फेंक गया था?”

“कौन जाने।”

“कुछ याद नहीं?”

“नहीं, शायद मुझे मृत जान कर अत्याचारीगण फेंक गए हों शायद वे लौटे हों और मुझे मरा जानकर वहाँ से चले आए हों।”

“ऐसा हो सकता है।” प्रकाश स्तब्ध-सा बैठा रहा।

नन्दा उठी—“चलूँ, तुम्हारी तैयारी कर दूँ।”

“और तुम?”

“मैं?”—म्लान हँस कर वह बोली—“मैं तो हूँ ही, और सुनन्दा

इसी घर में बनी रहेगी ।”

“नहीं, अभी तैयारी मत करो नन्दा । सिर में जार का दर्द है । जरा टहल आऊँ ।” और जाता हुआ वह लौटा—

“नहीं—नहीं, तैयारी मत करो । सबने तो तुम्हें छोड़ दिया है, अकेली कैसे रहोगी ? किसकी होकर रहोगी नन्दा ?”

“अपने-आपकी । मैं हूँ और मेरी सत्ता है । उसे अस्वीकार करने वाला, मिटाने वाला है भी कौन ? सबने छोड़ा ? जाने दो, दुनिया का नियम जो है । कल का अपना, आज का पराया हो जाता है । दोष किसे देना ? नियम ही जो है न । सुनो, तुम कल ही चले जाओ ।”

“जरा सोच लूँ ।”

नन्दा पुनः हँसी—“यह तो अपने मन को धोखा देना है । आज का सत्य है—तुम्हें जाना ही है । इस बात को तो मैं बहुत पहले ही से जानती थी ।”

“तुम ? तुम जानती थी नन्दा ?”

वह चुपचाप हँसने लगी । वह हँसी कदाचित् उसका जवरदस्ती हँस सकने का प्रयास हो, या तो वह हँसी उसने कर्ज ली हुई हो । और वह हँसी कदाचित् विद्रोह का रूप ही हो । या तो कोई विचित्र जाति की हँसी हो । परन्तु सुनन्दा हँस रही थी—सो तो सही ही है ।

“अगर तुम जानती थीं तो मुझ से कह क्यों न दिया ? अपने—सान्निध्य से हटा क्यों न दिया ?”

“इसकी क्या जरूरत थी ? उस दिन के सत्य को यदि तुमने अपने मन के किसी कोने में संजो कर रखना चाहा हो तो मैं उसमें बाधा देने वाली कौन होती हूँ ? माना कि यह जो कुछ है, सब कुछ मिथ्या है । अलीक स्वप्न है, किन्तु उस दिन का सत्य तो यही था न कि तुम्हारा और मेरा एक साथ रहना, एक ही परिचय में बंधना ।”

“मुझे सतर्क क्यों न कर दिया तुमने ?”

नन्दा मौन रही आई ।

प्रकाश बार-बार कहने लगा—“क्यों न मुझे बतला दिया ? क्यों—
क्यों ?”

“तुम्हें बतलाकर क्या होता ? यह तो जानी हुई बात थी, कि तुम जैसे दयालु हो वैसे ही कमजोर मन के आदमी हो, जिस कमजोरी—”

“कमजोर मन ? कापुरुष हूँ नन्दा मैं ?”

“दया से भरा हुआ हृदय तुम्हारा जरूर है, वरना अपने को मौत के मुह में डालकर मुझे उठा कैसे ले आते ? उस दिन पाकिस्तान की परिस्थिति ऐसी थी कि सन्तान अपने जन्मदाता से डरती थी । अरे तुम तो नाराज हो गए । संसार में कई तरह के आदमी हैं, और उनका स्वभाव भी भिन्न प्रकार का हुआ करता है । कापुरुषता एक चीज है और दया दूसरी । और इनकी तुलना एक दूसरे से नहीं हो सकी है । फिर—दया की किसी वस्तु से तुलना भी कैसे की जा सकती है ?”

ज्वलन्त अंगार से शब्दों में प्रकाश कहने लगा—“और वह रवींद्र, कापुरुष साथी रवीन्द्र—जो कि वैसी स्थिति में विवाहित पत्नी को रख कर दौलत समेटने के लिए जान बचाकर भाग गया । और अब अमीर बना कार पर घूमा करता है, अपनी पत्नी की आँखों के सामने दूसरी नारी से शादी कर बैठे, ऐसा एक आदमी तुम्हारी आँखों में देवता बना बैठा है न ? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, अब भी तुम्हारा मन, प्रेम—प्यार उसी के दरवाजे पर भटका करता है । क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ? बोलो वह है साहसी ? वीर ?”

वेदना से सुनन्दा का मुख पीला पड़ गया । परन्तु उसकी शिक्षा ने उसका साथ न छोड़ा । कहा—सो भी धीरता से—“यदि किसी में शायद कुछ कमजोरी हो तो रहने भी न दिया जाए ? किसी की

एक सच्ची या भूठी कमजोरी को दिखलाकर अपने आपको छोटा करना बुद्धिमानी नहीं है। दूसरी बात—मेरे; आँखों के सामने उसने शादी नहीं की, मुझे अब भी विश्वास है।”

“क्या ?”

“मेरे मरने का उन्हें पूरा विश्वास है।”

“क्या कहती हो ? क्या मण्डप में जाकर रवीन्द्र ने तुम्हारी तरफ नहीं देखा ?”

“पल भर के लिए उनकी आँखें स्थिर हुई थी। किन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ, उन आँखों में परिचय का चिह्न तक नहीं था। मैं नारी हूँ और उनकी धर्मपत्नी, क्या अपने ही पति की आँखों की भाषा नहीं पहचानती ?”

“याने तुम्हारे विचार से वह वीर है ?”

“वीर ? किन्तु ऐसा मैंने कब कहा ? और है या नहीं, यह बात अभी से मैं कैसे कह सकती हूँ ? वह तो परिस्थिति ही बतला सकती है। कापुरुषता कई प्रकार की हुआ करती है। हो सकता है वे समाज के और उसके बने हुए नियम के निष्ठावान् हों।”

“और मैं ?”

वह बात को टाल-सी गई, कहा—“मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। तुमने जो कुछ मेरे लिए किया है, वह कितने मनुष्य कर सकते हैं ?”

“केवल कृतज्ञ ही ? कहो नन्दा, मात्र कृतज्ञ।”

नन्दा के मौन मुख के प्रति देखते हुए प्रकाश ने पुनः कहा—

“क्या एक बात मुझ से सच कहोगी ?”

“अब तक भूठ कहने की जरूरत नहीं पड़ी न।”

“क्या तुम अब तक रवीन्द्र को चाहती हो ?”

नन्दा मौन रही।

“उत्तर न दोगी ?”

“उसे सुनकर कोई क्या करेगा ? और उसमें दूमरो को लाभ ही क्या है ? प्रेम की परिभाषा क्या है. मो मैं नहीं जानती । परन्तु नारी का एक बार लुटा हुआ प्यार—”वह चुप हो गई ।

“तो ?” आग्रह से प्रकाश ने पूछा ।

“तो ? अपने आधार को शायद जल्दी न भूलती हो ।”

“समझा । और रवीन्द्र ?”

“किसी के मन की बात दूसरा क्या जाने ।”

“और पहले ?”

“उनका प्यार ! वह तो मुझे ही केन्द्रित कर अंकुरित हुआ । बड़ा—पनपा था न ।”

आक्रोश भरी दृष्टि से सुप्रकाश सुनन्दा को देखने लगा, मनमें आया हो शायद - यह नारी, जिमके लिए उसने इतने दिनों तक अपने आत्मीय जनों को, मित्र-बान्धवों को त्याग रखा था, पिता की उस बड़ी सम्पत्ति के रहते हुए भी यहाँ थोड़े से वेतन पर स्कूल मास्टरी करता हुआ पड़ा हुआ है, वही-वह नारी अब तक एक दूसरे की आराधना में बैठी तपस्या कर रही है ।

और वह ? एक उसी की तरह पुरुष । उपरान्त कृतघ्न, और कागुष्ट वह पुरुष । और ऐसे एक के लिए अब भी उसके मन का प्रेम जीवित रह कर पनपता चला आ रहा है ।

और वह स्वयं ? इतना सब कुछ त्याग करते हुए भी वह उस नारी के निकट से पा रहा है क्या ? मात्र कृतज्ञता । कोरी श्रद्धा । ईर्ष्या से सुप्रकाश के नेत्र प्रदीप्त हो उठे ।

“चलूँ । तुम्हारा सब सामान बाँध दूँ । अगले माह की शादी है । अरे हां, सूटकेस का कब्जा तो लगवालो । सुन रहे हो ?”

“तुम्हारी बला से । लगवाऊँ चाहे न लगवाऊँ ।”

“तो दूटे सूटकेस को ले जाओगे ।”

“मुझे नहीं जाना है—नहीं—नहीं, तुमको मेरे जाने न जाने की सोचने की जरूरत नहीं।”

नन्दा विस्मय से स्तब्ध रह गई। और उन्माद आंधी की भाँति प्रकाश निकल कर चल दिया।

[१५]

तुलसी मंच में सान्ध्यदीप उजियार कर, गले में आँचल डाले वह तुलसी की वन्दना कर रही थी—वही सुनन्दा। उसके मुद्रित नेत्रों के भीतर भक्ति थी, प्रार्थना, अथवा केवल ही अनुयोग ? उसके नारी-जीवन को बिना दीप के, बिना अपराध के, बिना विचार के विफलता में समा देने के लिए देवता के द्वार पर अनुयोग कर रही थी या निष्काम अर्चना, यह कह सकना कठिन है। अथवा यौवन के पुष्पित पलों को आग्नेय गिरि के स्फुलिगो में सुलभा देने के लिए, मन के विद्रोह द्वारा मानव और देवता से भगड़ रही थी या समझौता कर रही थी या नहीं ऐसा कह सकना तो असम्भव ही है।

तब खुशी की हवा में बहती-सी पहुँची वह एला।

“जीजी—जीजी” पुकारती हुई उपस्थित हुई।

सुनन्दा ने प्रणाम किया। घृत दीप के पलीतों को जरा आगे बढ़ाया और दीप को तुलसी-मंच के ऊपर रखा तब उत्तर दिया—“मैं यहाँ हूँ एला। तुम फिर छिपकर भाग आई हो ? कही मौसी सुन पावें तो ?”

आँठों को बिचकाकर एला ने कहा—“मैं कब किसी से डरती हूँ ?”

एला सहसा नन्दा के गले से लिपट गई, कहने लगी—“न जाने क्यों जीजी, तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। जानती हो जीजी। ममी और पापा ने सख्त मनाई करदी है मुझे यहाँ आने के लिए।”

“और तुम्हारे उनने ?”

“उन्हें यह सब क्या मालूम ? वे तुम्हें थोड़े ही पहचानते लेकिन जीजी, कितना बड़ा अन्याय है। सोचो तो सही। किसा के व्यक्तिगत मामले में दूसरों को क्यों पड़ना ? और मैं आश्चर्य से सोचती हूँ। एक दिन जिसे उन लोगों ने आदर्श नारी कहकर माना, वे ही आज सब की त्याग्या बन गईं। उसे ही धूल में फेंक दिया ? मैं तो ऐसे समाज को फूटी आंखों भी देखने के लिए, उसके विधानों को मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।”

नन्दा ने कहा—गम्भीरता से परिपूर्ण वह स्वर—“किन्तु समाज का विधान, नियम तो मानना ही है वहन।”

“अन्याय भी ?”

उसकी बातों का उत्तर न देकर नन्दा ने कहा—“यदि आज समाज न होता, उसके नियम, विधान न होते तो—उच्छृंखलता, मार-पीट ऐसी बढ़ जाती कि जिसका अन्तिम परिणाम हम मोच भी नहीं सकते। संसार चलता है, समाज चलता है नियम पर, शृंखला पर एला।”

“चुप रहो जीजी। समाज—समाज—समाज। अन्यायी, अन्धा समाज। सब कुछ जानबूझकर भी जो समाज मुँह मोड़ लेवे, अन्धा बन जावे, उसकी तरह स्वार्थी को मैं क्यों मानूँ ? ऐसे एक को समाज कह कर मानने के लिए अन्ततः मैं तैयार नहीं हूँ। चाहे तुम उसके लिए कितनी ही वकालत करो। इन नलिनी देवी ही को लो न।”

“क्यों, उनने क्या किया ?”

“अजी, वे बीमार हैं बीमार। और मेरी ममी रोज उन्हें देखने के लिए जाती है।

“ठीक तो करती है। एक दूसरे का न करे तो कैसे चल सकता है ? विशेषकर बीमारी में।”

“जीजी, पहले यह पूछो कि उन्हें कौन-सी बीमारी है ? क्यों बीमार है।”

नन्दा हँस दी—“पागल लड़की। क्यों बीमार है ? भला यह भी कोई पूछने की बात है। बीमारी क्या कह-सुनकर आया करती है रे ? उन्हें क्या हुआ है ?”

“अब मुझे से न कहलाओ। मैं तो साफ-साफ कहने वाली हूँ। लो सुनो।” एला ने नन्दा के कान में लगकर कुछ कहा। सिहर कर नन्दा हट गई।

कहने लगी एला—“तुम सोच सकती हो जीजी। लेडी डाक्टर को कौन लाई थी ? मेरी ममी। और सब चीजें किस ने जुटाई थी ? मेरी ममी ने।—आया के हाथ गड़्ढा किसने खुदवाया था ? ममी ने—वही ममी, जिनने कि तुम जैसी विदुषी और भली स्त्री से मुझे मिलने के लिए बरज रखा है।”

नन्दा मौन रही आई।

क्रोध से एला का श्वास फूल रहा था। कह चली—“तुम सोचती हो, सहसा एला को क्या हो गया जो मेरे लिए दीवानी रहती है, जो पहले कभी किसी दिन आया करती थी, वह अब प्रायः ही क्यों आती है ? है न यही बात ? तो सुनो। ममी की बातों ने और नलिनी देवी की हरकतों ने मुझे तुम्हारा भक्त बनाया। मजा यह कि वे स्वयं इस बात को न जानती होंगी। अजी, यह सब पाप नहीं तो क्या है ! और अन्धा यह समाज। सचमुच के हत्यारे का साथी नहीं तो क्या है ?”

नन्दा हँसी—खिन्नता में भरी-भरी वह हँसी—“भूल कर रही हो एला। वह पाप जो परदे के अन्दर छिपा हुआ, परदे के अन्दर है न।”

“वाह-वाह, यहाँ तो मजेदार बातें हो रही हैं। किस ने पाप किया भाभी ?”

मनीश को देखकर दोनों चुप हो रही।

“मुझे देखकर चुप क्यों हो गई ? अन्दर चला आऊँ ? या लौट जाऊँ ?”

“आओ मनीश बाबू।”

मनीश कुर्सी खीचकर बैठा... और अपने उसी प्रश्न को दुहराया, "किस पाप की बात कह रही थीं भाभी ।"

नन्दा मुसकराई— "यों ही, कोई विशेष बात नहीं है ।"

"जीजी, छिपा रही है मनीश बाबू, नलिनी देवी की कीर्ति कह रही थी । सुनिष्ठा ? कह रही थी, उन जैमी स्त्री भी आज समाज में देवी बन कर बैठी हुई है ।"

"वह तो बीमार है ।"

"बीमार है ? देखिए, मुझसे मत कहलाइए ।"

"क्यों ? आखिर बात क्या है ?"

"उनकी बीमारी डाक्टरों की समझ में बाहर है । कौन ?"

नन्दा ने शासन के स्वर में कहा— "ऐसी बातें नहीं करें। एला, अपने सत् साहस को ऐसी बातों में उलझाकर बर्बाद नहीं करते । वही समय जब कि हम ऐसी चर्चा करते हैं, उमी समय साहम और विचार को दूसरे कोई अच्छे काम में लगा सकते हैं ।"

विरमय में एला का हृदय भर उठा— यह कैसी नारी है, जिसे कि सब ने अस्पृश्य के रूप में एक ओर टेल रखा है, वही आज उसी संसार के दुराचार को, दुराचारी को लोक नेत्रों के अन्तस्तल में रखने की चेष्टा करे ? सोच उठी एला दूसरे पल और मौनता में वह अपने साथ नन्दा की तुलना करने बैठ गई, हाँ, यदि वह नन्दा के स्थान पर होती तो क्या करती ?

वही करती । वह यह कि दूसरे वास्तविक अपराधों की, व्यभिचारों की सूची बनाती और उन्हें ससार के सामने रखकर पूछती— 'कहो, यह सब क्या है ? समाज की यह कौन-सी सुकीर्ति है ? और भी पूछती— एक नारी दूसरे पुरुष के साथ यदि परिस्थिति में बँधकर मित्र के रूप में रही आवे, तो वह अच्छा है या पर्दे की आड़ में बैठकर व्यभिचार करना अच्छा है ?

अरे हाँ, और तब दूर खड़ी विद्रोही परिहास की हँसी हँसती — सो भी तालियाँ पीट-पीटकर । नही वह सुनन्दा की तरह किसी प्रकार भी दूसरों के व्यभिचारों को छिपाने की चेष्टा न करती, किसी तरह से भी नहीं । और नही ही नीरव, एकाकीपन से अपने ऊपर किया गया निर्वासन सहन करती ।

तो ? तुलना शेषकर सोच उठी एला—तो नन्दा क्या है ? एक उसी की तरह मानवी, उसी-सी नारी ही न ? और सोचते-सोचते कब उसके श्रद्धा से परिपूर्णा चन्दन का पात्र सुनन्दा के पाद मूल में शेष, निःशेष होकर शून्य हो गया, सो वह जान पाई तब । जब कि नन्दा के हृदय में उसका मस्तक अपने आप लोट गया, तब नन्दा एक हाथ से उसे हृदय में समेटे हुई, दूसरे हाथ से मस्तक पर हाथ फेरती हुई कह रही थी—“भावुक लडकी, मेरी एला, रानी एला ।”

तब भी एला गुनगुना रही थी—“जीजी, कैमी अद्भुत हो तुम !”

उच्च स्वर से मनीश हँस पड़ा—“वाह-वाह, श्रीमती रवीन्द्र यह कौन-से नाटक का श्रीगणेश हुआ ?”

“नाटक यानी ?” गिड़गिड़ाई एला ।

उसे चिढ़ते देखकर कदाचित मनीश की परिहास प्रवृत्ति तीव्रतर हुई—“यानी अभी-अभी आप ने जो कुछ किया ?”

“आप—आप, आखिर कह क्या रहे हैं, और किससे ?”

“माननीया श्रीमती रवीन्द्र से पूछ रहा था, अभी जो नाटक का पहला पर्दा उठ चुका है—”

“अभद्र—असभ्य, आप ऐसे हैं ?”

“क्यों, उसे चिढ़ाते ही मनीश बाबू । बस करो ।” नन्दा ने स्नेह-पूर्ण किन्तु एक ऐसे स्वर से कहा, जैसे माता अपनी सन्तान को शासन कर रही हो ।

उसके बाद मनीश धीमा-धीमा हँसता हुआ चुप रह गया । यद्यपि

परिहास उसके कठ के बाहर निकलने के लिए अकुला रहा था ।

एला का क्रोध कुछ शान्त हुआ । नन्दा ने कहा “चलो, हम तीनों जरा घूम आएँ ।”

“चलो ।” अनायास मनीश कह उठा—“यों मेरा सिगार केस भी खाली था, एक डब्बा खरीदना है । चलो चलो ।”

मनीश को खड़े होते देखकर विकृत मुख से एला ने कहा—‘तुम दोनों जाओ, मुझे नहीं जाना ।’

“तो मैं जा रहा हूँ भाभी, उन्हें शायद मेरा संग पसन्द न हो ।”

“अजी ऐसी क्या जल्दी है ? महीना वाद तो आज आए हो, कई माह से आए ही नहीं ।”

“सिगार लेकर अभी आता हूँ ।” मनीश चल दिया ।

“जीजी, आज तुम्हें जाना ही होगा मेरे साथ, चलो तैयार हो लो ।”

“कहाँ जाना है ?”

“मिनेमा । आज मिसेस भटनागर की पहली तमवीर है, तुम नहीं जानती ? पेपर नहीं पढ़ती ? शहर भर में धूम मची हुई है, मिसेस भटनागर जैसी सभ्य, मुशिक्षित, आफीसर की पत्नी का एक्टिंग जनता देखने के लिए पागल हो रही है ।” जरा रुककर बोली—“जीजी, आज मैं भी सिनेस्टार कहला सकती, लेकिन पापा ने किमी तरह जाने नहीं दिया । ममी हर बातों में जोर लगाती है, लेकिन इस बात पर राजी न हुई, यों कि इसके विरोध में है, वरना मैं दावे के साथ कह सकती हूँ—दो दिन में मैं मिसेस भटनागर को ऐसा डिफीट देती कि बम उनसे भागते ही बनता ।”

एक ही श्वास में इतनी बातें कहकर वह नन्दा का मुँह देखने लगी ।

उस मुख में उत्साह वर्द्धक चिह्न तक एला ने नहीं पाया, निराश होकर बोली—“लो, छः बजने में बीस मिनट रह गए हैं, उठो जीजी ।”

इतने पर भी जब मुनन्दा न उठी तब एला भुंभलाई, “तुम्हे चलना है या नहीं ?”

“नहीं ।”

“क्यों ?”

“मुझे सिनेमा पसन्द नहीं ।”

“लेकिन आज तो मैं लेकर ही चलूँगी ।”

“बड़ी जिद्दी है तू एला । जरा हरो, मनीश बाबू को आ जाने दो ।”

विकृत मुख से एला ने कहा—“उनकी हमें कोई जरूरत नहीं ।”

परिस्थिति को हलका और सहज कर नन्दा ने कहा—“किन्तु नहीं, उनकी जरूरत है री पगली ।”

“किसकी भाभी ?” द्वार पर से मनीश ने आवाज़ लगाई, “तुम्हारी ।”

एला खिलखिला कर हंस पड़ी ।

तीनों निकलकर चल दिए । गाड़ी चलती चली जाती ।

नन्दा ने पूछा—“यह दो सीटों की गाड़ी है न ? यह गाड़ियाँ बड़ी भली हुआ करती हैं, बैठकर आराम मिलता है । मुझे तो शेवरलेट, प्लेकार्ड’ फोर्ड आदि गाड़ियाँ जरा भी अच्छी नहीं लगती, न मैं उनपर बैठती ही थी ।”

कह गई नन्दा अनमनी-सी । एला ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया हो, परन्तु मनीश के नेत्रों का विस्मय साकार हो उठा । वह चुपचाप नन्दा को देखने लगा, वैसे ही नन्दा ने पूछा—“यह कार तुम्हारी है न एला ?”

“नहीं, मनी साहब की है ।”

“कब खरीदी मनीश बाबू ?”

उत्तर न पाकर मुनन्दा ने घूम कर मनीश को देखा तो आँखें वही आबद्ध हो रही ।

“क्या बात है मनीश बाबू ?”

“सोच रहा हूँ भाभी, कि तुम पहेली का दरवाजा कब खोलोगी ?”

“ऐसा ?” जरा हँस कर पीछे रखा हुआ बड़ा-सा और सुन्दर एलबम सुनन्दा ने दोनों हाथों से उठा लिया, एलबम गोद में रखकर पूछा, “बहुत सुन्दर एलबम है, किसका है ?”

“चौधरानी जी का है।”—मनीश ने कहा।

“ममी का तो है ही, और आप कैसे उठा लाए ?” एला कौतूहल अनुभव कर रही थी।

“इसके कुछ फोटो एनलार्ज करवाने के लिए उन्होंने दिया है।”

एलबम खोलकर नन्दा देखने लगी। कार भागती चली जाती, एला काँच की खिड़की से बाहर की ओर दृष्टि निवृद्ध किए बैठी थी। सुनन्दा चित्रों में गुम गई थी, और मनीश नन्दा के क्षण-क्षण में मुखभाव के परिवर्तन को आश्चर्य से देख रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि एलबम के फोटो में ऐसी कौन-सी अनहोनी बात है—जो कि नन्दा के मुखभाव को प्रति पल में परिवर्तित करने में सक्षम हो रही है ? कभी स्नेह की छाया मुख पर उभर उठती, कभी परिहास की तो कभी आनन्द, घृणा और अविज्ञान की, कभी विस्मय, भय, क्रुद्धा आदि की। मनीश का मन आतुर हो रहा था—जानने के लिए कि एलबम में चौधरानी के नानाविध पोज के सौ के करीब फोटो हैं, उनमें ऐसी कौनसी विचित्रता है ? परन्तु एला के सामने उसी की माता के फोटो के विषय में आलोचना करने का उसका जी नहीं चाहता।

गाड़ी सिनेमा के द्वार पर रुकी, टिकट घर के सामने भीड़ लगी हुई थी। एला व्यस्तता से उतरी। मनीश ने नन्दा के हाथ से एलबम उठा लिया, कहा—“पहुँच गये हैं भाभी, एलबम रातभर तुम्हारे ही पास रहा आवेगा, देख लेना और कल मुझ से कह देना कि इसमें विचित्रता ऐसी कौन-सी पाई—जिससे कि तुम खोई हुई थी एलबम में ? अब चलो।”

[१६]

रात्रि गंभीरता में उतर रही थी, बिछुड़ते हुए पलां की याद दीर्घस्वास की आह में समाकर चुम्बक बन गया था, उस चुम्बक के चहुँ ओर अमा-बस्या का अन्धकार जमा चला जाता, अन्धकार, अन्धकार के स्तर, अन्धकार के ऊँचे-ऊँचे ऊबड़-खाबड़ पर्वत । महल, अट्टालिका के दीप निर्वापित हो चुके थे । उस अन्धकार में वे हिमालय पर्वत से प्रतिभान होते । पथ के पोस्ट लाइटों का उज्ज्वल प्रकाश, जैसे पथ पर पड़ कर धूली पर सो रहा हो, किन्तु सुनन्दा के द्वितल गृह का दीप तब भी अन्धकार को ठेल-ठेल कर बाहर फेंक-सा रहा था ।

ध्यान मग्न तपस्विनी की नाई कुर्सी पर बैठी हुई सुनन्दा, टेबिल पर खुला रखा एलबम । वही उस चौधरानी के नानाविध पोज युक्त एलबम, पचासों फोटो ।

देख रही थी उन फोटों को । नेत्रों के पलक कभी उन्हीं आखों में अकड़ जाते, कभी लज्जा से झुकते । नम्बर एक फोटो—दुवनी, पतली सुन्दर युवती, स्वर्ण स्वप्न-सी रंगीन वे आँखे, मोती की भालर युक्त सोने की टिकली माथे पर । कदाचित्त चौधरानी के विवाह के समय का फोटो रहा हो । अनुराग किन्तु लज्जा से झुकती हुई दृष्टि ।

मुसकरा कर नन्दा ने एलबम का पन्ना उलटा । सामने आया दूसरा, तीसरा फोटो, गृहिणीत्व, पत्नीत्व की उस गंभीर दायित्व पूर्ण आकृति को देख कर सुनन्दा प्रभावित हो उठी । आया सामने—रसमय यौवन का छलकता हुआ कलस, सो ऐसा—जैसे कलस का रस केवल उसी कलस में रहकर पूर्णतः तृप्त नहीं हो रहा है, अपने चहुँ ओर रस-कणों को छिटका कर, फैला कर परितृप्त होना चाह रहा है ।

मुसकराई नन्दा, बोली गुनगुना कर—“शायद तब एला गर्भ में रही हो, बस एला ही तो हुई है मौसी के ।

एलबम का पन्ना उलटा और उस पर झुक पड़ी सनन्दा, देखने लगी फोटो को—भूली-सी, विसरी-सी, उन चित्रों में खोई-सी। माँ—माता, जननी, माँ हो सकने के गर्व से, तृप्तता से परिपूर्ण चौधरानी की यह आकृति।—मन ही मन फोटो का निष्कर्ष निकालती चली सुनन्दा—इन नेत्रों की दृष्टि में समार-पूज्य मातृप्रेम स्पष्ट है।—और तब अकुला कर देखने लगी सुनन्दा। देखते-देखते न जाने क्यों नन्दा का हृदय हाहाकार से भर उठा। उस हाहाकार में जाने क्या-क्या प्रश्न उठने और मिटने लगे—इस फोटो की नारी, जिसके कि प्रत्येक अंग-प्रत्यंग माँ बन सकने की सार्थकता से, परितृप्तता में भर उठे है, जिसके अधर की मुमकराहट में गर्व की रेखा अंकित है, जिसकी आँखों की दृष्टि स्नेह से सिक्त है, तो इस नारी ने ऐसी कौन-सी सुकृति की थी, जिसमें कि संसार के गौरवान्वित, श्रेष्ठ मानृत्व के मिहासन पर आरूढ़ हो सकी ?

और वह ? स्वयं वह ? नन्दा की चिन्ता बढ चली—चौधरानी की तरह ही रक्त-मास, मन, हृदय और अनुभूति युक्त नारी वह ! उसने ऐसी कौन-सी दुष्कृति की थी ? हाँ कौन-सी कमी है उसमें, जिससे कि उसका शुद्ध, सुन्दर मातृत्व अभिशप्त कर दिया गया ? आज तो उसका भी नारीत्व मानृत्व की चरम सीमा को पहुँच कर सार्थक, चरितार्थ हो सकता था न। किस पाप का यह दण्ड दिया गया उसे ? इसके सहज सिद्ध अधिकार, नारी का अपना वह अधिकार तथा मातृत्व को उससे जबरन छीन कर पृथ्वी की आवर्जना में फेंक दिया गया। परन्तु क्यों ?

और शपथ पूर्वक कौन कह सकता है कि उसके गर्भ से एक दिन राम, लक्ष्मण, कृष्ण, अर्जुन, विवेकानन्द या गाँधी, रवीन्द्र, सुभाष आदि जन्म नहीं ले सकते थे ? सो यह भी कौन दृढ़ स्वर से कह सकता है कि स्वाधीन भारत के इस नव-राष्ट्र-निर्माण के इस नवीन युग में अपनी उस सन्तान की संसार को भेंट देकर वह नारी, माँ अपने मातृत्व को सार्थक नहीं कर सकती थी ?

नन्दा सोचती चली जाती—न आगे-पीछे देखती, न सामने देखती । उसका, विचार आगे बढ़ता चला जाता, मन की भावना, कल्पना, वह निजि विचार—क्यों क्योँ, उसके शुद्ध सुन्दर मातृत्व को उससे छीन कर, शतछिन्न कर धूल में फेंक दिया गया ? जबरन ही उसके मातृत्व को चुरमुराकर तोड़ कर पदनिम्न में मथित कर दिया गया ?—

सुनन्दा का जी सोचते-सोचते जाने कैसा होने लगा, शरीर की नसें तन गईं, ज्वालामुखी की ज्वाला आंखों में समा गई । ओष्ठाधर फड़कने लगे और शरीर के रक्त में मानो चीटियाँ चलने लगीं । मानो मातृत्व की तृष्णा से उसका यौवन शरीर को त्याग कर बाहर आने के लिए युद्ध की घोषणा कर बैठा ।

घड़ी टनटनाई—एक-दो । नन्दा ने सहम कर हाथों से वालों को समेटा, पास में रखी हुई सुराही से गिलास में पानी ढाल कर पिया और पुनः गिलास भर कर पानी मुँह से लगाया ।

आकण्ठ तृष्णा से उमका कण्ठ सूख कर फटा-सा जा रहा था । मां ! मां, माता, जननी बनने ही के लिए तो वह संसार में आई थी न । आदिम सत्यों में का एक ध्रुव सत्य ही तो है न नारी का मातृत्व ।

तो माँ बन सकने के प्रथम मुहूर्त में ही कैसे छिन गया उसका वह मातृत्व ? किस पाताल के अतल में छिपा दिया गया चिर दिन के लिए उसका मातृत्व ?

बाल्य-खेल के घरौदे में, गुड़ियों के खेल में, पुतली को गोद में सुलाकर उमें प्रेम-स्नेह से थपकियां देती हुई उस बालिका के मन के प्राण ने जिस मातृत्व को खोज निकाला था । सहसा ही जन्म हो गया था, घरौदे में गुड़ियों के बीच बैठी बालिका के हृदय में जिस मातृत्व का, माँ और जननी का, उस मातृत्व को नहीं वरन् पत्नी के गौरव में बसी वह युवती, उसके अंक से वैसे एक मातृत्व को छीन लेना, यह किस न्याय के अनुसार हो सका ?

सोचते हुई चौंकर नन्दा ने एक समय एलबम का पन्ना उलटा तब ? प्रसाधन-प्रियता का आकर्षण फोटो में बढ़ता चला जाता । नन्दा पन्ने पलटती जाती, तीस, पैतीस, चालीस । फोटो की संख्या शेष न होती, क्रमशः दुबली, पतली युवती के स्थान पर स्थूलांगी, प्रौढ़ा उपस्थित होती और प्रौढ़ा के आंठों का लिपिस्टिक गाढ़ वर्ण होता, आंखों के काजल की लकीर दीर्घतर होती । साज-शृंगार बढ़ता ।

पन्ने पलटती जाती नन्दा । आती इस बार गले तक कटे हुए बाल (वावहू) वाली प्रौढ़ नारी, जिसके प्रत्येक शिथिल अंग को कस-कसाकर यौवन की उमंग—स्फुर्लिंग भर देने के लिए दीर्घ किन्तु व्यर्थ प्रयास किया गया है । रंग विरंग की साड़ियाँ, कपोलों पर गुलाबीपन बढ़ता चला जाता, साड़ियों के हलके रंग के स्थान पर गाढ़े रंग होते ।

नन्दा देखती आखें गड़ाकर । देखती वह प्रौढ़ के उस अद्भुत मनःवृत्ति को, मनके उस विचित्र विकास को, देखती उन आंखों को । पाठ करना चाहती आंखों की भाषा को । देखती हुई सुनन्दा के नेत्र पलकहीन, विस्फारित हो रहे । घृणा की रेखा आंठों पर अंकित हुई, आतंक की छाया व्याप्त हुई मुख पर ।

सो फोटो को देखती ही रह जाती नन्दा । नारी-मन के उस अपरिचित किन्तु अद्भुत मनःवृत्ति के आमने-सामने खड़ी वह अपना परिचय नहीं, किन्तु परिचित होना चाहती । एलबम के पन्ने उलटना नन्दा भूल जाती । मानो एक विराट् विस्मय से उसका प्रथम बार ही परिचय हो रहा हो ।

“इस फोटो में ऐसी कौन-सी अद्भुत बात है नन्दा ?” देर से पीछे खड़ा सुप्रकाश सुनन्दा का भाव-विपर्यय देख रहा था । विस्मय, कौतुक से अन्त में वह पूछ ही बैठा ।

“नारी की एक विचित्र प्रवृत्ति ।”—कहा, नन्दा ने, इस तरह जैसे स्वयं अपने को सुना रही हो, किसी दूसरे को नहीं ।

“प्रवृत्ति ? और नारी की ?”

“हेय और अप्रशंसनीय वृत्ति ।”

“क्या कह रही हो नन्दा ?” क्रमशः प्रकाश विस्मित हो रहा था ।

“प्रौढ़त्व की दुर्बलता, हाँ, प्रौढ़त्व का भीख माँगना गत यौवन से । और हाहाकार का शव, उस गये—गुजरे जीवन के लिए ।” और फिर अँगुली निर्देश द्वारा कहने लगी नन्दा—“यह कटे हुए बाल, अपने को बीस वर्ष की आयु में लाने की चेष्टा, आँखों में खिंची हुई काजल रेखा, ललाट पर लम्बी, लाल और अवरख लगी बिन्दी, पतले जार्जट का ब्लाउज, आवरण हीन वक्षस्थल । नेत्रों की दृष्टि में यौवन की मादकता भर सकने का व्यर्थ प्रयास,—और—”

“नन्दा, नन्दा, ओ सुनन्दा ।”—उसे झकझोर कर सुप्रकाश पुकारने लगा—“तुम प्रकृतिस्थ तो हो न नन्दा ?”

नन्दा जैसे सोते से जागी । शायद इतनी देर के बाद उसने सुप्रकाश को देखा, पहचाना । सहमी । खांस कर गले के आवद्ध स्वर को साफ कर कहा—“तुम ? अभी तक सोए नहीं ?”

“बहुत देर से यहाँ खड़ा-खड़ा तुम्हें और एलबम को देख रहा हूँ । तुम इन फोटों में ऐसी खो गई कि मेरा यहाँ खड़ा होना जान तक न सकी; यह सब चौधरानी जी के फोटो हैं न !?”

घड़ी ने भोर के चार की घंटी बजा दी । नन्दा न एलबम बन्द किया । उठकर खड़ी हो गई ।

“चार बज गए । जाओ सो रहो ।”

[१७]

पथ पर लाउडस्पीकर चिल्लाता जा रहा था—“आज छः बजे शाम को

न्युथिएट्रस में—‘मदन मंजरी मे’ श्रीमती एलादेवी का मन-मुग्धकारी अभिनय देखिए।” भात की माँड़ पसाती हुई मुनन्दा स्तब्ध तो रही। असावधानी से गरम माँड़ हाथ पर गिरी, यन्त्रणा से अस्फुट ध्वनि मुह से निकली। अपने आप हाथ उसका ग्विच आया, सारा भात जमीन पर गिर गया।

सो वैसे ही बैठी रही नन्दा—विमूढ, विमर्ष, स्तब्ध,—यद्यपि सिनेमा में एला का योग देना नन्दा के निकट विस्मयकर वार्ता नहीं थी। यह तो जानी हुई बात रही कि एक दिन वह एला लड़की सिनेमा स्टार बनकर ही रहेगी, सो ठीक है, किन्तु तो भी जाने क्यों नन्दा को उस वार्ता ने विमर्ष कर दिया। एकदम उदास, सोचने लगी वह—यही कारण था जो प्रायः दो-ढाई महीने से एला नहीं आई।

सुप्रकाश ने दरवाजे से भौंककर कहा—“कितनी देर है ? आज मुझे जरा पहले स्कूल जाना है।”—कहते-कहते वह चौके में पहुँचा, एवं आश्चर्य से नन्दा की उस स्थिति को निहारता हुआ बोला—“तुम्हें क्या हो गया है मुनन्दा।”

चौककर नन्दा ने गिरे हुए भात के प्रति देखा; और देखा चूल्हे पर चढ़ी हुई कढ़ाई को, तरकारी जल चुकी थी। जल्दी से वह उठी।

“क्या तबियत खराब है ?” प्रकाश का विस्मय बढ़ रहा था।

“नहीं तो।”

यद्यपि नन्दा ने कहा “नहीं तो।”—तो भी उसके मुख को, उस दृष्टि को देखकर प्रकाश सिहरा, पूछा—“क्या बात है ?”

“बात यों कुछ भी नहीं। एला सिनेमा में क्यों गई, वही सोच रही थी।”

और दीवाल पर टँगी हुई छोटी-सी कढ़ाई उातरकर चूल्हे पर चढ़ाई, उसमें घी डालकर आटा निकाल कर सानती हुई बोली—“आसन पर बैठ जाओ, भात तो गिर गया, जल्दी से तुम्हें पूरी बनाए

देती हूँ, कुमड़े की तरकारी बन चुकी है, दही है, किसी तरह चल जाएगा।”

आसन पर बैठकर प्रकाश ने कहा—“सिनेमा में एक्टिंग करना क्या कोई बुरी बात है ? मैं तो बहुत दिनों से जानता था और मैंने तो सोचा था, एला के साथ तुम भी कहीं सिनेमा स्टार न बन जाओ।”

सुनन्दा ने केवल लौटकर सुप्रकाश को देखा, अद्भुत वह दृष्टि, विचित्र वह मुख-भाव। जिस मुख-भाव को देख सकने के बाद और कुछ कहने का साहस सुप्रकाश को नहीं हो सका।

“तो तुमने सोच लिया था मैं भी जा रही हूँ ?”—सहज स्वर से नन्दा कहने लगी—“इस बात पर मैंने अब तक सोचा नहीं यानी सिनेमा में जाने के लिए। अब सोचूँगी।”

परम उत्साह से प्रकाश बोला, “जरूर सोचो, जाने कितनी भद्र, शिक्षित स्त्रियाँ सिनेमा में उतर रही हैं।”

अपने प्रति प्रकाश का स्पष्ट इंगित सुनन्दा नहीं समझी हो, ऐसा नहीं, एवं उसे किसी का सहारा देकर प्रकाश उसके दायित्व से मुक्त होना चाहता है, यह बात नन्दा ने उसी समय जानी हो—एक नवीन ढंग से, ऐसा भी नहीं, इस बात को वह बहुत पहले से समझ सकी थी, किन्तु सब कुछ सुस्पष्ट जान, समझकर भी सुनन्दा ने जैसे उस विषय को जबरन दबा देना चाहा। उस चर्चा से जाने क्यों उसका व्यक्तित्व संकुचित होता।

कहा उसने—साफ-सुथरी वह आवाज—“बड़े सरल मन की लड़की है एला।”

चुपचाप भोजन शेषकर प्रकाश उठा। और हठात् उसने पूछा—“आज एला का एक्टिंग देखने जा रही हो न ?”

“मैं ? क्या तुम जा रहे हो ?”

“अजी, हम स्कूल मास्टर्स को घूमने, फिरने, सिनेमा देखने का

वक्त कहाँ ? स्कूल की छुट्टी हुई तो ढेर-सी कापियाँ जाँचो, सात-आठ बजे रात को कहीं फुरसत मिलती है। तुम तो इन दिनों जाती रहती हो, और तुम्हें ले जाने वाले भी बहुत हैं।”

“हूँ।” कहकर नन्दा चुप हो गई। इन दिनों मुप्रकाश की बातें जाने कैंसी टेढ़ी-मेढ़ी हुआ करती थीं और जिसे समझ सकने के बाद उत्तर-प्रत्युत्तर के लिए नन्दा की जरा भी इच्छा नहीं होती।

कभी निराले में वह सोचती— जब दस बार वह मुप्रकाश से कह चुकी कि वह जा सकता है विवाह करने के लिए, जा ही सकता है। अपने आप के लिए वह अकेली यथेष्ट है। कह दिया उसने कि— तुम जाओ, जाओ, ऐ मेरे जीवनदाता, आश्रयदाता, बन्धु, तुम्हारा ऋण अपरिमेय है, मेरे निकट ऐसा कुछ देय नहीं है, जिससे कि उस ऋण को चुका सकूँ। एक वस्तु मात्र अब भी अवशिष्ट है, वह है उसका मन, उसी मन की पुकार है मुवित, तो नन्दा हास्य मुख से तुम्हें इस बन्धन से मुवित दे चुकी है। तब बार-बार यह विडम्बना क्यों ? वात-वात में उसे बिद्ध करनेकी चेष्टा क्यों ? द्वार बन्दकर उसने तुम्हें बन्दी करने की चेष्टा तो कभी नहीं की थी। बहुत पहले से द्वार खुला पड़ा हुआ है। उस मुक्तद्वार से हे पथिक ! तुम चले भी क्यों नहीं जाते ?

सो पथ के पथिक कब किसके हुए हैं ? नीलगिरि के नीलाचल-सा मोह-जड़ित यह प्रशस्त राज-पथ। उस पथ पर चलते हुए करोड़ों पथिक, उनके नानारूप वर्ण युक्त विचित्र पद-ध्वनि, विरामहीन वह ध्वनि पथ के धूलकण पर, नित्य भङ्कृत हुआ करती है। उस ध्वनि की गुंजना कब किसकी अपनी हुई है ? और उसने तो कभी भी उस ध्वनि की गुंजना को अपने कीणा के तार में भरकर नही रखना चाहा था। तो फिर भी यह विडम्बना क्यों ? हे मेरे मित्र, बन्धु तब तुम चले ही क्यों नहीं जाते ? पथ पर विचित्र वर्ण के पैरों की छाप, वे छापें कब किसने चिरदिन के लिए संजो कर रखी हैं ?

इस क्षण-भंगुर संसार में कब किसने पथिक की बजाई हुई बाँसुरी की तान को अपने मन की सत्ता में संजो कर रख पाया है ? तो मेरे बान्धव, चलने की बेला यह परिहास कैसा ? लौट-लौटकर रुकने का यह बहाना भी कैसा ?

चलते-चलते प्रकाश ने पूछा—“मेरा नोटबुक कहाँ रखा है ? कल भी नहीं मिला ।”

नन्दा जैसे नींद से जागी, कढ़ाई का घी कटोरी में ढालती हुई बोली— “कोट के पाकेट में रखा होगा ।”

प्रकाश निकाल कर चल दिया ।

नन्दा ने चौका साफ किया । बासन नल के नीचे रखे । बची हुई पूरियों को उठाकर रख दिया । उसे भोजन की जरा भी हचि नहीं थी ।

उस दिन सैकेन्ड शो से जब मुनन्दा घर लौटी, तब रात्रि का एक बज चुका था । बाहर के दरवाजे की जंजीर को नन्दा ने बहुतेरा हिलाया, पुकारा, परन्तु दरवाजा बन्द ही रहा आया । तब वह चुपचाप बन्द द्वार के बाहर सीढ़ी पर बैठ गई । मनीश उसे दरवाजे पर उतारकर चला गया था ।

चहुँ ओर का अन्धकार नन्दा की गोद में सिमट कर एक भग्न स्तूप-सा बन गया ।

गली के उस पार कोई मद्यप प्रलाप-सा बक उठा—“मादिका भरदे प्याली बार बार ।” वह विकृत स्वर से वीभत्स गान गाता हुआ उसी ओर आने लगा । नन्दा सिकुड़कर द्वार से चिपटकर बैठ गई ।

वेसुरा सगीत निकटतर होने लगा । नन्दा उठी, और अपने वस्त्र को सँभालकर खड़ी हो गई । गिरता-पड़ता व्यक्ति पँचा । नन्दा का शरीर विद्युत् स्पर्श की भाँति एकदम भूनभूनाकर फिर स्थिर हो गया । वह दाँतों तले ओंठ दबाकर खड़ी रही आई । दूर के पास्ट लाइट से

उजेला आकर कुछ स्थान तक पड़ रहा था। उसके निकटतर हुआ शराबी और दीवाल पकड़कर भूमने लगा।

विकृत स्वर से पूछा—‘एँ, तुम अब तक मेरे लिए बैठी हो?’

“जाओ, सीधे चल जाओ। जा—ओ।”

“अरे बापरे।” कहता हुआ वह उसी भाँति गिरता-पड़ता चल दिया।

गली के दूसरे मोड़पर पहरेदार ने सीटी बजाई। नन्दा सिंहरी—हाँ अब यह दूसरा संकट उपस्थित है। उस अन्धकार में शायद उसके मुख पर भय की छाया एक बार झलक उठी हो। किन्तु तुरन्त वह साहस के साथ मुमकराई और द्वार में मस्तक टिकाकर बैठ गई।

रात्रि बढ़नी चली जाती, और उस नीरव रात्रि की नीरव साथिन के रूप में जागती हुई बैठी रही आई मुनन्दा।

रात कट गई; और यह भोर का प्रकाश? चकित नन्दा ने आँखें खोली। प्रकाश फैल रहा था, गंगा-स्नानार्थी चले जा रहे थे। हाँ, इस सबरे के प्रकाश के साथ उसे निबटारा करना बाकी है। पचासों जिज्ञामु नेत्रों की जिज्ञासा से उसे मुलभना है। यह है कठिन परीक्षा। नन्दा के सरल ओष्ठाधर पर कठोरता की छाया दृढ़ हुई: मस्तक पर पल्ला ढाँककर वह चुपचाप बठी रही आई। स्नानार्थियों की विस्मित दृष्टि उसपर आवद्ध हुई या नहीं, इन बातों को जाँचने की, देखने की प्रवृत्ति नन्दा में तब बिल्कुल ही नहीं थी। वह दूसरी गली की ओर आँखें गडाकर बैठी रही।

मुहल्ले की नौकरानियाँ हल्ला करती हुई निकलीं, कोई पूछ उठी—
“तुम किसके घर की बहू हो बाई?”

नन्दा ने कोई उत्तर न दिया।

उसने पुनः पूछा—“यहाँ क्यों बैठी हो बाई?”

इस बार भी उत्तर न पाकर दासी ने अपनी सहचरी की ओर ताका,

तब उस सहचरी का कथन सहज ही सुनन्दा के कानों तक पहुँच गया, “देखती नहीं, रातभर घूमकर लौटी है।”

दासियों का भुण्ड आगे बढ़ा। तब ग्वाले निकले, नन्दा ने उस ओर से मुँह फेर लिया।

परन्तु उसके मुँह फेरने से उम स्नानार्थिनी वृद्धा ने नहीं माना, निकट पहुँची, पूछा— “तुम किसके घर की बहू हो बेटी ?”

उत्तर न पाकर वह कहने लगी— “देखने से तो भले घर की बहू-बेटी-सी लगती हो, जवान, सुन्दर लड़की। लेकिन बन्द दरवाजे पर ऐसे सबेरे क्यों बैठी हो ?”

इस बार भी उत्तर न पाकर वृद्धा चिढ़ी, “घर से भाग आई हो क्या ?”

वृद्धा के प्रश्न से पथचारीगण आकृष्ट हो आए। सुनन्दा ने आँखें उठाकर देखा, हाँ, भीड़ ही तो लग रही है, और इन सब की दर्शनीय है— वह स्वयं। वैसी स्थिति में भी नन्दा को हँसी आ गई। कहा— “मैं सिनेमा स्टार हूँ, आप लोग अपना-अपना काम देखिए।”

और नन्दा ने हर्ष के साथ देखा—दूसरे पल भीड़ हट गई। गली नीरव हो रही।

तब उसके घर की दासी पहुँची। बन्द दरवाजे पर गृहस्वामिनी को बैठे देखकर वह शायद अति शीघ्र अपने निष्कर्ष पर पहुँच गई। कहा— “आप यहाँ क्यों बैठी है बहू जी ? बाबू जी ने निकालकर दरवाजा बन्द कर दिया है ? किसके घर भगड़ा नहीं होता ? ऐसा हुआ ही करता है।”

द्वार खुला। किसी ओर देखे बिना नन्दा भीतर पहुँची।

स्नान कर सुनन्दा बालों को पोंछ रही थी। सुप्रकाश पहुँचा, कहा— “आज इसी दस बजे की गाड़ी से मैं घर जा रहा हूँ। तुम्हें तकलीफ करने की जरूरत नहीं, अपना सामान मैं बाँध चुका हूँ।”

नन्दा को नीरवता से बालों को पोंछते देखकर सुप्रकाश विद्रोही स्वर से कह उठा—“अपना रास्ता तुमने स्वयं अच्छी तरह चुन लिया है। इस बार के सीन पर मनीश आवेगा और.....।”

“बस,” कड़ककर नन्दा ने कहा—“बस”।

और उस ‘बस’ के निकट सुप्रकाश का परिहास कोड़ा खाया हुआ, अपराधी की भाँति एक दम सिमटकर दब रहा। वह वैसे ही खड़ा रह गया।

नन्दा ने बालों को पोछा, माँग में सिन्दूर भरा, ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी लगाई फिर उसके सामने आकर बोली—“व्या तुम कह सकते हो, तुम्हें जाने से और विवाह करने से मैंने कब रोका था ? फिर इस भूठ का आश्रय लेकर अपने आप को छोटा क्यों बना रहे हो ? एक मित्र के नाते, महत के नाते मेरे मन में तुम्हारे लिए थोड़ी-सी जगह बचने दो। तुम्हारा अब चला जाना ही उचित है। इससे ज्यादा अबनति तुम्हारी और मैं नहीं देखना चाहती। सब कुछ मिथ्या है, जानकर भी एक नारी को रात भर पथ पर बैठाकर रखना, यह किस अबनति का पूर्वाभास है, सो तुम जितना समझ सकते हो, उतना ही मैं भी। जाओ, तुम्हारा जाना ही ठीक है, यदि आज तुम तैयार न भी होते तो मैं तुम्हें तैयार करा देती। किसी बहाने से भी अब तुम्हारा यहा रहना नहीं हो सकता है। जाओ, आज तुम्हें जाना ही पड़ेगा। जाओ, तुम जाओ, तुम्हारा यह जाना हमारे और तुम्हारे लिए अब भी शुभ है। अब भी शायद तुम्हारे महत्व के लिए मेरे मन में श्रद्धा बच रही हो।” उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही नन्दा वहाँ से चल दी।

स्तब्ध, मिट्टी का गुड़ा-सा सुप्रकाश खड़ा रह गया। और शायद खड़ा ही रह जाता यदि सुनन्दा द्वार पर से पुकार कर ताँगा आने की तथा उस पर उसके सामान के रखे जाने की खबर न देती।

प्रकाश को तांगे पर बिठाकर सुनन्दा द्वार पर खड़ी रह गई । कहा—“देखो, टिफिनकेरियर अपने साथ रखना, वरना भूखा रहना पड़ेगा । पूरी, मिठाई आदि सब उसमें है ।”

दूसरी और मुंह फेरे हुए सुप्रकाश गाड़ी पर यों बैठा कि जैसे द्वार पर खड़ी नारी के प्रति देखने तक का साहस उसमें नहीं है । सामान का तांगा पहले और प्रकाश का तागा पीछे चल पड़ा ।

नन्दा खड़ी-खड़ी देखती रही, और उस सूने रास्ते पर आँखें पसारे हुई खड़ी ही रही । तांगे की घरघराहट धीरे-धीरे उसके अणु-परमाणु में व्याप्त हो गई । वह वैसे ही खड़ी रही—खुले हुए द्वार पर एक विराट् शून्यता लिए, उसकी शिरा-उपशिराएँ क्रमशः जैसे उस महाशून्यता में शून्य, अवश, मूर्छातुर हो रही । बोध-शक्ति पर सूना और निरालापन व्याप गया । और उसके मन की स्फूर्ति को मानो उस शून्यता ने निगलकर तृप्ति का उद्धार लिया ।

सूना-सूना विराट् एकाकीपन, एक अकेली रात की साधिन, एक अकेली वह । एक विराट् विश्व, विपुल उसके जीव-जन्तु, कपोत से लेकर मनुष्य तक के प्रत्येक के एक जोड़े । और उन जोड़ों में बिछुड़ी हुई एक अकेली वह नारी, सुनन्दा—युवती, सुन्दरी सुनन्दा, एकाकी एक नारी, एक महाशून्यता, उस शून्यता में खड़ी-खड़ी कब सुनन्दा आकार हीन शून्य हो रही, आकार विहीन, सत्ता विहीन मात्र, शून्य ! सो वह पहरेदार की सतर्क आवाज से जान सकी ।

चकित नन्दा सँभलकर खड़ी हो गई । मन उसका उस शून्यता को सँजो-सँभालकर बोल उठा—सब भूटा है, सब भूटा । कौन कब किसका साथी, कौन किसका कब अपना हुआ है ? जीवन ? वही तो एक महा-शून्य है न जो कि उसी शून्यता से उत्पन्न, उसी शून्यता में आकर्षित हुआ एकाकार हो जाता है । न उसका कोई रूप है, न रंग, न जाति है, न आयु, ऐसा एक रूप, रस, गन्धहीन जीवन, शून्य, वह निराकार शून्य ।

वैसा जीवन का साथी, इष्ट मित्र और जोड़ा भी कैसा ? एकाकी एक नारी ने जन्म लिया था, किसी दिन इस धरती पर। और अकेली एक दिन इसी धरती पर वह आराम से सो रहेगी। फिर शून्यता का मोल भी कहाँ ?

‘मिथ्या का मोह जाल,’ नन्दा के अन्तःकरण में कोई कह उठा— मिथ्या है, सब भूटा, एक बार रास्ते की ओर देखा—अजगर की तरह टेढ़ा-मेढ़ा पथ सूना पड़ा सो रहा था। देखा पोस्ट लाइट के प्रति। जलता हुआ दीप जैसे थकान से ऊब रहा हो। देखा उमने अपने अन्तर के प्रति, ताँगे की घर-घर ध्वनि की ध्वनि में अन्तःकरण का श्वास झनझना रहा हो। ओंठों तले दाँत दबाकर मुनन्दा ने अपने को नियन्त्रित किया और भीतर चली गई। द्वार खुला ही पड़ा रह गया— जैसे बिल्लुड़े हुए के आने की प्रतीक्षा को अपने खुले पल्लो पर अंकित किए।

[१८]

मुनन्दा अस्वस्थ थी और वह अस्वस्थता कदाचित् उसके जीवन में प्रथम बार ही रही हो। खुले द्वार के प्रति पड़ी-पड़ी निहार रही थी वह, मन उसका सूना था—एकदम सूना, जाने कितने ही दिनों से इस एकाकी नीरवता में रहने-रहते उसके गले का स्वर भी जैसे मरनमुख हो रहा था।

नन्दा सोच रही थी—सबने यदि उसे त्याग दिया तो त्यागा करें, किन्तु एला एवं मनीश ने तो उसे अपना लिया था न, एकदम निकटस्थ होकर।

प्रश्न उठा—क्या उन दोनों ने वास्तविक ही अपनाया ? यदि

अपना ही लिया था तो बिना कारण त्याग भी कैसे दिया ? त्याग ? त्वागना ! नहीं तो क्या ? प्रकाश के जाने के बाद मनीश आया ही नहीं, और एला भी नहीं आती ।

नन्दा उठकर बैठ गई, यह कैसी नीरवता है ? लगा उसे, वह निरन्ध्र नीरवता उसके मन की स्वाभाविक स्फूर्ति, गति को पल-पल में द्रुत-प्रास कर रही है । घर के चहुँ ओर उसने आँखें फाड़-फाड़कर देखा, यह कंसा विराट् एकाकीपन है ? नीरव, नीरवता, विराट् एकाकीपन । सो तब लगने लगा उसे, इस गृह के अणु-अणु में जो भीषण नीरवता व्यापी हुई है—वही वह नीरवता उसे द्रुत-प्रास करती चली जा रही है । बीमारी कहाँ और कैसी ? यह तो एकाकीपन की गहरी आह है ।

जाने कितने दिनों से उसने मनुष्य को देखा नहीं, नन्दा के मन में जाने कैसी अस्वच्छन्दता होने लगी । वह खटिया पकड़कर उठी । किसी तरह दीवार के सहारे से ड्रेसिंग टेबिल के वृहत दर्पण के सामने पहुँची । दर्पण में तब रग्ग किन्तु अपूर्व सुन्दरी नारी की आकृति अंकित हो चुकी थी । छाया-छाया—मनुष्य की छाया, उसके अन्तर प्रदेश में आवाज उठी । उसकी छाया है ? हुआ करे, है वह मनुष्य ही की छाया न ।

आग्रह-आकुलता से वह दर्पण में अंकित नारी की छाया को देखने लगी । ऐसे कि मानो कोई अमूल्य निधि मिल गई हो । इससे पहले शायद ही नन्दा ने अपने प्रतिविम्ब को इस तन्मयता, मुग्धता से देखा हो । शायद ही इतनी देर तक देखा हो । और फिर एक समय उसकी रुद्ध आवाज बाहर निकल पड़ी,—“क्या ?” अस्वाभाविक वह स्वर—क्या ? अपने ही स्वर से नन्दा भीत हुई, चकित हुई, शरीर काँप उठा, और तब नन्दा गिरने लगी । पीछे से दो कोमल बाँहों ने उसके पतनोन्मुख शरीर को पकड़ लिया ।

नष्ट नीड़

“जीजी, ओ जीजी !” नन्दा को अपनी गोद में जमीन पर सुलाया और उसके मुँह के निकट झुककर पुकारने लगी—

“जीजी, ओ जीजी ।”

नन्दा ने एक बार आँखें खोलीं, पुनः बन्द कर लीं । अकुलाकर एला चहुँ ओर देखने लगी—क्या करे वह ? नन्दा की दशा देखकर एला एकदम घबरा गई । नन्दा का मस्तक जमीन पर रखकर वह सीढ़ियों की तरफ भागी—हाँ, स्वयं वह डाक्टर बुला लाएगी, या फिर पास-पड़ोस के घर से मनीश को फोन कर देवेगी ।

एला क्रमशः अपरिचित तीन घरों में पहुँची । किसी गृह-स्वामिनी ने समालोचक दृष्टि से उसे घूरा, किसी ने अवहेलना से और किसी ने भद्रभाव से ही उससे कह दिया—“मेरे घर फोन नहीं है । बहन, आप मल्लिक जी के घर जाइए, इस मुहल्ले में और कहीं फोन नहीं है । मल्लिक जी का घर ? रास्ते के उस पार नाला, सबसे बड़ा मकान है, वही है ।”

एक प्रकार दौड़ती हुई एला मल्लिक के घर पहुँची । और मनीश के घर फोन किया । फोन पकड़ा स्वयं श्रीनाथ ने । वहाँ से भागकर एला पुनः सुनन्दा के निकट पहुँची । वह एक ही प्रकार बेसुध पड़ी हुई थी ।

सीढ़ी पर जूनों के शब्द से एला ने उतावली से चिल्लाकर कहा—
“जल्दी आइए मनीश बाबू, इनकी हालत खराब है ।”

अकेला मनीश नहीं, श्रीनाथ भी साथ से । वे दोनों नन्दा के बोधहीन, शव जैसी वर्णहीन आकृति को देखकर सिहरे ।

“क्या भाभी बीमार थीं श्रीमती रवीन्द्र ?”

“बीमार ही रही होगी, देखिए न कितनी कमजोर हो गई हैं । कई महीनों के बाद आज जीजी के पास पहुँच पाई हूँ ।”

श्रीनाथ बच्चाहत से खड़े रह गए ।

“दादा जी, जीजी की नब्ज तो देखिए ।”

श्रीनाथ के वक्षस्थल को चीरकर सहसा गम्भीर दीर्घश्वास निकल पड़ा ! नब्ज देखी । “बहुत ही कमजोर हो गई है लक्ष्मी, उस पर तेज बुखार चढा हुआ है । कमजोरी से गश आ गया होगा ।”

मनीश ने अपनी सबल बाहों से नन्दा को उठाकर पलंग पर सुलाया ।

“कहाँ गया सुप्रकाश ऐसी दशा में, उन्हें छुट्टी लेनी थी । अगर न लेते तो अन्ततः हम लोगों को भाभी की बीमारी की खबर तो दे देते ।”
—कहा मनीश ने ।

नन्दा के मस्तक पर ओडिकालोन की पट्टी रखकर श्रीनाथ ने कहा—“वह चला गया है ।”

“चला गया ? कौन प्रकाश ? चला गया ?” बात जैसे समझ में न आ रही हो, इस प्रकार मनीश और एला एक ही स्वर में कह उठे ।

“हाँ, चला ही गया । उस दिन मैं विपिन को पहुँचाने के लिए स्टेशन गया था, याद है न मनीश ? अजी वही तो, जिस दिन मेरे पैर में चोट लगी और महीनों पलंग पर पड़ा ही रहा, उसी दिन की बात है, सामान लेकर वह अपने घर चला गया ।”

“अब नहीं आएंगे ? कहिए न दादा जी, अब मेरी जीजी अकेली ही रहेंगी ?” उस आग्रह पूर्ण प्रश्न का उत्तर देते वृद्ध श्रीनाथ का जी जाने कैसा कर उठा, कहा—

“वैसा ही तो उसने कहा, बोला था प्रकाश, उसकी शादी होने वाली है । सुनकर उसपर जाने मेरी कैसी अश्रद्धा हुई ।”

“उन्हें रोका क्यों नहीं दादा जी ?”

“जाने वाले को कब कौन रोक सका है । मैं उसी वक्त नन्दा के पास आ रहा था और एक्सडेंट हो गया । आज तक पलंग पर पड़ा हुआ ।”

“मैं डाक्टर को लिवा लाऊँ ।” मनीश चल दिया ।

थोड़ी देर बाद मनीश अपनी कार पर डाक्टर को तथा फलों की भरी टोकनी लेकर लौटा ।

परीक्षा कर डाक्टर ने कहा, “मियादी बुखार की तरह लग रहा है । खून की परीक्षा करनी चाहिए ।” बाकी की व्यवस्था देकर वह चला गया ।

नन्दा ने आँखें खोली, रक्तवर्ण आँखे । सर्व प्रथम दृष्टि पड़ी श्रीनाथ पर और उन आँखों में विस्मय के साथ-साथ रिक्तता भर उठी और उसके बाद उनमें रक्त जाने लगा जैसे किसी की आँखों में अग्नि की-सी ज्वाला । वृद्ध ने परम स्नेह से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा — “मुझे पहचान नहीं रही हो लक्ष्मी ?”

भटके के साथ श्रीनाथ का हाथ हटाकर नन्दा बोली — “मत छोड़ए मत छोड़ए । मेरे स्पर्श मे आप भी असत् हो जाएँगे । हटिए—हटिए, मुझे अकेली मरने दीजिए ।” उत्तेजना से उसकी नासिका स्फीत हुई, ओठ फडकने लगे । हृदयश्वास फूलने लगा । वह उसी उत्तेजना में भरी-भरी कहने लगी—अपने आप — “सती-सती-सती । कभी उस सर्वस्व खोई हुई नारी के मन का पाठ भी किया है ? किया है कभी अनुभव नारी-मन की उस अन्तर्दना का ? जबरन जिससे सब कुछ छीन लिया गया हो । वह भी हठात्, सो भी आर्ताङ्कित भाव से, रात की चुप्पी में नहीं, दिन के सूर्य-प्रकाश में और भी उसीके परिजनों की आँखों के सामने । कभी ऐसी नारी के मन की वेदना की असहनीय यातना को अनुभव करने की चेष्टा की है ? जिस नारी की आँखों के सामने उसकी सन्तान को दो टुकड़े कर डाला हो और नेत्रों में तप्त लोहे की सीको का प्रवेश कर दिया हो । पिता को खम्भे के साथ बाँध दिया हो और माता को कन्या की दुर्दशा देखने के लिए साक्षी स्वरूप सामने खड़ा कर दिया हो । पति के हाथ-पैर काटकर फेंक दिए हों और तब सबके सामने उस पर अत्याचार की मुहर छापने लग गया हो । ऐसी नारी के मन की वेदना

को, दाहकारी अग्नि को सोच सकने की और सहानुभूति के साथ अनुभव करने की चेष्टा भी कभी की है ?” —

कहते-कहते नन्दा एकदम उठकर बैठ गई। रूखे बाल खुलकर बिखर गए। आँखें विस्तारित हो उठीं, हृदय का कम्पन द्रुततर हुआ। और तब गृह के तीनों व्यक्ति विमूढ़ता से खड़े के खड़े ही रहे आए।

नन्दा कहने लगी—“असती, असती, असती। पूछती हूँ यदि पुरुष का पुरुषत्व है तो उसने नारी के सतीत्व को बचा क्यों नहीं लिया ? वहाँ का अत्याचार तो एक ही दिन में समाप्त नहीं हुआ था ? तब क्या मर्द सो रहे थे ?”

नारी पर जो उसकी इच्छा के विरुद्ध जबरन ही अत्याचार किया गया, तब अत्याचारिता नारी असती ही कैसे हुई ? दो—दो, मेरी बातों का जवाब दो। पाप—पाप, पाप तो मन से हुआ करता है, दैव घटित घटना (एक्सिडेंट) पाप कैसे हो सका ? क्या इसकी जवाबदेही नारी पर, उसके नारीत्व पर, सतीत्व पर लादी जावेगी ? क्या यही इस युग की सभ्यता, उदारता तथा न्याय है ?”

एला को लग रहा था, उत्तेजना से नन्दा का श्वास हृदय को चीर-फाड़ कर अभी-अभी बाहर निकल आवेगा। श्रीनाथ और मनीश रुद्ध श्वास से एक दूसरे का मुँह निहारने लगे। एला ने जबरन नन्दा को सुला दिया नहीं तो वह बेहोश हो गई। निस्तब्ध गृह, संध्या की छाया घनी होती जा रही थी, वे तीनों देव-मूर्ति की भाँति नन्दा को घेर कर बैठे हुए थे। तीनों उदास थे।

रात्रि गंभीर होने लगी। डाक्टर दो बार आकर रोगी को देख गया था। ज्वर कम हो चला था।

खोली सुनन्दा ने आँखें, आँखों की लालिमा कम थी। सर्व प्रथम नन्दा की दृष्टि एला पर पड़ी—“तू ? और इतने दिनों के बाद ?”

“जीजी, माफी माँगती हूँ इस बार, कम्पनी में शूटिंग चल रहा है, इसलिए नहीं पहुँच पाई। मैं क्या जानूँ कि तुम्हारी दशा ऐसी हो रही है।” कहते कहते एला रुक गई—“ऐ री जीजी, तुम्हें फिर से यह क्या हो गया ? यह आँखें ऐसी क्यों हो रही है ?”

नन्दा पुनः बुड़बुड़ाने लगी—उन्मादों-सी उसकी दृष्टि। मनीश ने धीरे कहा—“डिलिरियम अभी है ही।”

विद्रोह पूर्ण मुस्कान मुख पर लपेटी हुई दीवार की ओर मुंह किए कह रही थी नन्दा—“मन अगर हमारा निष्पाप है तो असती कैसे ? हमारी असली भारतीय संस्कृति में ऐसा विधान नहीं दिया गया है, न वेदों में है। गीता कहती है, मनसा-वाचा पाप को ही पाप कहते हैं। पाप मन से होता है। मनु, कौटल्य ने भी यही व्यवस्था दी है। तो वह नारी असती कैसे ? मनु, कौटल्य ने भी आज की तरह नारी के प्रति अन्याय की कल्पना नहीं की, न वैसी परिस्थिति में ऐसी व्यवस्था दी की धर्षिता नारी त्याज्य हो। और फिर वह पुरुष जोकि अपनी पत्नी, अपनी माता, कन्या की रक्षा ही न कर सके, वह स्वयं आप फिर से समाज में प्रतिष्ठावान् होकर पवित्र बनकर रह भी कैसे सकता है ?—कहो-कहो, जवाब दो न ?”—जैसे वह दीवार से उत्तर पूछ रही हो। बुड़बुड़ती हुई नन्दा सो रही।

प्रातः का प्रकाश फैलने लगा था, सुनन्दा जागी, मानो कोई दुःस्वप्न देखकर वह अभी-अभी जागी हो। आँखों की दृष्टि स्वाभाविक थी। उसने विस्मय से मुँह फेरा और श्रीनाथ पर आँखें पड़ी। जरा ठहरी; तब सुनन्दा पुनः दीवार की ओर मुँह फेरकर पड़ रही।

“लक्ष्मी, सुनन्दा, क्या अपने दादू से मुँह फेरकर ही रहोगी ?”

“परन्तु आज तो यहाँ दादू की जरूरत नहीं है।”

“जरूरत नहीं है—कह रही हो ? नन्दा, तुम्हारे दादू की जरूरत क्या अब सचमुच नहीं है।”—मुँह के निकट झुककर वृद्ध ने पूछा।

“आज—अब नहीं है न ।”

“ऐसा ? तो किसी दिन थी ? कब नन्दा ?”

“दादू की ? उस दिन, भरी हुई सभा में था न नन्दा को अपने दादू की जरूरत ।”

श्रीनाथ ने मस्तक झुका लिया ।

“आदमी की कमजोरी कब उसका साथ छोड़ सकी है लक्ष्मी ? और हठात् आघात एक दिन भी तो हुआ करता है ।” देर के बाद श्रीनाथ ने कहा ।

“कह रही थी—आज नहीं है दादू की जरूरत ।”

वृद्ध हँसा, स्नेह से ओत-प्रोत वह हँसी—“तुम नहीं जानती; लेकिन मैं जानता हूँ, आज नन्दा को उसके बूढ़े दादू की कितनी जरूरत है । जब स्टेशन पर प्रकाश से उसका चला जाना सुना था, उसी वक्त लक्ष्मी का दादू उसके पास दौड़कर आ रहा था ।”

नन्दा की आँखें बन्द हो गईं ।

मनीश ने कहा—“तुम घर जाओ दादा जी, रात भर के जागे हो । पैर भी अभी ठीक नहीं हो पाया है । और आप श्रीमती रवीन्द्र, घर जाइए, वहाँ सब खोजते फिर रहे होंगे ।”

सुनन्दा ने पुनः आँखें खोलीं; चहुँ ओर देखने लगी, इतनी देर के बाद उसने मनीश को देखा और देखती ही रही आई ।

“मैं नन्दा को घर ले जाना चाहता था ।” श्रीनाथ ने कहा ।

“लेकिन डाक्टर ने उठाने को मना किया है ।”

“तो अकेली बीमार लड़की को छोड़ जाऊँ ? यहाँ कौन रहेगा ?”

“मैं तो हूँ ही ।”

“क्या जरूरत है इसकी ।” दुर्बल स्वर से नन्दा बोली ।

“तुम चुप रहो भाभी, जरूरत है या नहीं, वह मैं समझूँगा ।”

वैसी बीमारी में भी परिहास स्पृहा ने नन्दा का साथ न छोड़ा—

“कभी-कभी भाभी की सुध लेने की जरूरत महीनों नहीं हुआ करती है । आपकी समझ विचित्रता लिए हुए जरूर होती है ।”

मनीश ने कोई उत्तर न दिया ।

उठते हुए श्रीनाथ ने कहा—“दिन में तो हम लोग आएंगे, लेकिन अकेले तुम रात को कैसे जागा करोगे मनीश ?”

“क्यों ? भाभी तो अब अच्छी है, बिलिरियम कट चुका है ।”

“घर पहुंचकर मैं कल्पना को भेज दू ? वह बड़े काम की लड़की है ।”

“नहीं-नहीं-नहीं ।”

मनीश के उस स्वर ने अस्वस्थ नन्दा तक को चौंका दिया । नीरवता में वे तीनों मूक से हो रहे । नन्दा पड़ी-पड़ी जाने क्या सोचने लगी ।

“अच्छा तो ।”—दीर्घश्वास श्रीनाथ का किसी से छिपकर नहीं रहा ।

“चलो एला, तुम्हें घर तक पहुँचा । वरना सब लोग जाने क्या-क्या सोचें ।”

“जरूरत नहीं है दादा जी, मैं किसी से डरती थोड़े हूँ ।” आगे-आगे एला और पीछे-पीछे श्रीनाथ चल पड़े ।”

[१६]

दिवा द्विप्रहर, उग्र, रौद्र, कार्यादि शेषकर श्रीनाथ के दास-दासी विश्राम कर रहे थे । आहारादिक बाद दिवा-निद्रा श्रीनाथ का अभ्यास था । ऊपर के कमरे में आराम-कुर्सी पर लेटी हुई सुनन्दा रवीन्द्र की ‘गीतांजली’ पढ़कर कल्पना को समझा रही थी । कल्पना शायद ही कुछ समझ पा रही हो, प्रायः प्रत्येक लाइन पर प्रश्न करती—“जीजी, यह लाइन एकदम पहेली-सी है । क्या मतलब है इसका ?”

हँसकर नन्दा इस नवीन छात्रा को अर्थ समझाती ।

नन्दा को, अस्वस्थ अवस्था में एवं उसकी ध्यापति करने पर भी श्रीनाथ अपने घर सटा आए थे । उपस्थित वह पूर्ण स्वस्थ थी, केवल दुर्बल । अपने घर लौटने के लिए नन्दा व्यग्र होती । श्रीनाथ कहते, “बस दो दिन और ठहरो । अभी तुम्हारी यह हालत नहीं है कि अकेली रह सको ।”

“मैं अब बिल्कुल अच्छी हूँ दादू ।”

“नहीं रे पगली । और यह क्या कोई दूसरे का घर है ?”

“नहीं! यह मेरे दादू का घर है ।”

“नहीं-नहीं !” — बृद्ध मस्तक हिलाते हुए कहते—“यह घर है ? लक्ष्मी का ।”

नन्दा मुसकराकर कहती—“यह घर लक्ष्मी का है ? तो सुनन्दा यहाँ कैसे रहे ?”

“तू बड़ी नटखट है री लड़की ।” एकदम अपने मित्रत्व के अधिकार और पुकार में कह उठता दादू ।

दिन टलते चले जाते । सो दो दिन के स्थान पर दस दिन हो जाते । और उतावली के साथ नन्दा घर जाने के लिए प्रस्तुत होती ।

श्रीनाथ पुनः कहते—“इस वक्त मेरा जी खराब लग रहा है लक्ष्मी, तुम्हारी बात शाम को सुनूंगा ।”

और किसी प्रकार दादा की सम्मति पा भी जाती—तो कल्पना के भाँसू का बाँध टूटकर बह निकलता । सिसकती हुई कहती कल्पना —“तुम नहीं जाओ जीजी, इस निर्बान्धव पुरी में मुझे अकेली छोड़कर मत जाओ । या तो मुझे साथ लेती चलो, नहीं तो तुम यहीं रही जाओ ।”

यों नन्दा संकट में पड़ी हुई थी । कह रही थी नन्दा—“आदमी सब अत्याचारों के हाथ से बच सकता है, किन्तु स्नेह के अत्याचार से

बचना कठिन होता है ।”

“ऐसा! स्नेह तो स्नेह ही होता है । फिर उसका अत्याचार कैसा ?”

विस्मय से कल्पना ने पूछा ।

नन्दा मुसकरा कर बोली—

“फिर कभी बतलाऊँगी ।”

गीतांजली पढ़ते-पढ़ते नन्दा ने कश्मला से कल्पना के प्रति देखा ।

पूछा—“तुम कहाँ तक पढ़ी हो कल्पना ?”

“मैं ? तीसरी तक ।”

“हिंदी या अंग्रेजी ?”

“अजी हिन्दी । अच्छा जीजी, रवीन्द्रनाथ ऐसी कविताएं क्यों लिखा करते थे ?”

“कैसी ?”

“यों दुर्बोध जोकि आदमी समझ ही न सके ?”

इसका उत्तर नन्दा के देने से पहले ही द्वार पर से उत्तर आया—

“रवीन्द्र क्या जाने कि इस सभ्य, शिक्षित युग में भी ऐसे प्रश्न करने वाले पैदा होंगे ? अगर जानते तो कलम क्यों उठाते ?”

दोनों ने लौट कर बेस्वा मनीश को ।

“लौट क्यों रहे हो ? अन्दर आओ मनीश बाबू ।”

“आऊँ ? लेकिन, जबकि मेरा आना तुम्हें पसन्द नहीं, तब क्यों आऊँ ?”

“ऊपर से झूठ कहते हो कि मुझे पसन्द नहीं ? तीन दिन के बाद तो आज घर आ रहे हो । तुमसे किसने कहा कि तुम्हारा आना मुझे पसन्द नहीं ?”

“तुमने ।”

“मैंने !”—आश्चर्य से नन्दा का मुँह खुला ही रह गया ।

“कोई साफ-साफ कहता है और कोई अपने कार्य द्वारा बतलाता है । यदि मेरा सान्निध्य तुम्हें पसन्द होता भाभी, तो बेकार भीड़ अपने

पास क्यों इकट्ठा कर रखतीं ?”

कल्पना का मुख पीला पड़ गया। नन्दा के कुछ कहने से पहले वह निकल कर चली गई। मनीश अन्दर आया, कुर्सी खींच कर नन्दा के निकट बैठ गया।

“उस बिचारी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? गरीब लड़की मुँह लटका कर चली गई।”

“रहने भी दो भाभी, मैं सब कुछ समझता हूँ, दादा जी उसे यहाँ क्यों लाए हैं, वह भी जानता हूँ। तू क्यों उसे अपने पास बिठा कर रखती हो, यह सब जानता हूँ।”

कौतुक से नन्दा ने पूछा—“ऐसा ? अच्छा तुम्हारी समझ, समझते हो तो जरा सुनूँ।”

“उस जंगली को दादा जी मेरे साथ शादी करने के लिए लाए हैं।” इसके बाद उत्तेजित स्वर से कहने लगा मनीश—“तुम उनसे साफ-साफ कह देना—मैं उससे कभी शादी नहीं कर सकूँगा। उस निरपराध लड़की का जीवन वे क्यों बर्बाद कर रहे हैं ? उसकी शादी किसी से वे कर दें ?”

“किन्तु मनीश बाबू—”

“कुछ नहीं, जो कभी हो ही नहीं सकता है, उसके लिए सिर पीटने की जरूरत नहीं है भाभी।”

“नहीं हो सकेगा ?”

“कितनी बार कहूँ कि—नहीं—नहीं, नहीं, अपने मन का मालिक मैं स्वयं हूँ, न तुम हो, न दादा जी हैं। मैं तो किसी से प्रेम की भीख नहीं मांगने जा रहा हूँ, न किसी को अपनी दुःखभरी वेदना ही सुनाना चाहता हूँ, जो कुछ है वह उचित है या अनुचित, इससे कोई मतलब नहीं, क्योंकि वह है ही और वह मेरा अपना है, उससे मैं स्वयं समझौता कर लूँगा, निपटारा कर लूँगा।”

उसकी बातों में क्या था, कौन जाने ! नन्दा का साहस जाता रहा, न जाने क्यों उसका जी काँप उठा, धीरे से बोली — “तो तुम अपनी प्रेम-पात्री ही से शादी क्यों नहीं करते ?”

मनीश ने सुनन्दा के अशांत मुख के प्रति देखा, कुछ कहने के लिए मुख खोला, किन्तु दूसरे पल जबरन उसने अपने अंठ एक दूसरे के साथ सटा लिए, यों जैसे वे कभी खुलेंगे ही नहीं।

नन्दा सहमी, पूर्ण दृष्टि मनीश के मुख पर प्रसारित किए बोली— “गृहस्थी बसालो मनीश बाबू, आवारा की तरह कोई कब तक रह सकता है ? इसमें कोई लाभ नहीं। जिसे प्यार करते हो, उसी से शादी कर लो, दादू आपत्ति नहीं करेंगे। ऐसा मेरा विश्वास है।”

“अगर वह सम्भव होता सुनन्दा तो क्या आवारा की तरह मैं रात-दिन गलियों में भटकता फिरता ?”

“ऐसा ! असम्भव है ? तब तुमने ऐसी एक को प्यार क्यों किया ?”

विस्मय से उसे देखते हुए मनीश ने कहा—“आखिर निरी पत्थर निकली नन्दा। सोचता था—स्त्रियों में तुम एक ऐसी हो जिसे कि बुद्धिमती कहा जा सकता है। नहीं जानती तुम ? क्या प्रेम, पात्र-अपात्र, न्याय-अन्याय के बन्धन में बंध सका है ? सोच-समझ कर कब किसका प्रेम किसी के दरवाजे लुटा था, या लुट सका है ? तुम्हारी तरह पत्थर की तरह मनवाली स्त्री मेरी बातों को नहीं समझ सकेगी। मुझे किसी से कहना भी तो नहीं है नन्दरानी।”

नन्दा तीक्ष्ण दृष्टि से मनीश को देखने लगी। क्या देखा, क्या पाया उसने मनीश में, सो तो वही जाने, परन्तु अन्तरात्मा उसका सिहर उठा, इतना तो सही ही है।

कुछ दिनों से नन्दा के मन में जो एक आतंकित सन्देह की छाया पड़ रही थी, वह छाया कुछ स्पष्टतर हुई।

नन्दा कुछ देर चुप रही, फिर प्रसंग बदलती हुई बोली—“तुम्हें अब मनीश बाबू नहीं कहा करूँगी।”

कौतुक से मनीश हँसा—“ऐसा ! और क्या कहोगी ?”

“आवारा।”

“क्यों ?”

“मेरी खुशी।”

“अच्छी बात है। मैं भी अब भाभी नहीं कहूँगा।”

“तो क्या कहोगे ?” जरा रुक कर नन्दा ने पुनः कहा—

“एक बार जिसे भाभी, भाई, या जो कुछ कहकर मान लिया हो, उस सम्बन्ध को जिन्दगीभर निभाना भी पड़ता है, समझे मनीश बाबू ? वचन का मूल्य हुआ करता है, आदमी की बातों का यदि मूल्य ही न रहा तो वह आदमी कैसा ?”

उस रुग्ण, दुर्बल, आतंकित स्वर की गूढ़ वार्ता पलभर में मनीश के निकट स्पष्ट हो गई। वह मलीन हँसा—“अरे ! डर गईं भाभी ? और अपने मनीश से ! नहीं, मुझ से मत डरा करो नन्दरानी।”—सुनन्दा का दाहिना हाथ खींच कर अपनी गोद में रखकर पुनः कहने लगा मनीश—“डर, भय, यह सब तुम्हारे लिए नई बात है, यह बातें मेरी भाभी को शोभा नहीं देती।” कहता हुआ मनीश नन्दा के एक दम निकटतर हुआ। मदिरा की गंध सुनन्दा की नासिका में पहुँची। नन्दा ने एक बार विवर्ण मुख उठा भर लिया।

अपनी बातों का छोर समेटता हुआ मनीश कह रहा था—“तुम कितनी कमजोर हो गई हो भाभी, वे गोल-गोल हाथ दुबले हो गए हैं, आँखें धंस गई हैं ! यद्यपि इस कमजोरी ने तुम्हारे मुख की कठोरता को हटा कर कोमलता को ला दिया है, तुम अब और भी भली लगती हो भाभी। लेकिन कमजोर हो गई हो, यहाँ तक कि मेरी तरह एक शराबी से भी डरने लगी हो।” जरा देर मनीश खिड़की की ओर मुँह किए

जाने क्या सोचता रहा, फिर नन्दा के रूखे बालों पर हाथ फेरता हुआ कहने लगा—“चाहे मैं शराबी होऊँ, लम्पट होऊँ, किन्तु नन्दा का अनिष्ट कभी नहीं करूँगा, अपनी भाभी का अपमान करने का साहस मनीश में नहीं है, डर गई भाभी ?”

मुख पर हँसी खीचती हुई सुनन्दा बोली—“तुम्हारे कहने से क्या होता है ? डरूँ भी क्यों ? अजी, डर कँसा ?”

“जाने भी दो, अब कुछ ताकत पा रही हो ? कँसी हो भाभी ?”

“तुम्हारी बला से, चाहे मैं मरूँ या जिऊँ, तुम्हें क्या करना ? दिन-रात बाहर से तुम्हें मतलब । घर में भाभी मरे या कोई भी मरे, तुम्हें क्या करना ?”

उदास, असहाय दृष्टि से मनीश ने नन्दा को देखा, और देखता ही रह गया । जाने कब तक वह देखता रहा और एक समय हठात् मनीश कह उठा—“सब कुछ भूलकर रहने के लिए, हाँ शराब के नशे में मस्त होकर मन की पीड़ा को भूलने का वही तो एक रास्ता मेरे लिए बच रहा है अब, सुनन्दा ।” मनीश के स्वर की, उसकी बातों की व्यथित गुंजना नन्दा के मन को छूने लगी । वह सहानुभूति तथा आतुरता से व्याकुल हुई ।

और तब नन्दा का मन शिशु जैसा सरल हो गया, उसमें उठी यह भावना—बेचारा, दुखी शिशु स्वभाव का मातृहीन युवक । तब नन्दा के मन का परिपूर्ण ममत्व मानो बाहें बढ़ाकर उस युवक को आलिंगनावद्ध कर प्यार करने के लिए आकुल हो उठा ।

सुनन्दा उठी, मनीश को अपने निकट आदर से बैठाया, कहा—“दुख-दर्द को भूलने के लिए, नशे का आश्रय लेना तो मन की कमजोरी है मनीश बाबू ।”

निकट बैठा मनीश—वाध्य शिशु की भाँति, बोला—“मारे दर्द के सिर फटा जा रहा है भाभी ।”

“ददं है ? अब तक कहा क्यों नहीं ? लेट जाओ, मैं बाम मले दे रही हूँ ।”

नन्दा की जाँघों पर मनीश आँखें बन्दकर लेट गया ।

“जरा-सा उठो, मैं बाम की शीशी ले आऊँ ।”

“नहीं, तुम सिर दबा दो ।”

सिर दबाने लगी नन्दा, सन्ध्या का अन्धकार क्रमशः घनीभूत हो आया । मनीश उसी भाँति आँखें बन्दकर पड़ा रह गया ।

द्वार पर से कोई छाया की भाँति हटने लगा । सुनन्दा ने देखा और पहचान कर बोली—“नलिनी बहन, आप आई है ? तो लौट क्यों रही हो ? आइए न, जाने कितने दिनों के बाद आप को देख रही हूँ । बड़ी कमजोर हो रही हैं ।”

“आई थी कल्पना के पास, मोजे का नमूना लेने के लिए । मे क्या जानूँ ? अचानक इस समय यहाँ पहुँच गई । माफ करना । इस समय यहाँ पर पहुँचकर मैंने शायद आप लोगों को—”

पूरी बात न सुनकर नन्दा ने कहा—“खैर, कृपा कर टेबिल पर रखो हुई बाम की शीशी देती जाओ, जरा स्विच खोल दीजिए ।”

बाम की शीशी हाथ में लेकर नन्दा ने कहा—“धन्यवाद ।”

मनीश, जो कि पड़ा-पड़ा सब कुछ सुन रहा था और भीतर ही भीतर क्रोध दबा रहा था, उठकर बैठ गया, बोला—“अरे आप नलिनी देवी, नमस्ते-नमस्ते, तो मोजे का नमूना लेने आई थीं ? बच्चे के लिए शायद इन्हें जरूरत हो, तुम बतला दो न भाभी, मेरे तो विचार से बाजार के बने हुए मोजे और भी अच्छे होते हैं ।”

“बच्चे के लिए यानी ? देखिए मजाक आदमी देखकर किया जाता है । किसी निष्ठावान् हिन्दू विधवा से इस तरह मजाक करना अच्छा नहीं होता । बच्चा-बच्चा, अजी मेरा बच्चा कहाँ से आता ? दूसरों की भाँति सब को समझ रखना । वाह, अच्छा मजाक रहा” ।

हूँसी रोककर मनीश ने कहा—“लेकिन ऐसा मैंने क्या कहा, जिससे आप को अपमान करना हो सकता है, मेरी समझ में अब तक यह बात नहीं आई नलिनी देवी। और बच्चा केवल आप ही का हो सकता है, ऐसा भी नहीं कहा।”

नलिनी ने केवल कहा, “हूँ।”

“ओः, आप तो बीमार थीं ?”

और कोई उत्तर न पाकर पुनः मनीश ने जैसे उसी नलिनी को साक्षी मानकर कहा—“यही बात है न नलिनी देवी ?”

“थी तो, फिर इससे आप को क्या ?”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं, बीमारी में सब लोग पूछा-पाछा करते ही हैं। लेकिन आप चिढ़ क्यों रही हैं ?”

एक बार प्रज्वलित दृष्टि उन दोनों के प्रति डालती हुई नलिनी निकल कर चल दी।

“उसे बकार तुमने चिढ़ाया, इसका परिणाम अच्छा न होगा।”

“तो मैं चुपचाप आँखों के सामने भाभी का अपमान सहता रहता ? यह मुझसे नहीं हो सकता। और सब कुछ सह सकता हूँ, लेकिन भाभा का अपमान नहीं सह सकता।”

“हूँ।”

“आखिर वह करेगी ही क्या ? मुझे फाँसी पर लटका देगी ?”
नन्दा मुसकराने लगी।

[२०]

दोपहर निकलकर पाँच बज रहे थे। सुनन्दा बगीचे के काम में जुटी हुई थी। उसकी बीमारी में भाड़-पेड़ को हानि पहुँची, वे सब

पानी के बिना सूख रहे थे। घर पहुँच कर भी नन्दा की कमजोरी ने कुछ करने न दिया। अब क्रमशः उसकी दुर्बलता हटती जाती।

द्वार पर मोटर का हार्न बज उठा। मिट्टी सने हाथों को धोकर उसने दरवाजा खोला। शोफर ने पत्र दिया। श्रीनाथ ने उसे अविलम्ब बुलाया है। चाय पार्टी है।

नन्दा ने पूछा—“तुम सबेरे आए थे क्या ?”

“जी, लेकिन दरवाजे पर ताला बन्द था।”

“ठहरो, आती हूँ।”

नन्दा ने जल्दी-जल्दी स्नान कर बालों को सँभाला, माँग में सिंदूर भरा। कपड़े की आलमारी खोली, सर्वप्रथम उसकी आँखें आकृष्ट हुईं— सिंदूर रंग की साड़ी पर। हाथ में साड़ी लेकर वह खड़ी रह गई। इस साड़ी का छोटा-सा इतिहास उसे स्मरण हो आया। गत वर्ष उसने मनीश के साथ होली खेली थी। दूसरे दिन मनीश स्वयं साड़ी खरीद लाकर बोला था—“भाभी, आज मोटर का हार्न खरीदने बाजार गया तो यह साड़ी देखी, तुम्हारे लिए लाया हूँ, इसका रंग मुझे बहुत पसन्द आया, पहनो तो सही, देखूँ। तुम्हें यह रंग कैसा लगेगा—ऐसा— ऐसा—”

“बस करो मनी बाबू, चुप भी रहो।” और फिर साड़ी हाथ में लेकर नन्दा ने कहा था—“सचमुच सुन्दर साड़ी है।”

“पहनो, मैं देखूँ जरा।”

“परन्तु रंगीन साड़ी मैं पहनती नहीं हूँ न।”

मनीश ने बच्चों की तरह मचल कर कहा था—“चाहे न पहनती हो, लेकिन आज तो पहनना ही पड़ेगा।”

“नहीं, माफी चाहती हूँ।”—साड़ी लेकर वह तुरन्त चली गई थी और आलमारी में उसे बन्द कर रख दिया था। उसके बाद कई दिनों तक मनीश उसके घर आया नहीं; और मुलाकात होने पर मुँह फेर

लिया करता था । किन्तु उसने साड़ी नहीं पहनी ।

नन्दा जरा-सा म्लान हँसी । उस नीरव गृह में उसकी वह हँसी जीवाल से टकरा कर उसी के मुँह पर खौट पड़ी । अनमनी-सी नन्दा साड़ी लिए जाने कब तक खड़ी रही । शोफर ने हार्न बजाया । चेतन्य होकर नन्दा पुनः मुसकराई, और सिंदूर रंग की साड़ी पहन कर दर्पण के सम्मुख खड़ी हो गई । सिंदूर की बिन्दी बलाट पर, दोनों भौहों के बीच लगाई और दरवाजे पर ताखा बन्द कर कार पर बैठ गई ।

श्रीनाथ के प्रासाद मूल्य गृह-द्वार पर कार रुकी । सामने नन्दा ने किसी को देखने न पाया ।

डाइनिंग रूम से हँसी का उच्छ्वास, और काँटे, चम्मचों की टुनटुना-हट सुनने वालों को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी ।

“दादू-दादू !—पुकारती हुई सुनन्दा डाइनिंग रूम में पहुँची । नन्दा पहुँची—सो तो ठीक है और टेबिल की तरफ—ठीक द्वार के प्रति मुँह किए हुए उपविष्ट व्यक्ति के प्रति उसकी दृष्टि पड़ी वह भी असत्य नहीं है । एवं दोनों की दृष्टि एक होकर कुछ क्षण तक एक दूसरी में अटकती रही आई सो भी निर्मूल सत्य है । किन्तु उसके बाद क्या हुआ, नन्दा ने क्या किया, यह बात,—हाँ । उसका वह आचरण स्वयं ही नन्दा को ज्ञात नहीं ।

मनीश ने आतंक से आवाज लगाई—“भाभी !”

तब तक सामने उपविष्ट रवीन्द्र के हाथ का कप जमीन पर गिर कर टूट चुका था । पति के सूट पर गिरे हुए चाय के छीटे रूमाल द्वारा पौछ कर एला ने पूछा—“गरम चाय से हाथ तो नहीं जला ?” और वह पति के मुख पर अपनी जिज्ञासित दृष्टि उठाकर अवाक् हो रही ।—“ऐं, तुम्हें अचानक क्या हो गया है—चेहरा ऐसा हो रहा है—मानो अभी-अभी तुमने प्रेत देखा हो ।”

चौधरानी ने बारीक आवाज से कहा—“अगर तबियत खराब हो

रही हो तो उन्हें सोफे पर लिटा दो एला ।”

प्याला गिरने की आवाज से सुनन्दा का क्षणिक मोह, अव्यवस्थित चित्त, व्यवस्थित हो चुका था । मुंह पर हँसी खींचकर वह बोली—
“मुझे देर लग गई दादू ।”

मनीश ने अपने निकट की खाली कुर्सी पर उसे बैठाया, श्रीनाथ ने नन्दा का परिचय करवाया “यह मेरी बेटा सुनन्दा है रवीन्द्र ।” और मुसकराकर कहा—“लेकिन मैं इसे लक्ष्मी कहकर पुकारता हूँ । इन्हें शायद तुमने देखा हो, पहचानती हो इन्हें नन्दा ?”

नन्दा ने जरा इतस्ततः किया, बोली—“हाँ ।”

और आप इन्हें जानते हैं रवीन्द्र बाबू ?”

रवीन्द्र अस्वस्थ हो रहा था । उसके मुख से हठात् ही निकल गया—“नहीं ।”

नहीं ! एक सीधा—साफ ‘नहीं’ था । यदि रवीन्द्र जानता, यदि वह अन्तर्यामी होता तो अनायास देख पाता कि उस छोटी-सी ‘नहीं’ ने सामने उपविष्ट नारी के मन की शेष श्रद्धा, पुरुष के प्रति अवशिष्ट सम्मान तक को किस प्रकार से शेष—निःशेष कर दिया । यदि वह जान पाता तो शायद ही ‘नहीं’ शब्द को मुंह से निकालता, हां, तब वह देख पाता कि उस नहीं शब्द ने उस नारी के व्यथित हृदय पर की वेदना की अमित आहों को लजाकर, सँजो कर बँठा दिया । मानो सतर्क प्रहरी की भांति वे आहें उसे याद दिलाया करेंगी—एक पुरुष के ‘नहीं’ की । नहीं; रवीन्द्र यह सब कुछ नहीं जान सका । उसकी चकित दृष्टि कदाचित् अनिच्छा से एक बार घूम गई नन्दा के मुख पर, नहीं, नन्दा के मुख पर तब वेदना, या दुःख का कोई चिह्न तक नहीं था ।

मनीश हँसने लगा—“एक पहचानता है और दूसरा नहीं; यह तो बड़े मजे की बात है ।

सुनन्दा को देखने के बाद वही जो चौधरानी ने भौहें सिकोड़ कर

मुँह फेर लिया था, फिर वह वैसी ही रही आई, भोजन से खींचा हुआ हाथ, खिचकर रहा आया। और नलिनी ने तो पानरत चाय का कप ही टेबिल पर रख दिया।

इस परिस्थिति को और नारीत्व के मनःभाव को दूसरे शायद कभी समझे हों, परन्तु सुनन्दा ने दर्पण में अंकित छाया की भाँति समझ-पढ़ लिया। उनके मनःभाव को। हाँ, उस जैसी पतिता के साथ बैठकर वे दोनों पान—भोजन नहीं कर सकतीं।

वैसी दशा में भी सुनन्दा को हैसी आई।

श्रीनाथ ने कहा—“नलिनी बेटा, यह क्या ? चाय ठंडी हो रही है ना। और चौधरानी जी, आपने भोजन से हाथ क्यों खींच लिया ?”

“खा रही हूँ।”

तब तक नलिनी ने मानो अपने व्यंग्य को उलंग कर टेबिल पर खड़ा कर दिया—“सुप्रकाश बाबू की शादी में आप गई थी नन्दादेवी ? नहीं ? अजी; इतने दिनों तक उनके पास थीं, जाना तो चाहिए था।”

मनीश भुँभलाकर कुछ कहने को हुआ, तब नन्दा का संयत स्वर ध्वनित हो उठा—“समाज से निकाली हुई नारियों को शादी-विवाह में जगह कहाँ है बहन ? वरना शायद अपने मित्र के विवाह में जाती ही।”

और जिसे बिद्धकर कुछ कहा गया, उसने स्वयं ही जब सबके सामने अपने को पतिता कह कर घोषणा कर दी, तब नलिनी के निकट कहने-सुनने को कुछ नहीं बचा।

चौधरानी ने नलिनी की बात को जीवित कर रखना चाहा—“सुप्रकाश बाबू तो गए। आप से कह रही हूँ श्रीनाथ बाबू, जवान लड़की सुनन्दा अकेली कैसे रह सकती है ?”

एला का मुख कठोर हुआ—“ममी, ममी, तुम यह किससे क्या कह रही हो ?”

मनीश ने क्रुद्ध गर्जना की—“देखिए चौधरानी जी, भद्र समाज में

बैठकर एक भद्र नारी को—”

और तब नन्दा उन सब को बाधा सी देती हुई बोली—“मनीश बाबू, एला, बड़ों पर बातें नहीं करते।”

“चुप रहो, भाभी, उठो यहाँ से। तुम्हारे साथ बैठने की योग्यता भी तो हममें नहीं है।”

उन कुत्सित व्यंग्यों-परिहासों को सुनकर अब तक धीनाथ स्तम्भित हो रहे थे। वे सहसा सोते से जागे—“लेकिन जिस लक्ष्मी को आदर-सम्मान के साथ अपने परिवार में अपने भोजन टेबिल पर बैठा सका हूँ, उसे यहाँ से हटाने का साहस तुम भी नहीं कर सकते हो मनीश। मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय पर आगे कोई चर्चा हो।”

और विस्मय, पलभर में वहाँ का वातावरण शान्त हो गया। चौधरानी का स्वर हठात कोमलता से भर उठा—“बीमार थी क्या सुनन्दा ? बहुत कमजोर हो रही हो।”

उत्तर दिया एला ने—“तुम नहीं जानती ममी ? जीजी बहुत बीमार थीं, मैं तो प्रायः रोज ही जीजी के पास जाती थी।”

चौधरानी ने श्लोघित नेत्रों से कन्या को देखा।

उत्तर की प्रतीक्षा न कर एला ने रवीन्द्र के कन्धे पर हाथ रखकर —“मेरी जीजी को देखा न तुमने ? बहुत ही अच्छी हैं। इन्हीं की बातें तो किया करती हूँ। तुम समझते नहीं थे। अब तो देख लिया न ?” फिर पति का हाथ पकड़कर खींचने लगी—“चलो न ! डान्स में चलो ! जीजी को जबरन ले चलो। उन्हें डान्स पसन्द नहीं तो न सही, तुम्हारी बात नहीं टालेंगीं। मैं मि० कुमार के साथ डान्स करूँगी। तुम दोनों बैठे रहना।”

रवीन्द्र वहाँ बैठा हुआ अत्यन्त अस्थिरता अनुभव कर रहा था। वह वहाँ से भाग जाना चाह रहा था। परन्तु अधिक विस्मय तो यह है कि भागने का सुयोग मिलने पर भी वह भाग न सका। बैठा ही रह गया।

“चलो न ।”

“नहीं, बाल-डान्स मुझे पसन्द नहीं ।”

रवीन्द्र घर जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया । किन्तु उस एक तुच्छ दृश्य ने उसे ऐसा भी विचलित किया कि मूर्तिवत् खड़ा रह गया ।

मुनन्दा एक हाथ से मनीश का मुख ऊपर को उठाकर दूसरे हाथ से आँचल के छोर द्वारा मनीश की आँख में गिरी हुई किरकिरी को निकाल रही थी ।

रवीन्द्र धम्म से पुनः कुर्सी पर बैठ गया । न जाने क्यों उसके मुख पर ईर्ष्या की छाया स्पष्टतर हुई ।

मनीश की आँख की किरकिरी निकाल कर नन्दा आकर अपने स्थान पर बैठी । रसगुल्ला का प्लेट बढ़ाकर कहा—“दादू, तुमने एक भी रसगुल्ला नहीं लिया । रसगुल्ले तुम्हें प्रिय हैं । और मि० गुप्त आरने तो कुछ खाया ही नहीं ।” कहकर उसने केक, पेस्ट्री के प्लेट रवीन्द्र के सामने रख दी । तब नलिनी से पूछा—“आप बीमार थी क्या नलिनी बहन ?”

नलिनी के कुछ कहने से पहले अति शीघ्रता से उत्तर दिया एला ने—“तुम्हारी तरह इनकी बीमारी नहीं थी जीजी, समझीं ? मुझ से कितनी बार मुन चुकी हो । भूल गई ? अजी । इनकी तो ऐसी बीमारी रही है, कि लेडी डाक्टर आई, और मेरी ममी—”

बीच में कठोर स्वर से चौधरानी ने आवाज लगाई ।

“एला ।”

“क्या है ममी ? क्या मैं भूठ कह रही हूँ ?”

“तुम बहुत बातूनी हो रही हो ।”

एला ने कहा—“बात न करूँ ? भूठ बोलूँ ? तुम मुझे भूठ कहने को कह रही हो ममी ?”

मुनन्दा एला के स्वभाव से थोड़े ही दिनों में परिचित हो चुकी

थी। यह मुँहजोर किन्तु न्याय-पसन्द लड़की अभी क्या से क्या कह बैठीगी, इस बात को समझकर वह बीच में बोली—“एला।”

“जीजी।”

“बड़ों का सम्मान किया जाता है।”

“मैंने ममी का अपमान कहाँ किया?”

“अच्छी लड़की। और उनकी चर्चा कहने का विषय बहुत रहा करता है। बस एला।”

सबों ने और विशेषकर चौधरानी ने विस्मय से देखा, वह दुर्दान्त लड़की एला मग्नमुग्ध की भाँति केवल नन्दा के मुख के प्रति देखती हुई चुप रह गई। हलकी-सी मुसकान उसके पतले ओंठों में लिपट रही।

“अच्छा तो नमस्कार।” रवीन्द्र उठकर खड़ा हो गया। चौधरानी बैठी रह गई। आज की बातचीत से वह सुनन्दा के प्रति असम्भव रूप से प्रसन्न हो उठी थी। बैठी-बैठी वह नन्दा से बातें करने लगी।

[२१]

आंखें मलती हुई सुनन्दा सोकर उठ रही थी। तब श्रीनाथ पहुँचे—
“लक्ष्मी-लक्ष्मी” पुकारते हुए।

“अरे, दादू?”

“इतने सवेरे मुझे देखकर अचरज कर रही हो? वह काम ही ऐसा आ गया।”

वृद्ध को मोठे पर बैठाकर नन्दा ने कहा—“आज शायद पन्द्रह-बीस दिन हुए, मैं तुम्हारे पास नहीं जा सकी। किन्तु इन थोड़े से दिनों में ऐसा परिवर्तन हुआ है तुम्हारा।”

“हूँ।”

“बीमार थे दादू क्या ?”

“बीमार होऊँ, मर जाऊँ, यह तो मैं चाहता ही हूँ। लेकिन बुलाने पर मौत नहीं आती।”

“आज कैसी बातें कर रहे हो दादू ? आखिर बात क्या है ?”

“अब जिन्दगी में सुख नहीं रहा लक्ष्मी। जिस पौधे को सेवा, यत्न देकर, पाल-पोषकर बड़ा किया जिसके सुख-शान्ति के लिए बुढ़ापे में अपना तक मैंने परिवर्तन कर डाला और करता जा रहा हूँ। वही मनीश उच्छृंखलता के चरम में पहुँच रहा है। न उसे अपनी इज्जत की परवाह है, न घर की और न मेरी। शादी के लिए अच्छी से अच्छी लड़की खोज निकाली, लड़कियों के लिए शहरों को छान डाला। उसे एक से एक सुन्दर, सुशिक्षित लड़की बतलायी। लेकिन सब बेकार। मनीश ने किसी को भी पसन्द नहीं किया। यों घर में कल्पना है ही, सुन्दरी नहीं तो कुरूप भी नहीं है। ऊँचे घराने की सुशील लड़की है। सोचा, एक साथ रहते-रहते उसपर मनीश की ममता पड़ेगी। इसी से उसे घर लाकर रखा। कल्पना की तरफ वह लौटकर भी नहीं देखता। और भाग्य से वह लड़की भी ऐसी निकली कि अपने कमरे से बाहर निकलती ही नहीं। मैं सब कुछ कर चुका हूँ नन्दा, उस मनीश के लिए। सब बेकार हुआ। अब अपनी जिन्दगी से ऊब गया हूँ।”

“बात क्या है दादू ?”

“आज पन्द्रह-बीस दिन हुए, मनी घर पर नहीं आया।”

नन्दा का मुख गम्भीर हुआ, पूछा — “उनके रहने की जगह जानते हो दादू ?”

“ठीक तो नहीं जानता। क्योंकि इतने दिनों तक घर छोड़कर वह कभी रहा नहीं; कभी-कभी रात में वह घर नहीं लौटता था। लेकिन इतने दिनों तक नहीं। हाँ, शहर के बाहर अपना एक उद्यान-वाटिका है। नहीं, तुमने नहीं देखा, दीपू कह रहा था, कई दिन पहले उसे कुछ

लड़कियों के साथ वहाँ उसने देखा था ।”

सुनन्दा ऐसी चौंकी कि देर तक बात न कर सकी ।”

“यह आदत उसकी शायद कुछ महीनों से हुई है, पहले शराब जरूर पीता था लेकिन स्त्रियों के साथ रहना यह पहली बार मैंने सुना ।”

“कैसी स्त्रियाँ ? मैं समझी नहीं । वेश्या ?”

“नहीं । दीपू कह रहा था—घर-गृहस्थ की स्त्रियाँ, अपटूडेट लड़कियों को उसने देखा था । उस उद्यान-वाटिका में बालडाँस हो रहा था ।”

नन्दा उठकर खड़ी हो गई—“चलो घर । मैं चल रही हूँ तुम्हारे साथ । यदि आज वे नहीं आए तो शाम को देखूँगी ।”

“तुम एक स्त्री, उसका क्या कर सकोगी लक्ष्मी । मैं उस सूने घर में, मनी जहाँ नहीं है, वहाँ मैं कैसे जाऊँ ?”

“तुम्हें कह रही हूँ दादू, शाम तक उन्हें मैं जरूर लौटाकर घर लाऊँगी ।”

आग्रह से शिशु की भाँति श्रीनाथ कहने लगे—“कर सकोगी ? उसे ला सकोगी लक्ष्मी ? एँ, सच ? आज पन्द्रह दिनों से मनी को मैंने देखा नहीं । तुम—तुम उसे घर लौटाकर ला सकोगी लक्ष्मी ?”

“जरूर, तुम चाय पीकर आए हो या लाऊँ ?”

और तब वह बोली—“पी ली है ? कह रही थीं कल्पना की शादी अब कर दो, वरन् जहाँ तक जल्दी हो सके करो । लड़के बहुत मिल जाएँगे ।

वृद्ध के आशाहत मुख को देखकर नन्दा का हृदय आर्द्र जरूर हुआ, परन्तु मिथ्या के आवरण में दादू को छिपकर रहना या रखना उसे खटक रहा था । जो कि कभी सम्भव नहीं उसे असम्भव कहकर ही क्यों न त्याग दिया जाए ? कहा नन्दा ने दृढ़ धीरता से—“मनीश बाबू उससे कभी भी शादी नहीं करेगे । तो कल्पना की जिन्दगी का क्यों

बर्बाद किया जाए ? तुम्हारे पड़ोस में उसके योग्य वर है । क्यों, दीपक बाबू । जितनी जल्दी हो शादी निपटा डालो । मैं स्नान कर लूँ ।”

स्नान-भोजन कर श्रीनाथ के ड्राइङ्ग-रूम में सुनन्दा बैठी कुछ सोच रही थी । सोफे पर श्रीनाथ आँखें बन्द कर पड़े हुए थे ।

हठात् नन्दा ने पूछा—“अच्छा दादू—भले घर की लड़कियाँ डांस करती हैं ?”

श्रीनाथ नन्दा के इस प्रश्न को पहले समझे नहीं, और जब समझ सके तब जरा-सी दुःख भरी हँसी हँसकर कहा—“आए दिन की सभ्यता की सभ्य स्त्रियाँ ही तो होती हैं —जो बालडान्स आदि में भाग लेना गौरव समझती हैं । ऐसा सुना है लक्ष्मी । यानी उच्छृङ्खलता ही है सभ्यर्चि की परिचायक ।”

सन्ध्या की धूमिल छाया में श्रीनाथ की कार आकर उद्यान-वाटिका में रुकी । कार पर बैठी-बैठी सुनन्दा ने पियानो के साथ नारी-कंठ का गान सुना और सुना पुरुष कंठ के विकृत स्वर की बाहवाह की आवाज ।

वृक्षों से घिरा सुन्दर छोटा बँगला, बँगले के चहुँ ओर दालान, मध्य में वृहत कमरा । कमरे की खुली हुई खिड़कियों से विद्युत् प्रकाश उद्यान के कुछ अंशों को आलोकित कर रहा था ।

नन्दा कार से उतरी और वृक्ष की आड़ में खिड़की से झाँक कर देखने लगी । हाल के अन्दर का दृश्य देखकर विस्मय, घृणा से अन्तःकरण सिहर उठा । मनीश तथा उसके मित्रगण मदिरा के नशे में भ्रूमते हुए—एक-एक स्त्रियों के साथ नृत्य कर रहे थे । हाँ, बाल-डॉस चल रहा था । उसने अपने जीवन में इस प्रकार का डॉस शायद प्रथम बार ही देखा हो ।

विस्मय से नन्दा का विमूढ़ता भरा हुआ मन और उस मन की जिज्ञासा मानो कमरे में पहुँचकर प्रश्नों की झड़ी लगाने लगी—यह

नृत्य है या वीभत्स उच्छृंखलता ? क्या आज के समाज की सतीत्व की कसौटी यही है ? क्या इन युवती, किशोरी और अर्द्धवयसी महिलाओं के घर के व्यक्ति एवं स्वयं वे सब नारियाँ इसे ही सभ्यता कहती हैं ? इससे उनका मन सँकुचित नहीं होता ? वे जो अर्द्ध-नग्न प्रायः शराबीगण उन्हें बाहों में समेटे हुए गिरते-पड़ते, भूमते हुए गोलाकार से घूम रहे हैं । और कोई-कोई तो किसी किशोरी के साथ नृत्य करता हुआ धराशायी ही हो रहा है, क्या इससे उन नारियों के मन की स्वतः स्फूर्ति, स्फूर्ति पूर्ण ही रही आती है ?

नन्दा ने अपने नोटबुक से कागज का टुकड़ा फाड़ा और उसपर केवल लिखा "सुनन्दा ।" फिर कार के निकट पहुँचकर शोफर को वह टुकड़ा दिया । कहा—“अन्दर जाकर छोटे साहब को दो । कहना मैं बाहर खड़ी हूँ ।”

नन्दा पुनः उसी स्थान पर खड़ी होकर देखने लगी । मदिरा पूर्ण गिलास मनीश मुँह से लगा ही रहा था कि शोफर पहुँचा । कागज का टुकड़ा उसके हाथ में दिया । भूमते हुए मनीश ने उसे पढ़ा ।

और विस्मय से नन्दा ने देखा, उस टुकड़े ने मानो विद्युत-सा काम किया । मनीश के हाथ का गिलास जमीन पर गिर पड़ा । मुख विवरण हुआ ।

डाइवर से पूछा—“यह टुकड़ा तुम्हें किसने दिया ?”

“उन्हीं ने हजूर ।”

“वे अभी कहाँ हैं ?”

“कार पर बैठी हैं ।”

“अरे बेवकूफ, वे बँगले पर हैं या अपने घर ?”

“जी सरकार, वे बाहर कार पर बैठी हुई हैं ।”

मनीश एकदम उठ कर खड़ा हो गया । देवेन्द्र ने उसे रोका । भटका देकर उसे दूर फेंक कर वह द्वार की ओर बढ़ा ।

मिस कमलाक्षी ने उसका हाथ पकड़ा — “हम लोगों को यहाँ बैठाकर आप कहाँ जा रहे हैं ?”

मनीश ने यों हाथ खींचा कि कमलाक्षी का मस्तक दीवाल से टकरा गया। मनीश भागता साकार तक पहुँचा। नन्दा तब कार में बैठ चुकी थी। गाड़ी से झुककर दृढ़ता से नन्दा ने मनीश का हाथ पकड़ा — “चलो।”

“तुम-तुम भाभी ?”

नन्दा कुछ नहीं बोली।

“क्यों-क्यों तुम इस गन्दी जगह पर आई ?”

“सबेरे कहूँगी, बस चलो।”

विरक्ति मात्र न कर मनीश कार के भीतर बैठ गया। कार चल दी।

मनीश को पलंग पर सुलाकर सुनन्दा श्रीनाथ के निकट पहुँची। कहा—“उन्हें लिवा लाई हूँ दादू।”

“मनीश को ? कहाँ है मेरा मनि ?”

“जल्दी मत करो, सबेरे मिल लेना, अभी वे अपने कमरे में सो रहे हैं। मैं चली, सबेरे पहुँच जाऊँगी।”

नन्दा चलने को हुई, नौकरानी ने आकर चौधरानी के आने की सूचना दी। चौधरानी पहुँची और अपनी स्थूल देह को सोफे पर डालकर वह हाँपती हुई बोली—“बैठो सुनन्दा। नहीं, वहाँ नहीं, मेरे पास बैठो घर जाना है ? लेकिन मुझे तुमसे भी जरूरी बातें करनी हैं, जरा बैठो बेटे।”

आश्चर्य से नन्दा ने चौधरानी की बातें सुनीं, बेटे का सम्बोधन उसे और भी हैरान कर रहा था। वह बैठी।

बिना भूमिका बाँधे चौधरानी की बातें करने की आदत नहीं थी। बोली—“संसार में कोई सुखी नहीं है श्रीनाथ साहब।” और उनके

जिज्ञासा पूर्ण नेत्रों के प्रति देखते हुए कहा—“अमीर देखकर लड़की की शादी की। एला भी राजी हुई। अब देखती हूँ किस दिक्कत को घर बैठे खरीद लाई। वह रवीन्द्र जैसा तो गँवार है, वैसा ही असभ्य, एला से उसकी दो मिनट भी नहीं बनती। जमाई है, मैं उनका लिहाज करती थी। आज तो मुझसे भी दो-दो बातें हो गईं। आखिर मैं तो आदमी हूँ। कहाँ तक सहती ?”

“ऐसा ?”

“हाँजी, माना कि सिनेमा जौयन करके एला ने अच्छा नहीं किया। लेकिन चौबीसों घंटे उसी बात को लेकर पीछे पड़ा रहना। आप दोनों साहब, कहिए क्या यह ठीक है ?” श्रीनाथ चुप रहे।

“ओ नन्दा, सुन बेटी, तुम्हारी बातें एला बहुत मानती है। जरा उसे समझाना कि सिनेमा छोड़ दे। मेरा गला सूख रहा है नन्दा।”

“अभी चाय लेकर आई मौसी।” वह चली गई। द्वार पर घण्टी टनटना उठी। नौकर रवीन्द्र का कार्ड लेकर पहुँचा।

“रवीन्द्र भला ऐसे वक्त क्यों आए ?” श्रीनाथ विस्मित हो रहे थे।

कमरे में प्रवेश कर खड़े ही खड़े रवीन्द्र ने कहा—“आपके घर गया था, नौकर ने कहा कि आप दादाजी के घर पर हैं, तो यहाँ चला आया। यह अच्छा ही हुआ, दादाजी के सामने ही सब बातें हो जाएँ।”

फिर सास के जिज्ञासू नेत्रों के प्रति देखता हुआ बोला—“देखिए, यह मेरी आखिरी बात है। समझीं न आप ? घर की स्त्री का सिनेमा में एक्टिंग करना मैं किसी तरह भी सहन नहीं कर सकता हूँ। लोफरों का अड्डा। या तो आप अपनी लड़की को समझाइए कि घर की बहू-बेटी की तरह रहे। सिनेमा में एक्टिंग, बालडान्स, ड्रिंक, यह सब मेरे घर नहीं चल सकता। वरना हाँ। यदि वे नहीं मानती हैं तो मैं अपना रास्ता सोच चुका हूँ।”

रवीन्द्र का स्वर भारी होने लगा, कहा—“सुनिए दादाजी, मैं एला

को क्या नहीं दे रहा था ? सन्दूक की चाबियाँ, रुपये, पैसे, मोहर'से लेकर स्नेह प्रेम-प्यार सब-सब । समझे आप ? वह प्रेम—”

रवीन्द्र की बात पूरी नहीं हो पाई, सुनन्दा चाय का कप हाथ में लेकर भीतर पहुँच गई । एक की दृष्टि दूसरे पर पड़ी । रवीन्द्र की जिह्वा उसके मुँह में ही अटक-सी रह गई और न जाने क्यों उस नारी के सामने अपने प्रेम की व्याख्या करने में रवीन्द्र का मन संकोच से भर उठा ।

चौधरानी ने खाजे का टुकड़ा मुँह में डालकर गरम चाय की चुस्की ली—“मेरी जान बची नन्दा, गरम चाय, आह ! और यह खाजे ? जरूर तुम्हारे हाथ के बने हैं, ऐसे खस्ता बने हैं कि क्या कहना ।’

व्यस्तता से श्रीनाथ ने कहा—“लक्ष्मी, रवीन्द्र को चाय नहीं दोगी ?”

और तब भी नन्दा को एक-सी स्थिर खड़ी देखकर वृद्ध पुनः बोला, “इन्हें खाजे नहीं खिलाओगी ?”

धीरे से सुनन्दा ने कहा—“आप, शायद मेरे बने हुए खाजे न खाएँ ।”

रवीन्द्र ने शीघ्रता से कहा—“नहीं । ऐसी क्या बात है ? लेकिन यह भी कोई चाय का समय है ?” किन्तु जब श्रीनाथ ने पुनः कहा—“चाय न सही, खाजे तो इन्हें खिलाओ ।” तब सुनन्दा को जाना ही पड़ा । प्लेट में दो खाजे लेकर लौटी । तिपाई पर प्लेट और पानी का गिलास रखकर बोली—“मैं वही सबेरे की आई हूँ, अब जा रही हूँ दादू ।”

खाजे खाए गए अथवा बिना खाए छोड़ दिये, इसे देखने के लिए साक्षी स्वरूप वह वहाँ खड़ी रहना नहीं चाह रही थी ।

सुनन्दा सब को नमस्कार कर कमरे से निकली । कागज पर लिखा—“मुझसे मुलाकात किए बिना घर से बाहर मत जाना ।” उस टुकड़े को मनीश के सिरहाने रखा, उसके बाद श्रीनाथ की कार पर घर पहुँची ।

[२२]

स्नान कर छत पर धूप में सुनन्दा बालों को सुखा रही थी, घने, लम्बे चँवर जैसे केश उसके मुख पर, पीठ पर लहराते। मनीश पहुँचा, उसके शव की नाईं विवर्ण मुख को देखकर नन्दा सिहर उठी, कहा—
“धूप में क्यों, चलें घर में बैठें।”

उसे कमरे में लेजाकर आराम-कुर्सी पर बैठाया, स्वयं एक कुर्सी पर बैठकर कहा—“पन्द्रह-बीस दिनों में यह कैसा चेहरा बना डाला है ?”

मनीश चुप रहा।

“कही बुखार तो भीतर ही भीतर नहीं हो आता है ?”

“भाभी ! तुम वहाँ क्यों, गइँ ? क्यों, क्या जरूरत थी इसकी ? वहाँ उतरी तो नहीं थीं भाभी ?”

मनीश के भीत मुख को देखकर सुनन्दा मन ही मन हँसी। फिर कहने लगी—“कार पर तो बैठी रही। आज तुम्हें मैंने क्यों बुलाया है, जानते हो ?”

“क्यों ?”

“कुछ बातें तुमसे तय करनी हैं।”

“मुझसे ? मुझ जैसे अवारा के साथ सुनन्दा को ऐसी कौन-सी बात तय करने की जरूरत पड़ गई ? मैं तो एक अपदार्थ हूँ।”

“अवारा हो ? अपदार्थ हो ? परन्तु उसी अपदार्थ की यदि किसी को जरूरत पड़ जाए तो ?”

“मेरी और जरूरत ? ऐसा कौन-सा अभाग है, जिसे मेरी जरूरत पड़ गई ?”

मुसकराती हुई नन्दा बोली—“एक तो मैं स्वयं हूँ।”

मनीश उस सामने बैठी रहस्यमयी नारी को मुग्ध—आतुरता से कुछ देर देखता रहा, फिर गम्भीर स्वर से कहा—

“मुझे सुनन्दा भाभी की जरूरत है। मैं तैयार हूँ भाभी, आज मुझसे बड़ा भाग्यशाली कौन हो सकता है !”

“पहले मेरी शर्तें तो सुनो” अगुली गणना करने लगी— “एक— शराब नहीं पीओगे, उस संगत को छोड़ दोगे। रोज दादू के साथ बैठकर भोजन करोगे। वे बेचारे तुम्हारे बिना व्याकुल हो जाते हैं। उनकी जिन्दगी ही अब कितनी बची है ? और रोज भाभी के पास आकर हाजिरी दे जाओगे। तुम अपने को इस तरह सर्वनाश और मौत की ओर क्यों ढकेल रहे हो ? और देखती हूँ मनीश बाबू कि तुम जवरन ही अपने को सर्वनाश की ओर खींचे लिए जा रहे हो। किन्तु क्यों ? क्यों ऐसा करते हो ? कहो ? क्या मैं गलत कह रही हूँ ?”

“तुम ठीक समझी हो। वास्तव में मैं अपने को सर्वनाश की ओर ढकेल रहा हूँ। क्यों ? तुम सुनना चाहती हो भाभी— क्यों ?”

“कह जो रही हूँ—सुनना और समझाना चाहती हूँ। और आज सब कुछ सुनकर ही रहूँगी। कहो ?”

“सब कुछ ! नहीं, सब कुछ सुनना न चाहो सुनन्दा, अपने मन की तलहटी में जिस चाह को, प्रेम को केवल अपने ही लिए रख छोड़ा है, उसकी दर्द भरी कथा सुनना न चाहो भाभी ! वह प्रेम जिसमें उच्छृंखलता न हो, जो कि केवल श्रद्धा से भरा हो, जो कि प्रतिदान की परवाह न करता हो, उसे सुनना भी तुम क्यों चाहो भाभी ?” विभ्रान्त दृष्टि से मनीश छत के ऊपर मुँह किए हुए कहने लगा— “शराब छोड़ूँ ? लेकिन वही तो एक चीज दुनिया में मेरे लिए बच रही है, जिसे पीकर अपनी व्यथा को भूल जाता हूँ। मेरी दर्द भरी कहानी ? उसे सुनकर क्या करोगी ? अगर दूसरा कोई वह सुनना चाहे तो शायद कह भी सकूँ। लेकिन तुम उसे न सुनना चाहो भाभी।”

तीक्ष्ण दृष्टि से सुनन्दा ने उसे देखा और देखने लगी। फिर मनीश के मुख पर आँखें गड़ाकर पूछा— “कहो, मैं सुनूँगी ?”

“सुनोगी, लेकिन क्यों ?”

“मेरी खुशी ।”

“कहूँ ? नहीं-नहीं माफ़ करो भाभी ! केवल इतना जानकर रखो कि मेरी तरह अभागे दुनिया में कम है जो कि जानबूझ कर भी अन्ध कूप में गिरते चले जाएँ । उनसे बढ़कर अभाग कौन हो सकता है ?”

एक की पीड़ा ने शायद दूसरे की व्यथा को उभार दिया । सुनन्दा के मन का प्राण उपविष्ट व्यक्ति के लिए रो-सा पड़ा । उसके मन की कोमलता आकार विशिष्ट-सी हो उठी, कहा—“क्या तुम्हारे इस दर्द को किसी भी तरह दूर नहीं किया जा सकता है ? क्या दुनिया में ऐसा कोई नहीं है— जो इसे हटा सके ?”

“इस दर्द को ?—एक है ।”

“वह कौन है मनीश बाबू, कहो । अन्ततः मुझ से तो कुछ छिपाया न करो । जिसे कि तुम भाभी कहते हो, उससे पर्दा क्यों ?” कहते-कहते नन्दा उठी । मनीश की आराम-कुर्सी के हाथ पर बै कर उसके रूखे बालों को हाथ से सहलाने लगी ।—“कहो, मैं अधीर हो रही हूँ मनीश बाबू, क्या सुनन्दा तुम्हारे दुःख का एक अंश भी नहीं बाँट सकती है ? क्या तुम्हारी भाभी को इतना अधिकार भी नहीं है ?”

मनीश ने आँखें बन्द कर लीं । स्वप्नातुर-सा, बेसुध-सा धीमे-धीमें वह लगा कहने—“एक तुम हो, जो कि सब कुछ कर सकती हो, तुम्हारा अपमान मैं कभी कर ही नहीं सकता । अपनी भार्या, पत्नी, सहर्षमिणी के सारे अधिकार देन के लिए मैं तो बाँह बढ़ाए खड़ा हूँ भाभी । लेकिन सवाल एक है—क्या नन्दरानी उसे स्वीकार करेगी ?” उन बन्द नेत्रों से दो बूँदें आँसू ढल पड़े ।

नन्दा ने सुना, बिना विस्मय के, बिना हिचक के, बिना सिहरन के उसने धीरता से सब कुछ सुना । और पहनी साड़ी के आँचल से मनीश के आँसू की बूँदों को उसने यत्न से पोंछा । कहा—“भाभी कहीं अपने

स्नेह के पात्र का अनिष्ट, ग्रहित कर सकी है ? और सुनन्दा ? सुनन्दा की बात तो वही जानें । वह कदाचित् तुम्हारे स्नेह के दान को स्वीकार कर घन्य हो जाती । परन्तु वह नन्दा जाने कब की मर चुकी है । अब जीवित है भाभी, तो उसे भाभी ही बनी रहने दो मनीश बाबू ।”

दीर्घश्वास लेकर मनीश ने कहा—“जाने दो । क्या कहा भाभी तुमने ? सुनन्दा उसे आदर से स्वीकार कर लेती ?”

हँसकर नन्दा बोली—“स्वीकार कर ही लेती, ऐसा तो मैंने नहीं कहा । कहती थी शायद कर लेती । कौन जाने ? और फिर सुनन्दा के मन की बात भाभी कैसे कह सकती है ? वह तो मेरा एक अनुमान मात्र था ।”

तृप्त मुसकान से मनीश बोला—“यथेष्ट, यथेष्ट, इतना भी क्या मेरे लिए कम है ?”

“ग्यारह बज रहे हैं । उठो, स्नान करो, मैं भोजन की व्यवस्था करूँ ।”

सन्ध्या होने में तब देरी थी । मनीश सोकर उठा । सुनन्दा चाय और जल-पान लेकर पहुँची ।

“पाँच बजे है भाभी, बाप रे, कितना सोया ? उठायो भी तो नहीं तुमने ।”

“सोना तो अच्छी बात है ।”—चाय और जल-पान का प्लेट रखकर नन्दा चाय का कप लेकर बैठी ।

“आज दोपहर में मैंने इतना खाया कि सिवा चाय के और कुछ न लूँगा । तुम्हारे हाथ का बना स्वादिष्ट भोजन खाता ही चला गया ।”

“तो मैं अच्छा बनाती हूँ ?”

“बहुत ही अच्छा ।”

“ऐसा ? फिर इनाम में क्या दोगे ?”

“जो भी चाहो ले लो ।”

“वही सबेरे की बात ? अजी, ऐसी जल्दी भूल गए ?”

“भूलना कैसा ? शराब पीना छोड़ दू ? यदि भाभो का हुक्म है तो वैसा ही होगा ।”

“अब सीधे घर चले जाओ । कहीं मत जाना । समझे ? दादू सोच रहे होंगे ।”

मनीश सन्ध्या बेला में चला गया । सुनन्दा खुली खिड़की से बाहर देखती हुई चुपचाप बैठी थी । तब पहुँची एला की कार । नन्दा ने उसे अपने निकट बैठा लिया ।

“जीजी, तुमने बुलाया था ? ममी कह रही थी कि कोई जरूरी काम है ।”

“बैठो तो सही, क्या बिना बुलाए नहीं आना पड़ता ? बस मुह ही से जीजी कहना है ।”

“ऐसा नहीं मेरी जीजी ।”

“तो कैसा ?”

“जाओ, जान बूझकर भी मुझे दुःख देती हो जीजी । नहीं, तुम उटो मत, मुझे चाय नहीं पीनी ।”

“बैठो तो सही । अभी आई ।” नन्दा उठी, स्टोव पर चाय बनाकर और एक प्लेट में बूंदी लेकर पहुँची ।

चाय पीती हुई एला बोली—“जीजी, अब मेरी जिन्दगी में जरा भी खुशी नहीं रही ।”

“ऐसा ? किन्तु क्यों ?”

“एक गन्दे विचार वाले आदमी से शादी कर मैंने कितनी बड़ी भूल की है, वह मैं ही अब समझ रही हूँ । मैंने और ममी ने दौलत देखी, सुख नहीं देखा, नहीं चाहा न ।”

“भूल शायद तुमने की हो, परन्तु अब जो कुछ कर रही हो, उसे क्या कहें ? भूल-पर-भूल ? या भयानक भूल ।”

“भयानक भूल कर रही हूँ मैं ? सो कैसे ?”

‘देखो एला, आजकल का यह विवाह। हां वही कह रही हूँ, जब कि वर और वधू पिता के घर के वातावरण में, अपने संस्कार में एवं वैसे ही एक समाज के रहन-सहन, रीति, व्यवहार में अभ्यस्त हो जाते हैं। आज की लड़की और लड़के की यथेष्ट अवस्था होने के बाद शादी हाती है। तब उसका स्वतन्त्र अपना मत, दृष्टिकोण, रुचि एक निराले ढंग की बनकर तैयार हो जाती है। कहो ठीक कह रही हूँ न ?”

“हूँ हूँ।” कहकर एला ने मस्तक हिलाया।

“परन्तु शादी करने के बाद गृहस्थ धर्म को निभाना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। नारी को माता बनना, यह तो उसका सबसे बड़ा गौरव है। ऐसी स्थिति में पति और पत्नी को जरूरत पड़ती है एक दूसरे के लिए थोड़ा बहुत त्याग करने की। यानी—एक दूसरे के लिए अपने-अपने दृष्टिकोण, रुचि में कुछ परिवर्तन करना कर्तव्य-सा हो जाता है। और यदि हम दाम्पत्य जीवन को सुखी करना चाहें तो हमें दूसरे मत, दूसरी सभ्यता, संस्कृति में, दूसरे संस्कार में अपने को अभ्यस्त करना ही पड़ जाता है।”

“ऐसा ? बिल्कुल असम्भव है।”

“क्यों एला ?”

“सोचो तो सही, इतने दिनों का अभ्यास, संस्कार कैसे छोड़ सकते हैं ? कहना सहज है जीजी, लेकिन करना कठिन है।”

“असम्भव नहीं है बहन। पाकिस्तान की निर्वासित स्त्रियाँ उदाहरणों स्वरूप हमारी आँखों के सामने हैं, जोकि एक अभ्यास के बदले दूसरे अभ्यास में अभ्यस्त होकर अब भी जी रही हैं। चिरदिन के अभ्यस्त वातावरण को, संस्कार, संस्कृति और मतवाद को खोकर दूसरो में अभ्यस्त हो चुकी हैं, जी रही हैं, जिएँगी। तो असम्भव कैसे कहा जा सकता है ? आदमी सब कुछ कर सकता है, पा सकता है, केवल नहीं पा सकता है अपने गत

जीवन को और बिछुड़े हुए यौवन को । उस गत जीवन और यौवन के लिए रह जाती हैं उसके पास केवल कल्पना की मीठी स्मृतियाँ । बहन, जो दिन चरम में पहुंचने के पहले ही चुक जाता है, वह छायालोक में मूर्ति लेकर फिरा करता है, फिरता है कल्पना-लोक के दिगन्त में । और उसी के सहारे आदमी जीता रहा आता है । समझी एला ? बस यही चीजें हैं—जो कि आदमी के हाथ के बाहर हैं । वरना वह यदि आन्तरिकता, दृढ़ता के साथ करना चाहे, तो मेरे विचार से बहुत कुछ कर सकता है ।”

“होगा भी । मुझसे तो नहीं होने का जीजी । सच कहती हूँ, अब उनका निकटत्व भी मुझे दुःखदायी लगता है । जिसके मन में मेरे लिए जरा भी प्यार नहीं, उसका घर मैं कैसे करूँ जीजी ?”

“क्या कह रही हो एला ?”

“सच कहती हूँ । मुझसे बातें करते-करते वे अनमने हो जाते हैं, लम्बे-लम्बे श्वास खींचा करते हैं । दूर से मैंने इनके हाथ में एक फोटो भी देखा है ।”

“फोटो ?” — कौतूहल से सुनन्दा ने पूछा— “किसका फोटो ?”

“शायद उनकी पहली स्त्री का हो, या तो कोई लव की स्त्री हो । एक दिन मैंने पूछा था कि उनकी पहली पत्नी क्या पाकिस्तान में मरी हैं ? वे कैसी थीं आदि । वे मुझसे ऐसे चिढ़े कि क्या कहूँ । कहने लगे— “उनकी चर्चा मैं तुमसे नहीं करना चाहता ।”

अनमनी नन्दा चुप रही आई ।

अपनी धुन में कह चली एला— “नहीं-नहीं, उन्हें मैं किसी तरह भी नहीं सह सकती, बाप रे बाप, हर बात में प्रतिबन्ध । प्रति पद में बाधा. यहाँ मत जाओ, वहाँ, मत बैठो । घर में कैदियों की तरह बन्द होकर रहो । मैं तो हैरान हो गई ।”

“फिर सहना तो तुम्हीं को है एला ।”

“नहीं सह सकती जीजी रानी ।”

“तो क्या करोगी ?”

“मैं अपनी जान दे दूंगी, मर जाऊँगी, ऐसे जीवन में मुझे नहीं जीना ।”

“हट पगजी ।” नन्दा ने बड़े प्रेम से एला का मस्तक थपथपाया ।
कहा — “ऐसी बातें नहीं सोचते एला । अच्छी लड़की मेरी एला । और
बहन सिनेमा छोड़ दो ।”

तुरन्त एला ने कहा — “ममी ने तुमसे ऐसा कहने के लिए जरूर
कहा होगा ।”

“नही तो ।”

“चाहे तुम अस्वीकार करो, मैं समझ गई । कुछ दिन पहले ममी
तुम्हारी छाया तक को छूने से घृणा करती थी, अब सहसा उन्हीं
सुनन्दा को देवी कहकर मानना. मुझे भोजना, मैं तो अभी वक्त समझ
गई थी कि कोई विशेष बात है । और मुनो जीजी, मैं मरूँगी ही जीजी ।
ममी से भी कह देना ।”

नन्दा खिल-खिलाकर हँस पड़ी — “कह मुनकर, गवाह साक्षी रख-
कर भला कोई कभी मर सका है ? लड़कपन छोड़ दो एला । बस ।”

एला भयानक चिढ़ी — “मुंह पर साफ-साफ कहने की आदत छोड़ दो
जीजी, यह भयानक असभ्यता है ।”

“ऐसा ? तो छोड़ ही दूँगी । एला रानी की आज्ञा, सच कहती हूँ
छोड़ दूँगी ।”

“सचमुच जीजी ?”

“हां बहन ।”

“तुमसे बक-भ्रक करते-करते गला सूख गया है । चलो जरा ताजी
हवा में घूम आएँ ।”

“चलो —” एला अत्यन्त प्रसन्न थी, कहा — “पहले किसी रेस्टोरेण्ट
में आईसक्रीम, शरबत आदि खाएँ । जल्दी करो ।”

वे दोनों चल दीं ।

[२३]

प्रातःकाल से सुनन्दा श्रीनाथ के घर काम में जुटी हुई थी। कल्पना को देखने के लिए वर-पक्षीय आने वाले थे। प्रातः की घड़ी काम-काज में कटी। श्रीनाथ ने अपने मित्रों को भी बुला रखा था। सबके जल-पान की व्यवस्था आदि करते-करते दो प्रहर बीतने लगा।

नन्दा बैठी पान लगा-लगाकर उन बीड़ों पर केवड़े का जल छिड़क रही थी। वह उठी, चाँदी का ट्र और पानदान अलमारी खोलकर निकाल लाई। पान के बीड़े पानदान में रखकर उस पर भीगा हुआ कपड़े का टुकड़ा ढाँका, और तब कल्पना को खोजती हुई उसके कमरे में पहुँची।

“ए राम ! तुम अब भी बैठी हुई हो ? उठो कल्पना, मुँह-हाथ धोकर बालों में कंधी करो। साढ़े चार बज चुके हैं, पाँच बजे सब लोग पहुँच जाएँगे।” और कल्पना को इतने पर भी बैठी देखकर नन्दा ने उसका हाथ पकड़कर उठाना चाहा।

“इसकी क्या जरूरत है ?”

“किसकी कल्पना ?”

“इस शादी-विवाह की ?”

“जाने क्या कह रही हो कल्पना। शादी के बिना नारी का जीवन अधूरा रह जाता है। और साथी के बिना उसका जीवन कैसे कट सकता है ?”

“क्यों नहीं ? क्या वह अपने आप में ‘बस’ नहीं है ?”

“यह बातें पीछे होंगी, उठो तो सही।”

अनिच्छा से कल्पना उठी, नन्दा के आदेशानुसार उसने सब कुछ किया।

कल्पना को साथ लेकर सुनन्दा झाड़ू-ग-रूम में पहुँची। वह कमरा आगन्तुक अभ्यागतों से परिपूर्ण था। वर अपने मित्रों के साथ आया

था। चौधरानी अपने पति, एला और रवीन्द्र के साथ उपस्थित थीं। नलिनी आदि कई स्त्री-पुरुष आए थे। मनीश सबका आदर-अभ्यर्थना करता।

कल्पना को सोफे पर बैठकर सुनन्दा ने जल-पान का ट्रे भृत्य के हाथ से लिया और सब के सामने नमकीन तथा मिठाइयों से भरी एक-एक तश्तरी और कटे हुए फलों की एक-एक तश्तरी रखने लगी। नौकरों से पानी लाने के लिए कहा।

समूचा राजभोग मुँह में रखकर वर ने कहा—“देखिए श्रीनाथ बाबू, अगर लड़की आपकी खूबसूरत नहीं थी तो यह बात पहले से कह देनी चाहिए थी। हम इतनी दिक्कत उठाकर यहाँ तक क्यों आते? मैं सुन्दर लड़की चाहता हूँ, अगर आपकी कोई खूबसूरत लड़की हो तो दिखाइए। क्योंकि मेरे विज्ञापन में तो यह बात साफ लिखी हुई थी। और हाँ, इम जैसी लड़की के लिए तो आपको ज्वर आदि के उपरान्त नगद बीस-पच्चीस हजार प्रीजर्व कर करना चाहिए। समझे श्रीनाथ बाबू ?”

श्रीनाथ उस असभ्य घृष्टता के सामने वाक्हीन हो रहे। मनीश के नेत्र क्रोध से उबलने लगे। और तब सुनन्दा ने उत्तर दिया—पहले वह कल्पना से बोली—“तुम भीतर जाना।” तब वर को देखते हुए कहा—“हमारे घर लड़कियों का व्यापार नहीं होता है महाशय, आपको कष्ट हुआ, क्षमा करें। और अब हम आपका मूल्यवान् समय नष्ट करना नहीं चाहते।,,

वर तथा उसके मित्रगण उठकर चल दिए।

रवीन्द्र ने कहा—“कल्पना की शादी करनी है तो मुझसे क्यों न कहा? मेरे मित्र हैं। यदि आप कहें तो उन्हें अभी लिवा लाऊँ, लड़की दिखावा दी जाए। परन्तु वे दूजवर हैं, उनकी पहली पत्नी छः माह हुए मरी है।”

जरा सोचकर श्रीनाथ ने कहा—“यह अच्छी बात है। लिवा लाओ :।” मनीश का क्रोध तब भी शान्त न होने पाया था—“तुम भी तो दादा जी—दुनिया भर के झूठों को घर में समेट लाते हो, कल्पना को जाने कहाँ से उठा लाए। वरना उन असभ्यो की हमारे घर आने की जरूरत ही क्यों पड़ती। आज घर बैठे एक अनजान हमारा अपमान कर जाए !”

चौधरानी ने कहा—“सच, बड़ा असभ्य था वह। जाओ रवीन्द्र उन्हें लेकर आओ।”

रवीन्द्र उठा, और कहा—“मेरे साथ यहाँ से कोई चलता तो अच्छा था।” सब के नेत्र मनीश पर जा गिरे।

निकट बैठी नन्दा की पीठ पर हाथ रखकर मनीश ने कहा—“तुम चली जाओ न भाभी, मेरी अच्छी भाभी।”

चाहे नन्दा के पीठ पर मनीश के हाथ रखने में कोई नवीनता न रही हो, और वह सदा ऐसा किया करता हो, चाहे यह बात दूसरों के नेत्रों में जरा भी विशेषता नहीं ला सकी हो, परन्तु एक वह रवीन्द्र,— न जाने क्यों उस छोटी-सी बात; मनीश का वह क्षुद्र बर्ताव उसके हृदय की ईर्ष्या को बाहर खींच लाया, ईर्ष्या से उसका मुख नीला पड़ गया

श्रीनाथ ने कहा—“मेरे घर की बहू-बेटियाँ इस तरह नहीं जाया करती हैं। तुम चले जाओ मनीश।”

बहू, बेटियाँ ? नलिनी मुँह फेरकर हँसी। तिरछी आँखों से रवीन्द्र ने मनीश और नन्दा को देखा। चौधरानी अपनी स्थूल देह को हिलाडुला कर उठी, दियासलाई टेबिल पर से उठाई, पुनः बैठकर सिगरेट सुलगाने लगी।

अनिच्छा से मनीश रवीन्द्र के साथ हो लिया। न जाने क्यों उसे रवीन्द्र का सान्निध्य अच्छा नहीं लगता था।

कुछ देर में मित्र के साथ वे दोनों लौटे। सुनन्दा कल्पना को नाने

के लिए भीतर गई ।

“कल्पना, उठो बहन ।”

कल्पना ने केवल उसकी तरफ देख भर लिया । उस रिक्त, सर्वशान्त दृष्टि को देखकर नन्दा सिहर उठी—“तुम्हें क्या हो गया है ? जरा ड्राइंग रूम में चलो बहन ।”

“क्यों ?”

उस मूक, नीरीह स्वभाव की लड़की को प्रश्नोत्तर करते देखकर नन्दा का विस्मय बढ़ता ही जा रहा था ।

“तुम्हे देखने के लिए एक सज्जन आए है, यो तो बातचीत में बहुत भले मानस लगते है ।”

“क्या मैं कोई प्रदर्शन हूँ—जो सबको अपने को दिखलाती फिरूँ, अपने को जंचवाऊँ ? मैं काली हूँ, कुत्सित हूँ और निर्धन हूँ, फिर भी आदमी हूँ, क्या मुझे मान-अपमान का बोध नहीं है ? कहो जीजी—कहो न ? क्या मैं कोई बर्तन या कपड़ा हूँ, जो कि ग्राहक आए और मुझे देख-भाल कर पसन्द करे ? मैं अपना और अपने नारीत्व का अपमान कहाँ तक कराऊँ ? मुझे माफ करो, अकेली रहने दो । साथी की जरूरत नहीं, मैं शादी नहीं करूँगी—नहीं-नहीं ! उन पशुओं से मैं शादी नहीं करूँगी,”—कल्पना के हृदय से रोदन का भरना भर पड़ा, फट पड़ा । वह सिसक-सिसक कर रोने लगी । व्याकुल होकर वह रोती ही रह गई ।

सुनन्दा उस रोदन की साक्षी स्वरूप मूर्तिवत वहाँ बैठी हुई नारी के नारीत्व के अपमान की दाह को अपने मन के कोने में सहेज कर शायद रखने लगी हो तो विस्मय नहीं ।

कुछ देर में कल्पना की सिसकियाँ बन्द हुई । एक सन्देह से नन्दा का हृदय आलोड़ित हो रहा था । कहा—“कल्पना मैं तो तेरी बड़ी बहन हूँ न ? मुझसे सच-सच कहेगी ? कहूँ ? क्या तू उन्हें चाहती है ?

मनीश बाबू को ?”

देरी देखकर श्रीनाथ ने उन दोनों को बुलाने के लिए मनीश की भेजा। दरवाजे पर पहुँचा मनीश जब कि सुनन्दा की बात समाप्त हो रही थी। अपना नाम सुनकर कौतुहल से मनीश द्वार के पर्दे के बाहर ही खड़ा रह गया।

“नहीं-नहीं-नहीं।” तीव्र स्वर से कल्पना कहने लगी—“वे मुझसे घृणा करते हैं और उस घृणा ने मेरी घृणा खींच ली है, जीजी ! एक ऐसे आदमी को मैं प्रेम करूँगी ? जो कि मुझसे घृणा करते हों। अवहेलना करें ? क्यों ? क्या मेरे मन की स्वामिनी मैं नहीं हूँ ? यदि ऐसे को मन ने प्यार भी किया हो तो परवाह नहीं। यदि मृत्यु के समय पिता जी ने उनके नाम पर मुझे दे भी डाला तो हानि नहीं। लेकिन इतना समझ रखो जीजी, कि किसी भी दिन ऐसे आदमी को तुम्हारी कल्पना पति कहकर स्वीकार नहीं कर सकेगी। मैं आदमी हूँ, मेरा भी मान-सम्मान है।” एक श्वास में इतनी डेर-सी बातें कर कल्पना जोर-जोर से श्वास लेने लगी।

और सुनन्दा उस विनीत, नम्र लड़की की उग्रता देखकर स्तब्ध हो रही। देर तक बात नहीं कर सकी। बाहर दाँतों तले ओंठ दबाकर मनीश खड़ा रहा।

“मैं भी एक नारी हूँ कल्पना ! नन्दा धीरे कहने लगी—“मेरा यह मन, मन की कोमलता पुरुष के अत्याचार से आज क्षत-विक्षत हो चुकी है। यदि सम्भव होता तो तुझे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिखा देती, वहाँ पर किस झटिका को दबाकर रखा है। हाँ, वहाँ रक्त लेखनी से लिखित नारी के वेदना के इतिहास को तू पढ़ती और समझती कि यह दर्द कैसा है ? किन्तु तो भी आज मुझे कहना पड़ रहा है—नर नारी के लिए विवाह विशेष प्रयोजनीय है। तू पूछ रही है क्यों ? इसके अनेक कारण हैं। इसके अनेक कारणों में प्रधान

एकं यह है—हमारी जनता, समाज आज भी ऐसा उदार नहीं हुआ है। यह जनता ऐसी शिक्षित, सभ्य नहीं हुई है कि संसार में युवती नारी अकेली रह सके। दूसरी बात प्रकृति का नियम, जब कि आदमी का यौवन जाग उठता है, तब हमारे शरीर की ग्रन्थियाँ उत्तेजित होती हैं और वही समय है जब कि नर को नारी की और नारी को नर की जरूरत पड़ती है। अपने को शेष-निःशेष कर डाल देने के लिए प्रयोजन होता है एक आधार का। यों तो विवाह द्वारा स्त्री-पुरुष के समाज की बन्धनी में बन्धन भी महत कारण है,—जिससे कि उसकी सन्तति एक व्यवस्थित धारा में चल सकती है। इन सब बातों को छोड़ दो। किन्तु आज भी हमारा देश ऐसा उन्नत नहीं है कि युवती या किशोरी निर्भय होकर अकेली जिन्दगी बिता सके। विशेषतः अपढ़ नारी की जीविका निर्वाह का प्रश्न तो पहले उठता है।

“क्षमा करो जीजी, मैंने सब कुछ सोच लिया है और मेरा अन्तिम निर्णय यह है कि शादी नहीं करूँगी। कभी नहीं करूँगी, ऐसा नहीं कह सकती हूँ, यदि कोई कभी सम्मान के साथ मुझे पत्नी का पद देगा तो उसे शायद श्रद्धा से स्वीकार कर सकूँ।” जरा ठहर कर पुनः कहने लगी कल्पना—“मुझे यहां से ले चलो जीजी, यहां के वातावरण में अपमान, परिहास भरा हुआ है। तुम नहीं जानती, यह वातावरण प्रतिदिन किस तरह मेरी आयु चूस-चूसकर जीवित रहने के दिनों को कम करता चला जा रहा है। अपने पास मुझे ले चलो। पेड़-पत्तियों की सेवा किया करूँगी।”

तरकारी के बगीचे को देखूँगी। गंदों का हार बनाकर बेचूँगी। बड़ के पत्तों से दोने, पतरी बनाऊँगी, गरीब की लड़की हूँ। माँ के मरने के बाद आप ही के साथ गांव में थी, वहाँ मूज के सीकों से टोकनी, पंखे, दरवाजे के परदे आदि बनाकर बेचा करूँ। मैं दिनभर बनाया करती थी, लाल-पीले धागे से उनपर फूल-पत्ती बनाऊँ और

हाट-बार के दिन पुराने कपड़े की गुड़िया, पंखे आदि सब बिक जाते । चिकनी मिट्टी की चिड़ियां, गुड्डी और जाने क्या-क्या बनाया किये । यह सब मैं तुम्हारे घर रहकर बनाया करूँगी, और दिन में एक बार खालूँगी, तुम्हारे लिए भोजन बनाऊँगी, गाय की सेवा करूँगी । सब कर लूँगी जीजी, क्या एक स्त्री इन सब से पेट नहीं भर सकती है ? मुझे यहां से ले चलो ।”

सुनन्दा—जो कि आश्चर्य किन्तु श्रद्धा से उस लड़की की बातें सुन रही थी, वह ऐसी अनमनी हुई कि देर तक उत्तर न दे सकी ।”

“मुझे आज ले चलोगी न ?”

“हूँ”—नन्दा बस ‘हूँ’ ही कह सकी ।

नन्दा कमरे के द्वार पर पहुँची । मनीश वैसा ही खड़ा था । वह वहाँ से हट न सका । क्यों ? इस रहस्य का भेद तो वही कह सकता है । जिस कल्पना को घृणा, अवहेलना से धूल की भाँति वह दूर फेंकता जा रहा था उसी कल्पना के मुख से अपने प्रति अश्रद्धा की बात सुनकर वह न जाने क्यों उसी दरवाजे पर चुम्बक की भाँति चिपका रह गया । परन्तु क्यों ? इस पहेली का भेद नहीं खुल पाया । चाहे उसका वहाँ रहना थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो, परन्तु मनीश अपनी उसी घृणास्पद के द्वार पर, उसके मुख से अवहेलना की कथा सुनने के बाद भी खड़ा रहा था, इतना तो सत्य है ही ।

नन्दा धीरे गति से बाहर आई । ड्राइंग-रूम में पहुँची, धीरे कहा—“कल्पना अकस्मात् बीमार हो गई है, अगले हफ्ते तक यदि वह अच्छी हो जाए तो आपको खबर दूँगी ।” सहसा स्वर से रवीन्द्र को सक्षय कर वह बोली ।

“ऐसा क्या डाक्टर बुलवा लिया जाए ? रवीन्द्र ने कहा ।”

“अभी तो जरूरत नहीं जान पड़ती ।”

और इस सहजता से रवीन्द्र के साथ बर्ताव कर सकने से नन्दा का

भारी श्वास हल्केपन में भर उठा ।

सब लोग जा चुके थे । कमरे में केवल श्रीनाथ और नन्दा रह गए थे ।

“कल्पना को क्या हो गया लक्ष्मी ?”

“कुछ नहीं ।”

“याने !” श्रीनाथ विस्मय से अवाक् था ।

“कल्पना शादी नहीं करेगी ।”

“शादी नहीं करेगी ? क्या कोई मजाक है ? हिन्दू घर की लड़कियाँ अगवारा हुई घूमेंगी ? उसके पिता उसे मुझे सौंपकर मरे, दुनियाँ मुझे क्या कहेगी ? और फिर उस कुंवारी लड़की को मैं घर में कैसे रख सकता हूँ ?”

शान्त प्रकृति के श्रीनाथ उत्तेजना के साथ चिल्लाकर, ही कह रहे थे । मनीश भागा हुआ पहुँचा ।

नन्दा कह रही थी—“जब कि स्वयं लड़की ही शादी नहीं करना चाहती, तब हम क्या कर सकते हैं ? किसी की स्वाधीन इच्छा पर हाथ उठाने का हमें अधिकार भी तो नहीं है । कल्पना छोटी नहीं है । अपनी भलाई-बुराई समझ सकती है । वह मेरे पास रहना चाहती है ।”

श्रीनाथ देर तक सोचते रहे । सच तो है, स्वयं अपने पौत्र मनीश की शादी क्या वे आज तक उसके मत के विरुद्ध कर सके हैं ?

“फिर तुमने रवीन्द्र से क्यों कहा कि कल्पना बीमार है ?”

“शायद पीछे वह शादी करने में राजी हो जाए । अभी तो नहीं मानी, कुछ दिनों के बाद मान भी तो सकती है न दादू ।”

“उसे अपने पास ले जाकर रखो, समझाती रहना ।”

सुनन्दा कल्पना को ढूँढ़ती फिरने लगी, परन्तु क्षण एक बाद देखा कि वह स्वयं ही अपने छोटे-से सूटकेस के साथ कार पर बैठी हुई है ।

“अरे, तुमने कितनी देर लगा दी जीजी, कार पर बैठे-बैठे मझे नींद

तक आ गई।”

“तुम्हीं को ढूँढती फिर रही थी। तो तुम सो भी लीं ? क्यों, कैसा सपना देखा ?” नन्दा मुसकरा रही थी।

“मेने ! हूँ, तुम्हें क्यों बतलाऊँ।”

“कह डालो।”

“मेने ? मेने देखा अपने भविष्य के सुख का एक चित्र।”

“सो क्या ?”

“मैं बैठी गजरे बना रही हूँ। गुड़िया और जाने क्या-क्या—और फिर शान्ति के दिन जीजी के साथ बीत रहे हैं।”

सुनन्दा स्नेह से उसकी पीठ सहलाने लगी। कार आगे बढ़ी।

[२४]

बुभता हुए दिवा प्रकाश। सुनन्दा आँगन में बैठी मिट्टी के दियों में रूई के पलीते रख रही थी। और कल्पना उनमें तिल्ली का तेल ढालती जाती।

“क्यों जीजी ? तुम कहती थीं, आज ही के दिन हिन्दुस्तान स्वाधीन हुआ था।”

“हां, तू एक बात को दस वक्त क्यों पूछती है ?”

लजाकर कल्पना ने कहा—“मेरी समझ में अब तक बात ठीक-ठीक आई नहीं। भला भारत की स्वाधीनता से इन दीपों का क्या मतलब ?”

“तेरा सिर। अरी बहन, ऐसे एक शुभ दिन का हम अभिनन्दन न करें ? उसकी वर्षगांठ न मनाएँ ? दीपों के हार से उसका स्वागत न करें ? उसकी आरती न उतारें ? मुद्दतों की गुलामी के बाद हिन्दुस्तान

स्वाधीन हुआ है। हजारों देशवासियों ने अपने को बली-वेदी पर चढ़ा दिया, तब कहीं यह स्वाधीनता मिल सकी। इस चिरस्मरणीय दिन को हम दीपों का हार पहनाकर स्वागत किया करते हैं। कल्पना, तो न करें ?”

“नहीं ?”

“नहीं ? तू कह रही है नहीं ?”—अद्भुत विस्मय से सुनन्दा ने कहा।

“नहीं, जिस स्वाधीनता ने भारतवर्ष के टुकड़े किए, ऐसी स्वाधीनता की जरूरत क्या थी ? जिस स्वाधीनता का दण्ड पाकिस्तान के रहने वालों ने भुगता, भुगत रहे हैं, क्या जरूरत थी ऐसी स्वाधीनता की और उसके स्वागत की ? मैं तो स्वयं कुछ जानती नहीं, किन्तु पाकिस्तान के उस कुत्सित अत्याचार की कहानी तुम्हारे मुँह से सुन चुकी हूँ। बापरे ! आज भी उस बात की याद से मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं। नहीं जीजी, इन दीपों की कोई जरूरत नहीं, इस खुशी का कोई मोल नहीं। हटाओ, फेंको, इन दीपों को।”

सुनन्दा ने दुखभरी हँसी हँसी—“ठीक है कल्पना, किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण में एक अव्यवस्था, खून-खराबी हुआ ही करती है बहन। देश की स्वाधीनता मँहेंगे मोल मिला करती है बहन। हिन्दुस्तान के वे टुकड़े फिर भी जुड़कर एक नहीं हो सकते हैं, ऐसा किसने कहा ? भविष्य में क्या होने वाला है, यह कौन कह सकता है ? तो फिर हम भारत की स्वाधीन सन्तान उसकी बन्दना क्यों न करें ? और फिर उस अत्याचार के लिए हम उस स्वाधीनता को दोषी भी तो नहीं ठहरा सकते हैं न।”

क्यों ?”

“कहा न, कि किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण के समय विशृङ्खलता उपस्थित होना स्वाभाविक है। उस नवनिर्माण के दिन हिन्दुस्तान के टुकड़े होना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु हठात् पाकिस्तान बन जाने से

वहाँ के आदिवासियों पर जो विपत्ति आई, उन पर सहसा जो अत्याचार हुए, यद्यपि वे रक्त-लेखनी द्वारा संसार के इतिहास में लिखे रहे किन्तु उस पशुतुल्य अत्याचार ने सारे संसार को चकित कर दिया है, यह बात सही है। उस वीभत्स अत्याचार की भावना, कल्पना इससे पहले मनुष्य शायद ही कर पाए हों। इन सब बातों के सच होते हुए भी हमें सोचना पड़ता है कि वह था राष्ट्रनिर्माण का दिन। यदि हम न्याय चाहते हैं तो किसी एक राष्ट्र विशेष नहीं वरन हमारी वह माँग, अभियोग और अभिसम्वाद है अपने ही समाज से।”

कल्पना की आँखें विस्मय से मानो बाहर निकली आ रही हों, पूछा—“क्यों ?”

“क्यों ? इसका छोटा-सा उत्तर भी मैं दे रही हूँ। तुम स्वयं मुझे देख रही हो न ? किस तरह घर और बाहर सबने अस्पृश्य की भाँति मुझे दूर हटा रखा है। यदि मैं पूछूँ कि मेरा अपराध क्या है ? तो वे क्या उत्तर देगे ? वे कहेंगे—तुम असती हो। मेरा उत्तर रहेगा कि मैं असती कब हुई और कैसे ? नहीं, वरना उससे पूछूँगी असती का अर्थ क्या है ?”

द्वार पर मोटर का हार्न बज उठा, नन्दा ने अन्तिम पलीता दीप पर रखा, हाथ धोए तब दरवाजे पर पहुँची। चौधरी साहब की कार थी, झाड़वर ने कहा—“मेम साहब ने जरूरी काम से आपको अभी बुलाया है।”

“ठहरो।” कहकर नन्दा भीतर आई, थाली पर दीपों को रखा, फिर कल्पना और वह दीपों को जला-जलाकर द्वार पर शृङ्खलता के साथ रखने लगीं। काली के चित्र के सामने धूप-दीप जलाया। फूल—बेलपत्रादि चढ़ाकर मिष्टान्नपूर्ण थालियाँ देवी के चित्र के सामने रखीं। आसन पर बैठकर नन्दा संध्या-वन्दना करती रही। बाहर पुनः हार्न बजा।

पूजा शेष कर सुनन्दा ने पड़ोस के बच्चों को बुलाकर एक-एक पेड़ा और सन्देश बाँटा। तब कँही जाकर गाड़ी पर बैठी।

चौधरानी अविन्यस्त केश-वेश से अपने उद्यान के लौह बेंच पर बैठी थी।

नन्दा का हाथ पकड़ कर अपने निकट आदर से बैठाया।—“बेटी, मैं लूट गई, एला ने मुझे मुँह दिखलाने लायक भी न रखा।”

चौधरानी के मुख से बेटी शब्द सुनकर उस एक दिन की भाँति आज भी नन्दा चौकी। फिर अपने को संयत कर पूछा—“क्यों, एला ने क्या किया ?”

“दो दिनों में वह गायब है, जमाई का कहना है वह विकटर के साथ भाग गई है।”

बीच में नन्दा ने टोका—“यह विकटर कौन महाशय है ?”

“अजी, वही सिनेमा का एक्टर। वह एक प्रसिद्ध अभिनेता है, क्यों, तुमने नाम नहीं सुना ? रवीन्द्र का कहना है,— अगर एला लौट भी आए तो अब वे अपने घर पर उसे जगह नहीं दे सकते हैं। याने एला को त्याग दिया।”

भ्रुकुटी तानकर नन्दा बोली—“विकटर के साथ वह गई है। एक मित्र के साथ जाने में पाप कैसे हो सकता है ? कह सकती हो मौसी ? विकटर से उसकी मित्रता होगी। क्या ऐसा नहीं हो सकता है ? स्त्री और पुरुष की मित्रता क्या कोई बुरी चीज है ?”

चौधरानी एकदम नन्दा से लिपट गई, सब कुछ की छुआछूत जाती रही, बोली—“बेटी! तुम जैसी बुद्धिमती लड़की मैंने तो अब तक नहीं देखी। इसीसे न अपने ऐसे संकट के समय मेरी आत्मा तुम्हें ही पुकारने लगी। ऐसा कोई मेरा अपना नहीं है—जो कि इस समय परामर्श दे।”

“चौधरी साहब क्या कहते हैं ?”

“अजी उनकी बात निराली है। मुझे तो ताने दे दे कर छेदे डाल

रहे हैं। मैंने ही लड़की को लिखा-पढ़ाकर बिगाड़ा है, इत्यादि। उनका कहना है, जानती हो नन्दा ? ऐसा बाप तुमने देखा है—जो कि घर से जो लड़की एक बार निकल गई उसे घर में नहीं रखा जा सकता है ?”

नन्दा स्तब्ध रही आई।

“नन्दा बेटा, अब ?”

“वह खराब काम ही करने को गई है, इसका भी प्रमाण है मौसी ?”

रवीन्द्र तो कहता है कि वह उन दोनों के प्रेम का प्रमाण भी दे सकता है। कुछ दिनों से एला विक्टर के साथ रहा करती थी। ऐसा रवीन्द्र का कहना है।”

“यह सब कल्पित बातें हैं। तुमने कम्पनी में जाकर एला का कुछ पता भी लगाया था मौसी ! कौन कौन अभिनेता, अभिनेत्री उपस्थित हैं, पूछा था ? एला ने मुझसे कहा था किसी चित्र का शूटिंग चल रहा है। कम्पनी में तुरन्त पता लग जाएगा कि बात क्या है ? गई थी तुम ?”

“अब क्या कहूँ। कल गई, लेकिन बाहर से लौटना पड़ा।”

“क्यों ?”

“बहुत-सी कारें वहाँ खड़ी थीं। काफी लोग वहाँ थे। न जाने क्यों मुझे संकोच लगने लगा। फौरन लौट पड़ी।”

जरा सोचकर नन्दा ने कहा—“मेरे विचार से इसी वक्त तुम्हें वहाँ जाना चाहिए—और यदि पता लग जाता है तो रात की गाड़ी से तुम्हें उस शहर में जाना चाहिए—जहाँ इनके जाने की सम्भावना हो। साचती हूँ—एला बाम्ने मिल जाएगी। किसी और सिनेमा कम्पनी में गई होगी, ऐसा हो सकता है। अभी कुछ नहीं बिगाड़ा मौसी, उसे जल्दी ले आना चाहिए।”

“मेरी बेटी! ”—“नन्दा का हाथ पकड़कर अत्यन्त अनुनय से चौधरानी कहने लगी—“तुम्हें मेरे साथ कम्पनी में चलना पड़ेगा । नाहीं मत करो नन्दा ।”

नन्दा उस बात को टाल न सकी । दोनों कार पर कम्पनी पहुँचीं और जिज्ञासा —वाद कर नन्दा ने निश्चय कर लिया,—हाँ एला बाम्बे गई हुई है ।

वरन मैनेजर ने कहा कि—“शूटिंग के समय विकटर और एला के चले जाने से भयानक हानि पहुँच रही है । और कन्ट्राक्ट भंग करना कोई छोटी बात नहीं है ।”

सुनन्दा ने बात को टाल दिया—वे विशेष काम से गए हैं, जल्दी लौटेंगे ।” आदि ।

चौधरानी जरा सुस्थिर-सी होगई, वापस निकलते-निकलते नन्दा ने कहा—“आज रात की गाड़ी से बाम्बे जाओ मौसी । और बहुत जल्दी उसे लेकर लौटो

कम्पनी के गेट के बाहर निकलते ही नन्दा की दृष्टि रवीन्द्र पर पड़ी, वह वृक्ष के नीचे खड़ा किसी अभिनेता से बातें कर रहा था । धीरे से चौधरानी ने कहा —“रवीन्द्र भी खड़ा है, एला के बारे में कुछ पूँछ-ताछ कर रहा होगा । उसने दृढता से कहा है कि उन दोनों में प्रेम है—इसका प्रमाण वह देगा ।”

“हूँ” ।—कहकर नन्दा आगे बढ़ी । वे दोनों रवीन्द्र की दृष्टि बचाकर निकल जाना चाह रही थीं । नन्दा सामने को देखती हुई आगे बढ़ी और रास्ते पर खड़े ताँगों को भी बुला लिया । वैसे ही समय जल्दी-जल्दी चलकर रवीन्द्र उनके निकट पहुँचा ।

पूछा “ताँगे पर क्यों ?” सास से रवीन्द्र ने पूछा—

“चौधरी साहब को बाहर जाना था, इससे कार वापस कर दी है ।”

“तांगे को वापस कर दीजिए, मेरी कार पर बैठीए ।”

चौधरानी और नन्दा ने एक दूसरे का मुँह देखा ।

चौधरानी बोलीं—“क्या जरूरत है । दस मिनट में तो तांगा घर पहुँचा देगा ।”

“नहीं जी, ऐसा नहीं, चलिए ।”

चलते चलते रवीन्द्र ने पूछा—“आप क्यों आई थीं ? और तुरंत अपने प्रश्न का मानो उसने स्वयं ही उत्तर दे दिया—

“अच्छा, एला की जगह आप इन्हें भर्ती कराने के लिए आई हो ।”

चौधरानी चुप रहीं, कदाचित्त जमाई के प्रति बढ़ते हुए क्रोध को दबा रही हों ।

“आपको कहाँ उतरना है ?”—यह जिज्ञासा थी सुनन्दा के लिए । इस बात को नन्दा अवश्य समझी, किंतु फिर भी जाने क्यों चुप रह गई । उत्तर दिया चौधरानी ने—“नन्दा का घर तुमने नहीं देखा ? जरा दूर है, पहले मुझे उतार दो, मुझे जरा जल्दी है ।”

रवीन्द्र द्विविधा में पड़ गया, इस बात को चौधरानी शायद न समझी हों, किंतु नन्दा समझी, अंधकार में चौधरानी नन्दा का मुख नहीं देख पाई ।

अकम्पित स्वर से सुनन्दा ने कहा—“मेरे लिए आप दिक्कत न उठाइए गुप्ता जी, वे सामने बहुत से रिक्शा खड़े हैं, आप जरा गाड़ी रोक दीजिए, रिक्शे पर मैं अनायास चली जाऊँगी ।”

प्रबल आपत्ति करती हुई चौधरानी अपने फाटक पर उतरी,—“नहीं—नहीं, एक तो रात, उस पर अकेली रिक्शा पर कैसे जाओगी बेटा । मोटर में जरा-सी देर में घर पहुँच जाओगी । और रवीन्द्र तुम्हें रिक्शे पर जाने ही क्यों देंगे ।”

क्षीण स्वर से रवीन्द्र ने कहा—“जरूर, आप मुझे रास्ता बतलाती चले ।”

अपने दरवाजे पर पहुँचकर नन्दा ने जंजीर खटखटाई, दौड़कर कल्पना ने द्वार खोला। किसी ओर देखे बिना ही वह नन्दा से लिपट गई—“आज तुमने बड़ी देर लगा दी जीजी, अकेले घर में मुझे ऐसा डर लग रहा था। कभी ऐसा—” कहते-कहते उमकी दृष्टि कार पर उपविष्ट रवीन्द्र पर पड़ी, दानों तले जीभ दबाकर बोली—“आप हैं ? आइए न दो मिनट के लिए रबी वावू।”

कल्पना को नन्दा के घर देखकर, विशेषतः उमकी बातचीत सुनकर रवीन्द्र ऐसा भी आश्चर्य मिश्रित कौतूहल में पड़ गया था कि बिना कुछ सोच विचार के उतर पड़ा। और उन दोनों के पीछे अंदर पहुँचा।

चहुँ ओर के दीप जल-जलकर निर्वाण की ओर जा रहे थे। यद्यपि कल्पना ने जीजी के लौटने की बेला तक उनमें तेल ढाल-ढालकर जलता रखने की चेष्टा की थी। फिर भी दीपों की माला तब तक मुरझा चुकी थी।

आँगन के तुलसी-मंच को घेरकर दीप जल रहे थे, गेंदा के फूल तुलसी की डालों में अटके सो से रहे थे। दालान में टंगी हुई काली की वृहत् मूर्ति के सामने धूप-दीप, पुष्प आदि वैसे ही रखे हुए थे। धूप की अग्नि निर्वापित थी, उस पात्र में पड़ी हुई थी— मुट्ठी भर राख मात्र। चित्र के गले में गैदे और चम्पा का मोटा गजरा लटक रहा था, मिष्टान्न पूर्ण थाल वैसे ही थे। रवीन्द्र ने चहुँ ओर मनोयोग से देखा, उसे लगा जैसे किसी योगिनी की साधना कुटीर में वह पहुँच गया हो।

मोठा जरा सामने खींचकर कल्पना ने कहा— “बैठिए न।”

रवीन्द्र बैठा, सहमकर बोला— “आप यहाँ कैसे आईं ?”

“यह तो मेरी जीजी है न। मैं यहाँ रहने लगी हूँ और रहूँगी भी।”

रवीन्द्र पुनः सब तरफ आँखें गड़ाकर देखने लगा।

नन्दा कमरे के अन्दर उजेला कर कुछ करने लग गई।

रवीन्द्र ने कहा— “अभी आप कह रही थी— अकेले घर में डर

लगता है, लेकिन जब आपकी जीजी सिनेमा में एक्टिंग करने जाया करेंगी, तब आप क्या करेंगी, कहिए तो ?”

कमरे से बाहर निकलते हुए नन्दा ने बात सुनी और चुपचाप वह प्लेटों में फल, मिठाइयाँ रखने लगी ।

“रवीन्द्र बाबू कह रहे हैं तुम सिनेमा में अभिनय करोगी ?”

“सच ? अरे सचमुच जीजी ? ओ जीजी, जवाब क्यों नहीं देती ?” अति व्यथातुर, आतंकित वह स्वर ।

“हाँ जी, क्या मैं भूठ कह रहा हूँ ? पूछो न उनसे, आज शायद वे भर्ती भी हो गई हैं ।”

“असम्भव ! वे सिनेमा देखना पसन्द नहीं करतीं, यों— एक्टिंग करना तो दूर रहा ।”

“पूछ क्यों नहीं लेती ? रात हो रही है, अच्छा तो...”

रवीन्द्र उठा । सुनन्दा, छोटे से टेबिल पर मिष्टान्नपूर्ण प्लेट रखने लगी ।

अधीरता से कल्पना ने पूछा— “जीजी, तुम सिनेमा में भर्ती हुई हो ? एक्टिंग करोगी ?”

सुनन्दा ने स्वाभाविक स्वर से उत्तर दिया— “सिनेमा ? किन्तु वहाँ जाने के लिए अब तक तो मैंने नहीं सोचा था, हाँ, यदि जबरन वहाँ भेजी जाऊँ तो दूसरी बात है ।”

रवीन्द्र को लगा, जैसे गिरती हुई बिजली कड़क कर कही समा रही । अपने अद्भ्य विस्मय को वह दबा भी नहीं पाया, कह उठा— “फिर सिनेमा कम्पनी में आप ! शायद और बात रही हो, वहाँ जाने का कोई दूसरा कारण हो ।”

“जी ।”— सुनन्दा के उस गंभीरता पूर्ण छोटे से उत्तर के निकट रवीन्द्र की जिज्ञासा मर मिटी ।

“थोड़ा प्रसाद लीजिए ।”

“प्रसाद ? अच्छा ।” उस नीरवता में रवीन्द्र ने मिठाइयाँ खाईं, जलपान किया और मौनता से दोनों हाथ उठाकर छोटा-सा नमस्कार किया और वह चल पड़ा ।

सुनन्दा जो द्वार बन्द करने गई थी, दरवाजे का पल्ला पकड़कर वहीं अकड़ी खड़ी रही । उसके नेत्र दूर, बहुतदूर आवद्ध हो गये । कार बहुत पहले दृष्टि से बहिर्भूत हो चुकी थी, कार का आरोही कबका अन्तर्ध्यान हो रहा था, किन्तु नन्दा की आँखें ? वह शून्य, सर्वशान्त, रिक्त, तिक्त दृष्टि तब भी, उसी सूने पथ पर पड़ी मानो महाशून्यता को पलकों में भर-भरकर एकत्र करने में लगी हुई थी ।

शायद सुनन्दा का अतीत, वर्तमान में मोटर की उड़ती हुई धूल में पड़ा माथा पीट रहा हो, या तो कदाचित्त उसका भविष्य उस सूने पथ की उड़ती हुई धूल की शून्यता को अपने सूनेपन में मिला रहा हो ।

“अरी जीजी, घण्टों से तुम यहाँ खड़ी हो !” और पथ के पोस्ट लाइट के प्रकाश में सुनन्दा के मुख के प्रति निहारकर कल्पना पाषाणवत् अचल हो रही । नन्दा को वह जानती-पहचानती थी, किन्तु जीजी के उस मुख से, उस दृष्टि से कल्पना का परिचय वह प्रथम बार ही हो रहा था न ।

[२५]

सुनन्दा गृहकार्य शेषकर आनाथ के घर जाने के लिए तैयार होकर बैठी । बहुत दिनों से नहीं जा सकी थी, नौकर पर नौकर पहुँच रहे थे, तो आज उसने जल्दी-जल्दी सब काम निबटा लिया, कल्पना को भी शीघ्र लौटने का वचन दे दिया था । दालान में बैठी-बैठी बड़े से फ्रॉम

में आबद्ध एक गलीचा बुन रही थी। कल्पना रंगीन घागों को काट-काटकर छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर उसके हाथ में दे रही थी।

“नमस्कार सुनन्दा देवी।”—उस हल्की-सी आवाज को सुनकर सुनन्दा ने मस्तक उठाया। नलिनी को बहुत दिनों के बाद अपने घर आते देखकर उसे अचम्भा हो रहा था। अपने विस्मय को दबाकर नन्दा ने उसे बैठाने के लिए इधर-उधर देखा। कल्पना पाँच मिनट पहले दूध उतारने के लिए चली गई थी, नन्दा उठी, कमरे से आसन लाकर बिछाया,—कहा “बैठिए नलिनी देवी। अच्छी तो हो न?”

“हाँ! क्या करूँ, वक्त ही नहीं मिलता कि आकर जरा बैठूँ। क्लब तो है ही, उसपर यहाँ-वहाँ डिनर, पार्टीं लगी ही रहती हैं, ऊपर नित चन्दे की माँग। कहीं ड्रामा का टिकट बेचो, कहीं कुछ का। और बहन, बस इन लोगों ने एक मुझे ही पहचान रक्खा है। मैं तो काम करते-करते मरी जा रही हूँ।”

“आप बाहर का काम किया करती है न, इसी से लोग आपके पास दौड़ते भी हैं।”

“ठीक कह रही है आप। क्योंकि कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपने क्लब की भी देखभाल नहीं कर सकती।”

“आप कौन से क्लब के बारे में कह रही हैं? अच्छा याद आ गया। फैंसी-सा कुछ नाम तो है। कैसा चल रहा है क्लब?”

“बहुत अच्छी तरह। इतने मेम्बर हो गए हैं कि हाल में समाते नहीं, मिस्टर और मिसेज चौधरी, मि० गुप्ता, मनी बाबू, इन सबको मेम्बर बना चुकी हूँ। मनीन्द्र बाबू तो कभी आते ही नहीं; लेकिन चन्दा दे देते हैं। अरे बहन सुना है?”

और नन्दा की प्रश्न भरी आँखों के प्रति देखती हुई—भौहें ललाट पर चढ़ाकर, नासिका सिकोड़कर नलिनी कहने लगी—“एला विक्टर के साथ भाग गई है। देखने में ऐसे सुन्दर और धनवान् मि०

गुप्ता उसे पसन्द नहीं आए। लिखी-पढ़ी लड़कियों का ेस्ट ऐसा ही हुआ करता है। कहीं वह लुच्चा, आवारा विकटर और कहीं मिस्टर गुप्ता ! यों देखने में विकटर अच्छा तो नहीं है। न जाने एला क्या देखकर उसपर मोहित हुई ! मि० गुप्ता ने तो साफ-साफ कह दिया है कि ऐसी बदचलन स्त्री को वे पत्नी कहकर नहीं मान सकते। बिल्कुल साफ कह दिया है।”—जरा दम लेकर पुनः नलिनी ने कहा—“और दूसरी बात तो आप जानती ही होंगी।”—नन्दा के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह कहने लगी—“दादा जी ने कल्पना को घर से निकाल दिया है। लेकिन क्यों निकाला इसे आप अच्छी तरह बता सकेंगे। बात तो कुछ-कुछ मैं भी समझ रही हूँ।”—कहकर नलिनी रहस्य पूर्ण हँसने लगी।

सुनन्दा चुप हो गई—एकदम चुप। एक नारी का दूसरी उसी की भाँति नारी के नारीत्व को नग्न कर, कुत्सित कर बतलाने की चेष्टा, उसे ऐसा भी अशोभन लगा, अस्वाभाविक लगा कि वह बात तक न कर सकी। इस बात को लेकर नलिनी के साथ वाद-प्रतिवाद करते उसकी आत्मा संकुचित हुई। प्रवृत्ति ही नहीं हुई कि वह प्रतिवाद करे। नन्दा के शरीर की नसे विरवित, विराग से तन-सी रही। उसका अपमान नारीत्व मानो अपमान की ज्वाला से दहकने लगा। वह नलिनी की तरफ से मुँह फेर कर दूसरी ओर देखने लगी, केवल देखती ही रही आई।

“अच्छा, तो आपने कुछ नहीं सुना ? शहर भर में इस बात की चर्चा है और आप नहीं जानती ?”

“कल्पना एक गिलास पानी दे जा बहन।”—तृष्णा से नन्दा का गला सूख रहा था।

पानी का गिलास लिए कल्पना पहुँची, विस्मय, पराजय से नलिनी उसे देखने लगी। लगा उसे—उसकी इतनी बड़ी हार विशेषतः नन्दा के

निकट वह प्रथम बार ही हो रही है। नलिनी को प्रतीत हुआ, सुनन्दा ने मुँह से कुछ न कह कर भी उस कल्पना को पुकार कर सब कुछ कह दिया है।

अपमान की वेदना ने क्रोध को खींच लिया। तीव्र स्वर से कहा नलिनी ने, “ओह ! आप तो मुझसे भी ज्यादा जाने हुई बैठी है।”

“मैं ? नहीं तो।”

“क्यों नहीं, जबकि कल्पना आपके घर है, तब तो बहुत कुछ से जानकार होंगी आप ?”

“नहीं बहन, कल्पना ही जबरन मेरे पास रहना चाहती है, यहाँ तक जानती हूँ। परन्तु दादू ने उसे निकाल दिया, यह नहीं जानती थी ?”

“हूँ”। मुख विकृत कर नलिनी ने कहा—“एला का विक्टर के साथ भागना आप और भी अच्छी तरह जानती होंगी।”

“नहीं तो।”

“नहीं जानती ?”

“वह मौसी याने अपनी माँ के पास है। बस इतना ही जानती हूँ।”

“ऐसा ! यानी आप कहना चाहती हैं कि वह भागी ही नहीं ? सम्भव है अब लौट आई होगी।”

“मैं तो कुछ भी नहीं कहना चाहती, जानती बस इतना हूँ कि एला पति की पत्नी है, भार्या, सहधर्मिणी है और बस।”

“अजी, उसी पति ने तो उसे त्याग दिया है न।”

“परन्तु ग्रहण करना और त्याग देना उतना सहज शायद न भी हो।”

“कौन जाने। आपकी पहली-सी बातें मैं नहीं समझती।”

“कह रही थी, एक बार किसी का दिया हुआ अधिकार कोई छीन भी कैसे सकता है ? मुँह से कदाचित् कोई किसी का त्याग करदे, परन्तु मन क्या उसे त्याग सकता है ? वही कह रही थी, त्याग करना उतना सहज नहीं है।”

कल्पना ने नन्दा को स्मरण दिलाया—“कब से दादा जी की कार खड़ी है। तुम जाओगी नहीं जीजी ?”

सुनन्दा उठकर खड़ी हो गई—“चलिए बहन, आप का घर तो रास्ते में पड़ता है, उतर जाना।”

बड़ उत्साह से नलिनी आई थी कि नन्दा के पास एला के विषय में और भी जानकारी कर लेगी। निराश होकर वह मन ही मन भयानक चिड़ी। ऐसी मुखरोचक आलोचना इस सुनन्दा ने क बात में बन्द कर दी। न जाने कैसी है यह नन्दा, फिर भी उसने पूछा—“कल्पना क्या अब आपके पास रहेगी ? मनीश बाबू ने क्या उससे शादी करने से इन्कार कर दिया ?” फिर भी वही प्रश्न, नन्दा कठिनाई में पड़ी। जरा सोच कर कहा—“क्या जानूँ बहन, किसी के मन की बात। यों उपस्थित कल्पना ने तो कुमारी व्रत ले रखा है।”

“कुमारी व्रत ? वह क्या ?”

“यानी वह कुमारी रह कर जनता की सेवा करेगी। हाँ, आपका क्लब कब से कब तक खुला रहता है !”

“६ बजे से आठ-नौ बजे तक, लेकिन कल्पना कब तक कुमारी रह सकेगी ? यह दिन बुरे है, आखिर एक दिन वह किसी के साथ चल न देवे।”

“देखा जाएगा यदि उसके मन में ताकत है तो वही शक्ति, वह ताकत उसका साथ देगी। और बहन, किसी की चर्चा मुझे अच्छी भी नहीं लगती। न मैं करना ही चाहती हूँ।”

नलिनी मुँह फेर कर बैठ गई और सुनन्दा खिड़की से बाहर देखने लगी।

‘दादू—दादू’ पुकारती हुई नन्दा अन्दर पहुँची। प्रवेश द्वार पर भेंट हुई मनीश के साथ। उसे देखकर मनीश ने मुँह फेरा एवं जल्दी-जल्दी चलने लगा। हँसकर नन्दा ने उसका हाथ पकड़ लिया—“ऐसी नाराजी और अपनी ही भाभी पर ?”

“भाभी-भाभी-भाभी । रहने दो कहीं की भाभी ? कैसी भाभी ? यदि सचमुच मेरी भाभी होती, यदि उस भाभी का मुझ पर स्नेह रहता, तो क्या ऐसा करती ? मुझसे न जाने कैसे-कैसे वचन लेकर, कि ऐसा करना—वैसा करना और मेरे घर हाजरी देना, यह सब मुभी से कहलाकर और अपने घर का दरवाजा सदा के लिए बन्द कर देना । क्या मेरी भाभी ऐसा कर सकती थी ?”

“वही तो, आज मैं देखने को आई कि चलकर देखूँ तो सही कि क्या बात है ? मनीश बाबू किस हद तक अपना वचन निभा रहे हैं । अजी मेरे घर आना तो तुमने जान-बूझकर छोड़ ही दिया, फिर क्यों ?”

“उलटा मुभी पर आँखें बतलाना, सच तो कहो—कि तुमने मेरा अपने घर आना पसन्द नहीं किया, या मैंने ?”

“ये तुम कह रहे हो, मैंने दरवाजा बन्द किया ?”

“जरूर । वरना मेरी आँखों की किरकिरी को तुम अपने घर रखती क्यों ?”

“आँखों की किरकिरी ?” और फिर बात समझकर सुनन्दा एक-दम खिलखिलाकर हँस पड़ी और मनीश उस हँसी को देख-देखकर क्रुद्ध होने लगा ।

“हँसी रुकी, तब नन्दा ने कहा—“क्यों ? क्या वह तुम्हें निगल जाएगी ? आखिर एक बिचारी सीधी-सादी लड़की से ऐसा डरना ?”

“क्या मैं उस घमण्डिन से डरता हूँ ? तुमने भी खूब सोच लिया भाभी । मैं और उससे डरूँ ?”

“घमण्ड ? नहीं, मनीश बाबू । उस बेचारी में कहाँ से घमण्ड आए ? हाँ, आत्म-सम्मान का बोध जरूर है । जो आत्म-सम्मान मनुष्य मात्र की श्रद्धा की वस्तु है । फिर सोचो तो सही, यदि मैं भी उसे न रखती । तो वह कहाँ जाती ?”

श्रीनाथ अपने कमरे से बाहर निकले—“लक्ष्मी की आवाज सुन

रहा था न ?”

“मैं आई दादू ।” नन्दा अन्दर गई । पहली ही उसकी दृष्टि आकृष्ट हुई गृह की अपरिच्छन्नता, अव्यवस्था के प्रति, वह काम में जुट गई । मनीश कई बार आया और लौट गया । भाभी अपने काम में ऐसी मस्त रही कि बात करना कठिन था ।

चाय के टेबिल पर वे तीनों बैठे थे ।

श्रीनाथ बोले—“एला को चौधरानी जी लौटा लाई है । वे कह रही थी, रवीन्द्र ने उसे त्याग दिया है एं एला ने स्वयं भी पति के घर जाने से इन्कार किया है ।”

‘एला स्वयं नहीं जाना चाहती ?’

इसमें आश्चर्य की क्या बात है भाभी ? जिस वातावरण में वह पली है वहाँ सच्चाई, वास्तविक स्नेह का नाम तक है नहीं । फैशन ही फैशन है । फैशन को जिन्दा रखने के लिए है चाह पैसों की, भूली न होगी भाभी, कि एला और उसके माँ ने केवल पैसों के लिए मि० गुप्ता जैसा पुराने चाल वाले आदमी को चुना । बस, सिर्फ पैसों के लिए । उपरान्त एक बार रवीन्द्र की शादी हो चुकी थी । मैंने तो सुना है उसकी पत्नी अब भी पाकिस्तान में जिन्दा है । सब कुछ देख-भाल कर एला ने शादी की । उस वक्त उसे पैसों की जरूरत थी । अब वह सिनेमा से लाखों रुपये कमा रही है । अपने प्रशंसकों के बीच अकेली एक रानी बनी रही आवेगी, बस ।”

सुनन्दा चुप रही ।

सन्ध्या समय सुनन्दा मनीश की कुर्सी से टिककर खड़ी हो गई—
“चलो मुझे पहुँचा आओ ।”

“कल्पना के रहते हुए उस घर में मैं नहीं जाता ।”

“चलो ।”

और नन्दा की उस आज्ञा की अवहेलना करते मनीश का साहस न

हुआ । उठा और नंदा के पीछे-पीछे चला ।

“भाभी, तुम मुझ पर अत्याचार कर रही हो ।” गाड़ी में बैठकर मनीश ने कहा । नंदा को हँसी आ गई, वह ऐसी हँसी कि हँसते-हँसते मनीश के कंधे पर लोट पड़ी ।

“ऐ भाभी, तुम्हें कितनी हँसी आ रही है । भाभी—ओ भाभी ।” वह हँसती ही रही ।

[२६]

लेकिन मुझे विस्मय है जीजी, आज ममी भी बदल गई हैं; कहती हैं सिनेमा छोड़ दो ।”

एला और सुनन्दा में बातें हो रही थीं ।

“ठीक कहती हैं ।”

सन्ध्या की छाया तब पेड़-पत्तियों में उतर रही थी । कल्पना सन्ध्या की छाया में भी उद्यान में काम कर रही थी । ऊपर की दालान में आराम-कुर्सी पर एला अघलेटी पड़ी हुई थी और मोड़ पर सुनन्दा बैठी उससे बातें करती जाती थी ।

गरजकर एला ने कहा—“ठीक कहती है ? लेकिन पहले जब मैं गई, तब उन्होंने क्यों नहीं रोका ? क्यों मुझे शाबाशी देकर आगे को बढ़ने दिया ? वे बाल-डान्स में अपने साथ क्यों ले जाया करती थीं ? मेरी इतने दिनों की आदतें अब कैसे छोड़ूँ ? अब कहती हैं जमाई को यह पसन्द नहीं, वह पसन्द नहीं, तुम यह सब छोड़ दो ? घूँघट निकालकर उनके घर जाओ, उनसे माफी माँगो । क्यों माँगूँ माफी ? जिसने पापा से साफ-साफ कह दिया कि आपकी लड़की को मैंने त्याग दिया, उससे मैं माफी माँगने जाऊँ ?”

“हानि ही क्या है एला ?”

“हानि क्या है ? जीजी, तुम, तुम भी कहती हो हानि क्या है ? मैं संन्यास ले लूँ ? सो भी किसके लिए ? एक हृदयहीन, प्रेमहीन आदमी के लिए ?”

“एला—”

“नहीं, मुझे कहने दो, आज मैं तुमसे सब बातें कहूँगी। शादी उन्होंने दुबारा क्यों की ? अब तक मेरे पास वह एक रहस्य रह ही गया, तुम सुनकर विस्मित होगी—“मुझ पर उनका रतीभर भी प्रेम, चाह नहीं है। केवल शारीरिक आवश्यकता मिटाने के लिए यह शादी का स्वाँग रचकर एक स्त्री की जिन्दगी बर्बाद जिसने की, वह मेरा प्रेम कैसे लूट सकता था ? मैं उनमें से नहीं हूँ, जो स्त्रियाँ अपने को क्रीतदासी समझा करती हैं। पति शराब पीकर रात भर वेश्या के घर रहे, लौटकर पत्नी का निर्यातन करे और वे सब अत्याचारों को सहकर उसी पति के पैरों से लिपटी रहें। ऐसी स्त्री से मैं घृणा करती हूँ। मेरी भी स्वाधीन सत्ता है। मेरा अपना एक अधिकार है। ऐसे पति को मैं प्रेम-प्यार कैसे कर सकती हूँ ? जबरन दिखलाऊँ ? जो कि मेरे मन में नहीं, वही सब जबरन दिखलाऊँ ? नहीं जीजी, अभिनय, नाटक स्टेज पर ही हो सकता है, शोभा भी देता है। घर, घर ही है। मैं सब कुछ कह सकती हूँ, सह सकती हूँ, लेकिन अपने आप के साथ अभिनय नहीं कर सकती, गड्ढे में नहीं ढकेल सकती हूँ।”

“हो सकता है यह सब तुम्हारे मन की भावना हो, वास्तव में वे तुम्हें चाहते हों। सोचो तो सही, पति-पत्नी पर प्रेम किए बिना कहीं रह सका है ? मनुष्य का स्वभाव है, अपने प्रेम को किसी एक आधार पर ढालना-चाहे वह आधार नर हो या नारी, शिशु, वृद्ध, पशु-पक्षी, जड़ पदार्थ, जो भी हो मनुष्य का स्वभाव स्नेही आ करता है। देखा जाता है—“शिल्पी का प्रेम उसी के शिल्प में पनप रहा है। कवि अपने को

कविता में लुटा देता है। वैज्ञानिक विज्ञान में खो जाता है, दार्शनिक दर्शन में, राजनीतिज्ञ की दुनियाँ वही हो जाती है, गायक स्वरों में रस भरने में अपने को लुटा बैठता है। और फूल ? वह तो अपना जो श्रेष्ठतर पराग है, उमी को भ्रमर को लुटाता है। और वही सुखी है एला, जो कि अपने रस को छान-छानकर लुटा सके। उस रस को कौमार्य के कलस में भरकर सुखाना,—“यह तो स्वभाव-विरुद्ध है न। वही कह रही थी, कि तुम्हारी बात कैसे मानू ? मेरी समझ से तुम गलती पर हो।”

“समझी, तुम्हारे कहने के अनुसार मान भी लिया जाए तो वह आधार, मैं नहीं हूँ।”

“तो ?”

“वह है वही फोटो की रूपसी।” और एला मुनन्दा को तुलनात्मक दृष्टि से देखती हुई सहसा ही कह उठी—“अरी जीजी, एक बार अचानक पीछे से उस फोटो को मैंने देख लिया था, ठीक तुम्हारी तरह फोटो की नारी भी है। मैं अच्छी तरह से नहीं देख पाई। तो भी जितना जो कुछ देखा, वह तुम्हारी तरह लगी। यह तो बड़ी विचित्र बात और अद्भुत मेल है जीजी !”

नन्दा के रक्त-शून्य, विवर्ण मुख के प्रति देखकर एला अत्यन्त व्यस्त हुई—“जीजी, क्या हुआ ? अचानक तुम ऐसी क्यों हो गई ?”

“मुझे चक्कर आ रहे हैं बहुत।”

“अरे ! है ! मेरी गोद में लेट जाओ।” — और वह फैशनेबुल लड़की एला, अपनी मूल्यवान् साड़ी की परवाह न कर जमीन में बै गई।”

नन्दा खिन्न हँसी और हाथ पकड़ कर पुनः उसे कुर्सी पर बैठाया, कह —“जरा-सा चक्कर आ गया था। अब ठीक हूँ। देखो तो सही, अपनी साड़ी तक तूने गन्दी कर ली।”

“कोई बात नहीं जीजी, कल दूसरी खरीद लूँगी। मैं सिनेमा में एक्टिंग करूँ और पैसों की परवाह करूँ ? वहाँ पैसों की कमी नहीं है। और जीजी, तुम्हारी जान से पैसे प्यारे नहीं हैं। यों तो मुझे हर एक कम्पनी से बुलावा आ रहा है। यह कहता है मेरी कम्पनी में आ जाओ, वह कहता है मेरी कम्पनी में। मिसेस भटनागर और मीराबाई तो कबकी खतम हो चुकीं। अब रही सुलोचना और मोती बाई, सो वे अब दो दिन की मेहमान हैं। मेरी इतनी ख्याति, ऐसा नाम हो रहा है और ममी कहती है छोड़ दो। सब छोड़-छाड़कर मैं योगिन बनकर बैठूँगी, सो भी एक लापरवाह आदमी के लिए ? जो आदमी एक दूसरी स्त्री के लिए पागल हो। सच जीजी, फोटो वाली सुन्दरी तुम्हारी तरह है।”

नन्दा चुपचाप सुन रही थी।

“न तो मैं सिनेमा छोड़ने की और न डान्स। पापा और ममी अगर ज्यादा दिक करेंगे तो उस घर को छोड़ दूंगी। वैसे तो विक्टर ने मेरे लिए एक हवादार मकान तलाश कर ही रखा है। पहले मैं क्या करूँगी जानती हो ?”

“क्या करोगी ?”

“उनपर नालिश करूँगी, अपना खर्च चलाने के लिए आधा रोज-गार उनका ले लूँगी। शादी की है, मजाक थोड़े ही है।”

सुनन्दा बोली धीरे—“किन्तु सिनेमा की तुम्हारी यह ख्याति, प्रशंसकों के उपहारों की भरमारा, उनकी प्रशंसा का स्तुतिवाद, यह सब है कितने दिनों के लिए ?”

सुनन्दा की बातों की तीक्ष्णता एला को बिद्ध करने लगी। वह चिढ़ी, झुंझलाई, और तो भी पूछा—उसे पूछना ही पड़ा,—“कितने दिन याने ? मैं तुम्हारी बात समझी नहीं।”

“कह रही थी, सिनेमा स्टार और उनकी ख्याति-प्रशंसा इत्यादि इन सब की जिन्दगी कितने दिन के लिए होती है ? जल पर के बुद बुदे

देखे हैं न ? नदी के स्वच्छ लहराते हुए जल से उठने वाले बताशे की तरह वे सुन्दर बुद बुदे । उनकी आयु कितनी हुआ करती है ? पल-पल में वे उसी नदी-जल के अतल में निश्चिह्न हो जाते हैं । उनके रिक्त स्थान पर दूसरे, तीसरे और चतुर्थ बुद-बुदे आते और जाते रहते हैं । तुम्हारी ख्याति, वह कब तक ? यौवन और रूप, इसका क्या विश्वास ? कभी कोई चिरयौवना बनी रह सकी है ? तुम्हारे इसी शरीर में तुम्हारा यौवन दिन प्रति-दिन तिल-तिल कर प्रति पल में धुलता चला जा रहा है और जाएगा, क्या इसकी खबर तुम्हें है ? अभी तुम देख नहीं पातीं, जान नहीं सकतीं किन्तु एक दिन जब दर्पण में सुन्दरी युवती के स्थान पर गतयौवना, स्फूर्ति-हीना नारी का अवयव अंकित हो उठेगा, तब ? तब आज की ख्याति प्राप्त सिनेमा एक्ट्रेस क्या उसे सहन कर सकेगी ? और उसके बाद तुम्हारे ही अनजान में तुम्हारे ही पुजारी, प्रशंसकगण, जो आज तुम्हारे चारों ओर भौरों की भाँति मंडरा रहे हैं, वे ही मुंह फेरकर हट जाएँगे । और उसके भी बाद ? वे तुम्हारी ही दृष्टि के सामने वे ही प्रशंसक दूसरी सुन्दरी, युवती पर भौरों की भाँति मंडराने लगेंगे । सिनेमा कम्पनियों में उस गतयौवना नारी का कोई आश्रय, कोई माँग नहीं रहेगी । तब उस अवहेलना को सहन कर सकोगी ? कल की पूज्य रानी आज की भिखारिन बनी कब तक जी सकती है ?”

एला की विस्मय-विस्फारित, आतंकित आँखों के प्रति देखती हुई सुनन्दा पुनः कहने लगी—“संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है । स्थायी है केवल मन की शान्ति । तो ऐसा काम किया ही क्यों जाए जिससे कि चिरदिन के लिए उस शान्ति को हम खो बैठें ? और बदले में उठालें हाहाकार ।”

“जीजी—”

“हाँ, कोई जानकर मरता है, कोई अनजान में । किन्तु तुम तो

आत्महत्या ही करने को बैठ गई हो एला ।”

“आत्महत्या ?”—एला इतना ही कह सकी ।

“हाँ, तुम आत्महत्या कर रही हो ।”

निरुत्तर एला उठकर खड़ी हो गई । उसे जाते देखकर सुनन्दा मुसकराई—“क्यों चिढ़ गई ?”

“नहीं जीजी, दो दिन से मुझे ज्वर चढ़ रहा है । आज ज्यादा लग रहा है ।”

सुनन्दा ने हस्त द्वारा उसके शरीर का ताप देखा, गरम था ।

“तुझे खासा बुखार चढ़ा है, घर जाकर लेट रहो ।”

दूसरे दिन सुनन्दा ने सुना कि एला पिता-माता से अलग होकर दूसरे मकान में स्वतन्त्रता से रहने के लिए चली गई है ।

[२७]

सुनन्दा झपटती हुई उस कमरे में पहुँची, जहाँ आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ मनीश शराब पी रहा था ।

बाहर श्रीनाथ का उदास, व्यथातुर मुख, भृत्यों का शशकित भाव नन्दा देख आई थी । गाड़ी से उसे उतारते हुए दादू ने रोदन रुद्ध स्वर से कहा था—“तुमने तो लक्ष्मी मेरे पास आना ही अब छोड़ दिया है, उधर तीन दिनों से मनीश अन्न-जल त्यागकर शराब पी रहा है । मैंने खुद समझाया कि शराब तेरे प्राण ले जाएगी, मत पियो इसे, तो उसने जवाब दिया—“यही चाहता हूँ, अब मैं अपने आप के लिए भारी हो रहा हूँ दादा जी ।” फिर भी समझाया तो आज मुझे उसकी भी भुभुलाहट सहनी पड़ी । कहता है—“अगर ज्यादा कुछ कहोगे दादा, तो मैं रास्ते पर बै जाऊँगा । तुम यहाँ से जाओ । मुझे अकेला रहने दो, कोई मेरा

साथी नहीं, कोई मेरा अपना नहीं है बस, यह बोलत और मैं।” देखो लक्ष्मी, कोशिश करो, अगर तुम उसे बचा सको। तीन दिन हो गए। उसके पेट में अन्न का कण तक नहीं गया।”

अन्दर जाकर नन्दा ने उस शराबी को देखा। आराम-कुर्सी के निकट गोल छोटे टेबिल पर रखी टुई थी व्हिस्की की बोटल, सोड़ा की बोटल और कई काँच के गिलास। और जमीन पर लुडक रही थी कई खाली बोटलें। दरवाजे पर दो मिनट खड़ी रहकर नन्दा ने भीतर का दृश्य देखा। निःशब्द गति से वह मनीश के निकट जाकर खड़ी हो गई।

मनीश ने अर्धखुली आँखों से उसे देखा। टूटे-फूटे शब्द में जड़ित स्वर से बोला—“यहाँ भी पहुँच गईं तुम? मायाविनी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? जो कि मेरी नशों में प्रेम की आग दहकाकर आप दूर हट गईं?” और वह हाहा-हाहा करके हँसने लगा—“सोचती हो मैं कुछ समझता नहीं, शराबी हूँ, पागल हूँ, कल्पना लड़की जिसकी छाया से मैं घृणा करूँ उसे ले जाकर अपने घर पर रखा है। सोचती हो मैं कुछ समझता नहीं? ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ। मेरा वहाँ जाना रोकने के लिए यह सब किया गया।” मदिरापूर्ण गिलास जग में उतारकर पुनः वह कहने लगा—“तुम्हें मैं चाहता हूँ, वह ठीक है। तुम क्या समझोगी कि वह कैसी चाह है? नहीं, तुम नहीं समझ सकोगी कि वह क्या है? मेरी जान क्यों न चली जाए किन्तु अपनी भाभी का अपमान नहीं कर सकूँगा। जिसे कि मन ने अपना कहकर मान लिया है, उसका अपमान करना कैसा? तब कल्पना को प्रहरी बनाकर अपने घर रखने की क्या जरूरत थी? कहो जवाब दो?”

जवाब? किन्तु क्या उत्तर देती नन्दा? केवल वह शून्य दृष्टि से मनीश को देखती ही रह गई। उसकी शिराएँ शून्य, स्पन्दन हीन हो रही थीं। क्या उत्तर देती नन्दा? अन्तरात्मा में न जाने कैसी व्यथा व्याप रही थी, जिसने कि उसके कंठस्वर तक को सुखी कर निस्तेज

कर दिया ।

मनीश अपने धुन में कह चला "मैंने तो तुम्हें सब कुछ दे रखा था, लेकिन तुमने क्या दिया ? केवल दूरत्व के एक अटल पर्वत के उस पार अपने को छिपाकर रखा । अपने जावन के रहस्य को भी मेरे पास रहस्य ही बनाकर रख छोड़ा है । तुमने क्या दिया है ? केवल दूरत्व ।" कहते-कहते मनीश उन्माद की-सी हँसी हँस उठा ।"

और हठात् वह बोला—“अरे ! क्या तुम डर गईं भाभी ? घबरा रही हो ? मैं तुमसे कुछ भी नहीं माँगता और न कभी मागूँगा । तुम एक शराबी को देखने आई हो ? तो देखो, जिस तरह मैं मरकर भी जी रहा हूँ ।”

नन्दा चुप थी, बिल्कुल चुप ।

मनीश जोर-जोर से कहने लगा — “क्यों, क्यों आई हो तुम यहां ? भाभी जाओ, मुझे शान्ति से रहने दो । मैं किसी की परवाह नहीं करता और न दुनियाँ में किसी को चाहता हूँ । न साथी है कोई । बस एक साथी है यह शराब । मुन रही हो नन्दा रानी ? दुनियाँ में शराब ही को चाहता हूँ । कौन कहता है मैं आत्महत्या कर रहा हूँ ? कहने वाला भूठा है ।” अपनी चाह की वस्तु सुरा आकंठ पीऊँगा ।”

पुनः मनीश ने सुरा गिलास में ढाली और उसे मुँह के पास ले जाना चाहता था । उसके हाथ काँप रहे थे । मस्तक नीचे झुक रहा था ।

सुनन्दा का बोधहीन मन अपनी स्थिति में लौट पड़ा । वह मनीश के निकट पहुँची और उसके हाथ से गिलास ले लिया ।

“मुझे पीने दो, तुम यहाँ से चली जाओ भाभी ।”

“तुमने बहुत पी लिया है, अब मैं पिऊँगी ।” वचन शेष कर नन्दा ने दूसरे हाथ से बोतल भी उठा ली एवं मुँह से लगाने लगी ।

विद्युत् स्पर्श की भाँति मनीश सजग हो उठा—वही मद्यप मनीश

उसके बन्दप्राय नेत्र उन्मुक्त नहीं हुए, वरन विस्फारित हो गए, हृदय का श्वास द्रतुतर हुआ। नशा जैसे किसी अलौकिक प्रभाव से अन्त-हित हो गया। अपने अशक्त शरीर को किसी प्रकार खींचकर सीधा होकर खड़े होते-होते सुनन्दा पर गिर पड़ा। नन्दा ने एक हाथ से उसे सँभाला।

वह आर्त—आतंकित मनीश, का स्वर—“नही-नही। यह क्या कर रही हो भाभी? मैं सब कुछ सह सकती हूँ लेकिन तुम्हारा शराब पीना नहीं सह सकूँगा।”

“क्यों?” मनीश को बैठाकर और निकट में बैठकर नन्दा ने पूछा। “क्यों?” मदिरा पूर्ण गिलास दब भी नन्दा के हाथ में था। जिसे कि वह अमूल्य निधि की भाँति कसकर पकड़े हुए पूछ रही थी—“क्यों? यदि तुम पी सकते हो तो मैं क्यों न पीऊँ?”

“मुझसे और तुमसे तुलना? भले के साथ बुरे की और सत् के साथ असत् की तुलना? तुम नन्दरानी जो हो, और मेरी भाभी हो, बस नन्दा भाभी बनी फूल के रथ पर बैठी रही। आओ भाभी, जिसे कि मैं जानता-पहचानता हूँ, और कभी फूल चन्दन का हार भी पहना दिया करता हूँ। कभी जिसे रात की चुप्पी में नन्दा, नन्दरानी कहकर चुपके-चुपके पुकार लिया करता हूँ, उसे आज मेरे साथ गन्देपन में मत उतारो भाभी। बहुत कुछ तुमने मेरा सहा है, मेरे सब अत्याचारों को तुम्हारा स्नेह गोद में उठा लेता है। आज मेरे विनय को रखो भाभी।”

“एक पतिता, लुटी हुई नारी देवी कैसे? क्या तुम मेरा इतिहास जानते हो? नहीं? तो मदिरा का उच्छ्वास, खुशी की मस्ती मत रोको। ढालो-ढालो, मैं पिऊँगी, जितनी बोटलें तुम्हारे पास हों; सब को गले में उड़ेलूँगी।”

“भाभी!”

उस अस्वाभाविक स्वर में कौनसा जादू था, कौन जाने, मदिरा

पूर्ण गिलास मुख के निकट ले जाकर भी मुनन्दा ने उसे उतार लिया ।
पूछा— “क्या ?”

“यदि पिऊँ ?” नन्दा ने पुनः पूछा ।

“तुम्हें मार डालूँगा, टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दूँगा ।”

“क्यों ?” नन्दा ने गम्भीरता से पूछा—“क्यों ?”

“आदमी सब कुछ देख सकता है, सह सकता है, लेकिन अपने
आराध्य का अपमान नहीं सहन कर सकता । देव-देवी, मन्दिर, मस्जिद
में स्थापित हो सकते हैं । वही उनका उचित और पावन स्थान है ।
कीचड़ और गन्देपन में नहीं । तुम शराब पीकर उस मन्दिर के शिव
का अपमान कर रही हो ।”

नन्दा गम्भीर चुप्पी में, स्तब्ध-विस्मित हुई मनीश को देखती रही ।
मानो उस के देखने का अन्त ही न रहा हो ।

“तो न पीऊँ—“देर के बाद नन्दा ने पूछा ।”

“नहीं, गिलास मुझे दो ।”

“और तुम्हारी मौत की साक्षी बनी मैं यहाँ बैठी रहूँ ? क्या बिगाड़ा
था मैंने तुम्हारा मनीश बाबू, जिससे कि इतनी बड़ी सजा आज तुम
मुझे दे रहे हो ? कहो, जवाब दो । तुम्हारे मरने की गवाह बनूँ मैं ?
दुनियाँ की सताई हुई एक अभागिन नारी, जिसे कि संसार ने मुट्ठी
भर धूल समझकर पैरों तले रींदा, और रींदा ही चला जा रहा है ।
फिर इन सब के बाद भी जिनने उसे अपना समझा और वह जिन्हें
मृत्युहीन उस स्नेह में स्नान कराकर तृप्त हुई, ऐसा एक स्नेहास्पद भी
आज उसे क्या देने बंठा है ? जीवनमृत रहने का अभिशाप, और
कठोरतर शास्ति । वैसी सजा लेने से पहले मैं ही क्यों न आकंठ
सुरापान कर आराम से सो रहूँ ?”

“भाभी, भाभी”—कहता हुआ मनीश एक प्रकार नन्दा से लिपट
गया, नन्दा के हाथ से गिलास छीनकर दूर फेंका और अपने तिरते

हुए शरीर को कुरसी पकड़कर थामे हुए बोतलों को उठा-उठाकर जोर से पटकने लगा—“लो पियो, पियो, पियो।”

नन्दा खड़ी देखने लगी, मदिरा पूर्ण बोतलों का टूटना। मदिरा को दुर्गन्ध से उल्टी आने लगी। किन्तु तो भी वह न हटी, न हिन्दी। केवल खड़ी रही, खुशी की हल्की-सी मूस्कान ओठों पर लिपट रही। बोतलों के टूटने की आवाज से दास-दासी एवं श्रीनाथ द्वार पर इकट्ठे खड़े हो गए।

अन्तिम बोतल फेंककर हाँफता हुआ मनीश बोला—“लो, अब पियो।”

मुनन्दा ने मनीश का पतनोन्मुख शरीर थामा एवं श्रीनाथ के सहारे, काँच के टुकड़ों से दोनों बचते हुए मनीश को उठाकर बाहर ले गए।

ठण्डे पानी की बाल्टियाँ जब मनीश के मस्तक पर उँडेली जा रही थीं, तब वह बेसुध था।

रात्रि में घर लौटते समय नन्दा ने श्रीनाथ से कहा—“डाक्टर कह गए हैं, अब डरने की बात नहीं है। तुम निश्चिन्त रहो दादू, मैं वचन देती हूँ, वे अब कभी भी शराब नहीं पियेंगे। मैं बहुत सवेरे पहुँचूँगी।”

“जल्दी आना लक्ष्मी, न जाने क्यों मेरा जी अब तक काँप रहा है। लक्ष्मी, मुझे लगता है, सब खराबी की जड़ वही कल्पना है। तुमने शायद स्याल न किया हो, जब से तुमने कल्पना को अपने घर पर रखा है, तब से मनीश ने एक तरह तुम्हारे घर जाना बन्द कर दिया। और घर में बैठा शराब पीता रहता है। सत्संग का भी तो एक प्रभाव पड़ता है, तुम्हारा सत्संग छूट गया।”

नन्दा ने कहा—“फिर किया ही क्या जाए ? कल्पना को हम फेंक तो सकते नहीं।”

वह शादी करने में राजी हुई ?”

“अब तक तो नहीं हुई, देखूँ ! तुम फिकर मत करो दादू, ईश्वर चाहेगा तो अब सब ठीक हो जाएगा ।

[२८]

मेघाच्छन्न आकाश तले धरती नीद भरी घ्रांखें खोल चुकी थी । वर्षा की हल्की-हल्की बूँदें धरती पर खेल-सी रही थी । उस खेल की साथिन थी हवा । वृक्ष-पल्लवों की मरमर ध्वनि में कोकिला की कूक किसी एक विचित्र रागिनी की सृष्टि करने में जुटी हुई थी ।

परन्तु यह सब देखने और सुनकर उपभोग करने का समय उस नन्दा लड़की को नहीं था । वृक्षों की सेवा तो वह चार बजे रात्रि में उठकर कर चुकी थी, तब घर-द्वार साफ कर कल्पना के उठने से पहले चाय, नाश्ता बनाकर और वस्त्र परिवर्तन कर तैयार हो चुकी थी । मनीश की दशा जैसा कि वह गत रात्रि में देख आई थी, उससे वह स्वयं ही अशांत थी । उस पर डाक्टर का कहना—“अतिरिक्त मद्यपान से दिमाग में खराबी पहुँच चुकी है ।” उसे रात भर सोने नहीं दिया ।

गाड़ी पहुँच गई । पान का टुकड़ा मुँह में डालती हुई सुनन्दा विस्मित हुई, कार किसकी आई ? ऐसा हार्न तो श्रीनाथ की गाड़ी का नहीं है । पत्र लेकर ड्राइवर पहुँचा—हाँ, चौधरानी ने उसे अविजम्ब बुलाया है ।

नन्दा ने कल्पना का जगाया, कहा—‘मैं चौधरी साहब के घर जा रही हूँ । दादू की कार आए तो चौधरी साहब के घर भेज देना ।’

“ऐसे सबेरे चौधरानी जी को कौन-सी जरूरत पड़ गई ।”

“कौन जाने। ‘विशेष प्रयोजन’ बस पत्र में इतना ही लिखा है।”

“तुम भी अच्छी हो जीजी, जब जिसने बुलाया, बस चल दी।”

क्या तुम्हारा वक्त-वेवक्त नहीं है ? बुलाने वाले भी अच्छे हैं।”

“लावारिस जो हूँ।”

“हर वक्त मजाक, चलो, रहने भी दो।”

मुसकराती हुई नन्दा चल दी।

गाड़ी से नन्दा उतरी, गेट पर सर्वप्रथम उसकी चौधरी से भेट हुई।

“इतने सबेरे ? क्या बात है ?” प्रातः भ्रमण से लौटे हुए चौधरी ने पूछा, बहुत दिनों के बाद चौधरी का वह सहज कंठ-स्वर सुनकर मन ही मन सुनन्दा प्रसन्न हुई।

“मौसी ने बुलाया है।”

“अच्छा !” कहकर सिगरेट मुँह में दबाकर चौधरी पुनः टहलने लगी, बोला—“वे बगीचे में अभी मिल जाएँगी। चाय पी रही होगी।”

उद्यान के फव्वारे के निकट गोल मेज पर चाय, केक, विस्कुट डबलरोटी के टोस्ट, मक्खन आदि प्लेटों में रखे थे। कई कुर्सियाँ पडी थीं। चौधरानी बैठी चाय पी रही थी। वह अकेली नहीं थी। नित की भाँति नलिनी पहुँच चुकी थी। नलिनी चौधरानी की चाय की साथिन थी—प्रातः और मध्याह्न में।

“आओ बेटा, उतनी दूर क्यों नन्दा ? मेरे पास बैठो,” और सुनन्दा के विरमय को उत्तरोत्तर बढ़ाकर अपने हाथों उसके लिए कप में चाय डाल कर एक प्लेट में हाफ बायल्ड ग्रण्डा आदि रखकर नन्दा को दिया। नौकर से कहा—“बाय, कल जो सोहनहलुग्ना का पार्सल देहली से आया था न, उसे खोलकर आलमारी में मैंने रख दिया है। उसे ले आओ।”

“चाय पीकर आई हूँ मौसी जी। आज दादू के घर जाना था, सो सबेरे ही सबेरे तैयार हो गई।”

“ऐसे सवेरे ? क्यों सब अच्छे तो है न ?”

“नही ! मनीश बाबू बीमार है ।”

“ऐसा ! अरे बेवकूफ कह जो रही हूँ कि सोहन-हलुआ का डब्बा उठा ला ।”

“आलमारी की चाबी ?”

“लो, आया से कहना कि खोलकर फिर बन्द कर दे ।”

कहकर नन्दा की ओर देखती हुई रहस्यमय हँसी-हँसकर चौधरानी ने कहा—“इस चोर को मैं चाबी देने चली ? नन्दा, केक तो खाओ, कल आर्डर देकर बनवाया है । आजकल प्लम केक आर्डर पर ही बनते हैं । बिलकुल ताजा है, यह लो हलुवा-सोहन तुम्हारे ही लिए मँगवाया है । उस दिन श्रीनाथ साहब के घर तुमने सोहन-हलुवा की तारीफ की थी । ओ नलिनी, तुम्हें क्या हो गया ? अगर हाफ वायल्ड अण्डे नहीं खाती तो पोज ले लो ।” और हँसकर बोली—“जानती हो नन्दा, नलिनी कहती है, पार्टी ने मेरा धर्म बिगाडा कि मुझ विधवा को मांस, मछली खिलाया ।” मैंने कह दिया—“कैसा धर्म, कहाँ का धर्म ? विधवा हो तो पेट के साथ दुश्मनी क्यों करना ।” चौधरानी ने बड़ा-सा हलुवा का टुकड़ा मुँह में डाला, फिर हिः हिः करके हँसती हुई कह चली—“और एला क्या कहती है मालूम है ? बड़ी नटखट है । कहती है—ममी, क्या यह छूत मार्ग समय-समय पर, वक्त देखकर बदला करता है ? मतलब के वक्त बनता, बदलता रहता है ।”—कहते-कहते दीर्घवास लेकर चौधरानी गंभीर हुई—“बेचारी लड़की सख्त बीमारी के पंजे में फँस गई है ।”

“क्यों-क्यों ?”—नलिनी तथा नन्दा ने समस्वर से पूछा । नलिनी ने कहा—“अभी कुछ महीने पहले सुना था एला को चेचक निकली है, यानी बड़ी चेचक । अब फिर से उसे क्या हो गया ?”

“क्या कहूँ ? मेरा भाग्य ! इसीलिए तो मुनन्दा को ऐसे सवेरे बुला

भेजा है। अगर एला को कोई संभाल लेगा तो बस यही नन्दा लड़की है, हूँ, मैं आदमी पहचानती हूँ।”

“आखिर उसे हुआ क्या है ?”

जानती ही हो रवीन्द्र ने उसे त्याग दिया है। इधर बाप ने कहा कि सिनेमा छोड़ दो, उसने साफ कह दिया—नहीं छोड़ूँगी। तब मि० चौधरी ने भी लड़की को त्याग दिया, यों कि मुझे तक एला के घर जाने की सख्त मनाई है। लड़की बेचारी का क्या कसूर ? उसने अपने लिए अलग घर लिया। वहीं रहती है। तो देखो न एला आज मरने को बैठी है, तो भी मेरे जाने का हुक्म नहीं, मानती हूँ कि उसने लड़कपन किया, तो भी एक बार देख तो आती ? हुक्म नहीं मिला। माँ हूँ, जी नहीं मानता।”

सुनन्दा विमूढ़, विस्मय से चुप रही, मन में उसके जाने कैसी-कैसी भावनाएँ उभर आई—माता स्वयं कह रही है कि सन्तान मृत्यु-शय्या पर है, तो भी वह जा नहीं सकती। क्यों ? हुक्म नहीं !—हुक्म कैसा जो कि माता को सन्तान की मौत-सेज तक जाने से रोक सके ! कैसी है वह माँ, जो कि बच्ची की मौत आई हुई जानकर भी घर में बैठी हलुआ-सोहन खा सके ! दूर खड़ी रही आवे और है भी कैसी यह सभ्यता ! जो कि माता लड़की के संकट के दिन में भी परम आराम से बैठी भोज्य-पदार्थों का स्वाद ले रही है !

“एला को क्या हुआ है।” एक समय नन्दा ने पूछा।

“अब क्या कहें ! मेरा भाग्य, उसे क्षय-सा हो गया है। नन्दा बेटा, मेरे तो जाने का उपाय ही नहीं, सुनती हूँ उसकी दशा खराब है, तुम जरा चली जाओ, कैसा क्या हो रहा है, नर्स है या नहीं सब व्यवस्था कर सकोगी, तुमसे ज्यादा क्या कहूँ। तुम जैसी बुद्धिमती लड़की सब कुछ कर लेगी।”

सुनन्दा उठकर खड़ी हुई।

चौधरानी ने कहा—“और नलिनी, तू भी जाकर देख आ ।”

माफ करो आन्टी, एक दिन गई थी, तब महामाई अच्छा हो चुकी थी, लेकिन एला ने मुझे नीकर से कहकर गेट पर ही से हटा दिया ।

“एला तो ऐसी लड़की नहीं है ।”

“नीकर से उसने कहलाया कि—मैं अब किसी से भी मुलाकात नहीं करती । नीकर ने बतलाया कि चेचक निकलने के बाद से वे किसी के सामने नहीं जाती । लेकिन मेरे साथ तो एला को ऐसा बर्ताव नहीं करना था । दूसरे लोगों से और मुझसे बराबरी ?”

नन्दा गंभीर उदासी से खड़ी सब कुछ सुन रही थी, बोली वह उसी उदासी में श्रोत-प्रोत सी—“आप नहीं जानती नलिनी देवी कि उस शिशु स्वभाव की लड़की पर आप कितना अविचार कर रही हैं ।”

“मैं ? वह तो मुझे अपमान कर दरवाजे पर से हटा देवे, और दोषी ठहराई जाऊँ मैं ? अविचार करूँ मैं ? उलटा जमाना है नन्दा देवी ।”

“ठीक है, परन्तु आपने सोचकर भी देखा था कि एला जैसी लड़की के लिए ऐसा बर्ताव कौन-सी स्थिति ने करवाया ! कारण क्या है ?”

“स्थिति ! कारण ! मैं समझी नहीं ।”

“आप के मुँह से सुनकर मैं सोचने लगी थी कि ऐसा बर्ताव करने का कारण क्या है ।”

“भला इसमें भी कुछ कारण क्या हो सकता है ?”

उत्तर दिया नन्दा ने, नलिनी को नहीं, किन्तु चौधरानी की तरफ मुँह करके—“हो सकता है चेचक ने उस सुन्दर आकृति को बर्बाद कर दिया हूँ । बड़े बाले चेचक थे न ? उस जैसी अभिमानिनी लड़की अपनी विकृत आकृति को छिपाकर रखना चाहती हो, किसी के सामने जाते शायद उसका आत्माभिमान, गर्व लॉछित होता हो, सोचो तो ऐसा भी

हो सकता है कि उस कुत्सित रोग के बाद उसके प्रशंसक वृन्द उससे हट गए होंगे जिससे कि उसका मन चूर्ण-विचूर्ण हो रहा होगा। अजी थोड़े ही दिन पहले जिसे कि धरती से मीलों ऊपर उठाकर रत्न-जड़ित सिंहासन पर बैठा दिया गया हो, और उस सिंहासन के चहुँ ओर शत-शत कंठों से उसके रूप, गुण आदि की प्रशंसा, ख्याति की ध्वनि में पुष्पों की वर्षा होती रही आवे, और फिर हठात् एक दिन वह रत्न-जड़ित सिंहासन सहित उसे मिट्टी के धूल में डालकर सब कुछ अतर्धान हो जाए, तब ? क्या आप लोग समझते नहीं हैं उस समय के उसके मन की परिस्थिति को ? वहन तर्क की दृष्टि से नहीं, परंतु आदमी के स्वाभाविक मन की भावना से तो जरा समझ सकने की चेष्टा करो।”

चौधरानी ने सहसा ही नन्दा को गले से लगा लिया। देर के बाद सुनन्दा ने कहा—“अब उसके क्षयरोग होने का कारण तो तुम समझ गई हो न मौसी ? नहीं ! असम्भावित आघात, निविड़ अतर्वेदना, और उपेक्षा। उठो मौसी, ऐसे समय मां कहीं दूर रह सकी हैं ? डर तुम्हें किसका है ? चाहे वहाँ न रहो, किन्तु अपनी आँखों सब कुछ देख समझ तो आओ, यदि माँ हाँ, तो तुम्हारे मातृत्व का अपना एक अधिकार है। एक सत्ता है। चलो।”

मन्त्र-मुग्ध की भाँति चौधरानी सुनन्दा के पीछे-पीछे चल पड़ी।

[२६]

भरे गुलाब की मुट्ठी भर मुरझाई हुई पंखड़ियों-सी एला पड़ी हुई थी पलंग पर। रेशमी जालीदार परदा उठाकर नन्दा कमरे में पहुँची। एला को देखकर वह सिहरी, चेचक मनुष्य को ऐसा कुत्सित कर देती है, इस बात की जानकारी इससे पूर्व नन्दा को नहीं थी। उसके सामने

पडा दृष्टा था हड्डियों का एक ढाँचा, उस ढाँचे पर गहरे-गहरे गड्ढों में धँसी हुई आँखें भयानक लग रही थी, सर के बाल भर गए थे। चौधरानी रो पडी।

एला ने आँखें खोलीं, उन दोनों को देखा और दोनों हाथों में मुँह ढकने लगी।

सहज—धीमे स्वर में नन्दा ने कहा—“एला, तू मुझे पहचानी नहीं ? तेरी जीजी और तेरी ममी तेरे घर आई, इधर तुम ही मुह ढाँको ?”

“मेरे इम कुत्मित मुख को मत देखो। जिस दिन मैंने आइने में अपने को देखा, डर गई जीजी, अब कभी भी आइना न देखूंगी। मुझे डर लगता है—बहुत डर, उस मुख को देखने के भय में देखो न बीमार तक पड गई। तुम लोग मुझे मत देखो।”

नन्दा मिरहाने बैठकर एला का मस्तक सहलाने लगी। आँखों में विस्मय भरकर नन्दा ने कहा—“न जाने क्या कहती हो, तुम्हारी बातें मैं समझी नहीं। हम दोनों तो तुम्हें पहले ही-सा देख रही हैं। हाँ, कमजोर जरूर हो गई हो।”

“सच जीजी ? सच ? मैं पहले की तरह हूँ ? मेरी जीजी भूठ नहीं कहती, भूठ नहीं कहती।”

“मेरी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है ? लो अपनी माँ से पूछ लो।”

चौधरानी कुर्सी पर, जरा दूर बैठी थी, कहा—“मैं तो बिल्कुल नहीं समझी नन्दा, एला जाने क्या कह रही है ? बीमारियों में कहीं चेहरा बदला है ? हाँ, कमजोर जरूर हो जाते हैं।” उसके मुख की नसेँ मिकुड़ी, शायद एला हैस रही हो।

“जीजी, जरा छोटा आइना तो दो, उस ड्रेसिंग टेबिल पर होगा बगल वाले कमरे में चली जाओ।” कहते-कहते एला रक्त वमन करने

लगी। चौधरानी चीख उठी। सुनन्दा ने कड़ी आवाज से कहा—“यह क्या कर रही हो मौसी? चुप रहो।” दौड़ कर सुनन्दा चिलमची ले आई। फिर उसे लिटाया, वस्त्र परिवर्तन कराया, चिलमची साफ़ की।

जरा दम लेकर, लजा कर एला ने कहा—“आज मैंने जीजी के कपड़े तक खराब कर दिए। चाबी मेरे सिरहाने से ले लो, आलमारी में ढेर-सी साड़ियाँ हैं, पहन लो।”

“तुम बात मत करो एला, मैं सब कुछ कर लूगी।”—पंखा झलती हुई नन्दा ने पूछा—“किस डाक्टर का इलाज हो रहा है?”

“किसी का नहीं।”

“क्यों?”

“इस कुरूप चेहरे को देखकर सब लोग घृणा से मुँह फेर लेंगे ना, मर जाऊँ तो मरने दो। लेकिन मैं किसी की घृणा नहीं सहन कर सकूंगी।

“हूँ” कहकर नन्दा उठी। दास-दासी यथेष्ट थे। एक को डाक्टर बुलाने भेज या, दूध गरम करवाया और आकर पुनः अपने स्थान पर बंठ गई।”

“दूध पीलो एला।”

“इच्छा नहीं है जीजी।”

“पीलो; बड़ी अच्छी है मौसी, अपनी एला।”

उसने दूध पी लिया।

“तुम कहाँ जा रही हो जीजी? मत जाओ, मेरे पास बंठी रहो। नहीं, सब चले जाएँ तो जाने दो तुम, बस तुम न जाना जीजी।”

“अभी आई एला, तेरे लिए फल मँगवा लूँ।”

“नहीं-नहीं, मैं नहीं खाऊँगी, कुछ अच्छा नहीं लगता।”

“अभी आई।”—कहकर सुनन्दा उठी, बाहर आई, नौकरों से फल मँगवाया। नर्स की व्यवस्था की।

कई डाक्टर पहुँच गये। भली भाँति रोग की परीक्षा शुरू हुई। एला ने बहुत आपत्ति की। परन्तु सुनन्दा ने एक ब सुनी।

बाहर निकल कर डाक्टरों ने कहा—“रोग यद्यपि कठिन है, अब-हेलना से प्रायः चरम में पहुँच रहा है। परन्तु तपेदिक नहीं है। रक्तपित्त है।” दो मर्स तथा पथ्य की व्यवस्था पर सुनन्दा उठी।

अधीर स्वर से एला ने कहा—“तुम—तुम भी मुझे छोड़कर चलीं जीजी ?”

“नही रे पगली, मैं तो रोज आया करूँगी, और जरूरत पड़ी तो यही आकर रहूँगी, आज अभी न जाती, लेकिन मनीश बाबू को देखना है।”

“क्यों ?”

“वे भी बीमार हैं न।”

सुनन्दा और चौधरानी कार के भीतर बैठीं—एक दूसरी से सटकर। परन्तु उन दोनों के कंठ में स्वर जैसे मूर्छातुर था। मौनता में पथ अतिवाहित होने लगा। लग रहा था चौधरानी को बात करने को, कहने-सुनने के लिए जैसे सब कुछ चुक गया है। अब उसके निकट कुछ भी अवशिष्ट बच नहीं पाया है। सब कुछ का अन्त हो चुका है, चुक गया है—शेष, निःशेष होकर। और सुनन्दा के मन का पता ? वहाँ का पता लगाना तो सब दिन की भाँति असम्भव ही रहा है।

हठात् चौधरानी अवरुद्ध स्वर से कह उठीं— “थायशीष जैसा भयानक रोग है, अब मेरी बच्ची नहीं जीने की। दो-चार नहीं बस एक यह एला ही थी, लाड़ली, दुलारी, मेरी एला, वह भी चली।”

उसके भरते हुए आँसुओं को पोंछकर नन्दा ने कहा— “थायशीष, थायशीष तुम क्यों कर रही हो मौसी ?”

“उसी पाजी रोग ने तो मेरी एला को मौत के मुँह तक पहुँचा दिया है।”

“नहीं। क्या डाक्टरों का डायगोनेसिस तुमने नहीं सुना ?”

“क्या कहा उन्होंने ? मैं तो एला के पास से उठी नहीं। क्या कह गये वे नन्दा ?”

“थायशीष नहीं, रक्तपित्त है, खाँसी उसे वहाँ है मौसी ? अब भी समय है। सेवा, चिकित्सा से वह अच्छी हो सकती है।”

“सच नन्दा ? उसे थायशीष नहीं है ? लेकिन मुझसे तो लोगो ने वही बतलाया था, और आज उस हड्डियों के ढाँचे को देखा, मुँह में खून निकलते भी देखा। तो क्षय नहीं है ?”

“नहीं। कहा न मौसी, कि अब सेवा और यत्न की जरूरत है। घर जाकर चौधरी साहब को सब बातें कहो। हुक्म कैसे नहीं है ? मैंने तो सुना है कि चौधरी साहब को आपत्ति होते हुए भी तुमने अपनी जिद्द पर एला को लिखाया-पढ़ाया था। तो जब उन छोटे-मोटे कामों को कर सकी थीं, तब लड़की के ऐसे संकट पूर्ण वक्त पर, हाँ जबकि उसके जीने और मरने का प्रश्न है, तब तुम किसी के हुक्म की प्रतीक्षा करोगी ? नहीं, मौसी, तुम माँ हो और तुम हो, बीस-पच्चीस वर्ष पहले की वही चौधरानी जी, तुम सब कुछ कर सकती हो, किसी का हुक्म लड़की के मरन-सेज पर तुम्हें नहीं रोक सकता है। चौधरी साहब को साथ लेकर आज ही एला के पास जाओ, यदि डाक्टर एला को उठाने की इजाजत दें तो उसे उठाकर घर ले आओ।

चौधरानी घर पर उतर गई।

श्रीनाथ के घर पहुँचते-पहुँचते नन्दा को दो बज गए। मनीश आराम-कुर्सी पर पड़ा अखबार पढ़ रहा था। नन्दा को देखकर उसने अभिमान से मुँह फेर लिया, किन्तु दादू ने भी जब वैसा ही किया, तब सुनन्दा हँसी रोक न सकी। कहणा भरी वह हँसी, अपनेपन के अधिकार के गवँ में गर्वित वह हँसी। हँस सकने से उसका जी कुछ हल्का हुआ।

उसे हँसते देखकर मनीश भयानक चिढ़ा ।

तब सुनन्दा अपनी देरी होने का कारण बतलाने लगी ।

“अब और भी एला के पास जाने की तुम्हें क्या जरूरत है भाभी ? उसके माँ-बाप, पति और पैसा, सब तो जरूरत से ज्यादा है ।”

श्रीनाथ बोले— “उपरान्त वह बीमारी खराब है, अगर तुम्हें भी हो जाए लक्ष्मी तब ?”

नन्दा मुसकराई, “नही दादू ।” और मनीश से बोला— “यदि उसे अपने जन सब लोग त्याग कर दें, तो अकेली उसे रोग यातना से छटपटाती हुई मरने दिया जाए ? आदमी होकर दूसरे एक आदमी के संकट में सब कुछ जानती हुई भी दूर हटी रहें ?”

“गलती है भाभी । ठीक उसे अपने आप किसी ने भी नहीं त्यागा, वरन् स्वयं एला ने सबको त्याग रक्खा है । अब उसके साथी न तुम हो, न हम लोग । साथी है बस वही सिनेमा-ससार । फिर तुम क्यों बेकार सिर-दर्द मोल ले रही हो ?”

“कैसी बातें करते हो मनीश बाबू ? यदि आदमी, आदमी के काम न आए, तो वह आदमी कहलाने के योग्य नहीं ।”

भुँझलाकर मनीश कहने लगा— “न जाने तुम काहे की बनी हो भाभी, लोहे की या पत्थर की, कौन जाने । इसी एला की माँ ने एक दिन तुम्हें बिना कसूर त्याग रखा था । देखकर मुँह फेर लिया करें, न जाने कैसा-कैसी मजाक करें, और आज उन्ही चौधरानी की सिनेमा-एक्ट्रेस तथा घर से भागी हुई लड़की की तुम सेवा करो ?”

“सच बात है मनी, बिना दोष के मेरी लक्ष्मी से वे घृणा करतीं, वे और नलिनी टीका-टिप्पणियाँ काटती, फिर उन्ही की लड़की की तू सेवा क्यों करे ? पाकिस्तान में न जाने कितनी ही बेचारी सती-लक्ष्मी का सर्वनाश हो गया । मेरी चले तो मुसलमानों को तोप से उड़ा दूँ ।” खिन्न हँसी नन्दा— “दादू, उन बेचारों का क्या दोष ? हम अपने घर

को तो पहले देखें, मुसलमानों का पाकिस्तान का अत्याचार कह-कहकर हम चिल्लाते हैं, किन्तु हमारे घर में, पर्दे का आड़ में एक अमानुषिक अत्याचार गढ़कर तैयार हो रहा है, और हो भी रहा है, उसकी भी कुछ खबर है ?”

“कैसा ?”

“यानी पूंजीपतियों का अत्याचार। आज हमारे समाज की बाग-डोर उन्हीं पूंजीपतियों के हाथ में है। आदमी भूखों मर रहा है। सुन्दरी युवती छीनी जा रही हैं। काले बाजार ने विश्व के हर्ष को ग्रसित कर रखा है। क्या तुम सोचते हो दादू, अत्याचार की अग्नि एक तरफ सिमटकर रह जाएगी ? नहीं, एक दिन वह आग्नेय गिरी का विस्फोट होकर ही रहेगा। किन्तु खेद ! तब शायद हमारा घर सूना हो जाए। कौन जाने ?”

श्रीनाथ और मनीश सिर हिलाते हुए हूँ-हूँ करने लगे।

नन्दा अपनी घुन में कह चली—“समझे दादू ? पहले तो हम अपना घर सँभाल लें, पाकिस्तानी अत्याचार ? वह तो होने को ही था। किसी भी राष्ट्र के निर्माण के समय उथल-पुथल, उलट-फेर कुछ हुआ ही करता है। कह रही थी यह पूंजीपतियों का खेल, यह तृष्णा।” जरा रुककर वह पुनः बोली—‘सोचती हूँ दादू,—उनकी यह कैसी तृष्णा है। रुपयों के पहाड़ों के नीचे वे दब चुके हैं, तो भी चाहिए रुपये। काले बाजार का व्यापार खोल रखा है। निर्धन अशक्त भूखों मर रहे हैं—अन्न और वस्त्र के बिना उन्हीं की मेहनत-मजदूरी से उपजाए हुए अन्न धनी व्यापारी काले बाजार की बदौलत से खरीद रहे हैं। हमारे ही देश का वह अन्न दूसरे देशों में जा रहा है। और हम श्रमिक हाहाकार को हृदय में दबाकर, भूखों मर रहे हैं। यदि भूख से बच भी गये तो अस्वस्थकर घर में रहने, अपुष्टिकर और हानिकर भोजन करने तथा अति परिश्रम से या तो हम तपेदिक के रोगी बन रहे हैं, या मलेरिया आदि के।”

“ओ भाभी, जरा चाय तो पीलो।”

सुनन्दा मुसकराई—“क्यों तुम्हें पीनी है ?”

“तीन बज गए हैं, कुछ ख्याल भी है ?”

नन्दा चाय बनाने चली तो मनीश ने कहा—“सूखी चाय तो मैं नहीं पीता ।”

“नहीं जी, सूखी चाय क्यों पिलाऊँगी ?”

“जाने कब से अण्डे के समोसे खाने को नहीं मिले ।”

“ऐसा क्यों नहीं कहते कि अण्डे के समोसे खाने हैं । अभी बनाकर लाई ।”

श्रीनाथ ने पूछा—“अब एला के पास कोई तो होगा न ? नलिनी तो जरूर ही होगी ।”

“नहीं ।”

“नहीं ?” श्रीनाथ अत्यन्त विस्मित हुए—“वह तो दिन-रात चौधरी साहब के घर रहने वाली है न ?”

“है तो, परन्तु तुम भूलते हो दादू ।”

“क्या ?”

“वह एला के घर कैसे आ सकती है ?”

“क्यों भला ?” मनीश ने पूछा ।

“क्यों ? वह सभ्य समाज की सभ्य सती है न ।” मुँह मोड़ कर हँसती हुई सुनन्दा चलती ।

[३०]

बेदाने का रस चम्मच से एला को पिलाती हुई सुनन्दा ने कहा—
“कहो—कहो, रुक क्यों गई ?”

सन्ध्या धरती पर उतरती चली जाती, दिन की नर्स अपनी ड्यूटी

शेषकर चली गई। रात वाली नर्स तब तक नहीं पहुँची थी। मनीश के निषेध पर नन्दा दो दिनों तक नहीं आ सकी एला के घर। सर्वदा मनीश उसे व्यस्त कर रखता। कहता—“भाभी, आज रसगुल्ले खाना है। बाजार के नहीं, तुम बनाओ, कभी कहता पानी दो। बापरे, सिर फटा जा रहा है मारे दर्द के, जरा वाम मल देना। उसे उठते देखकर कह देता—साबुदाने का पुडिंग तो हल्का होता है भाभी, बना दो।”

आज वह अपने बगीचे को देखने के बहाने भागी तो सीधे एला के घर पहुँची। वहाँ उसने सुना कि चौधरी साहब और चौधरानी नित प्रातः-सन्ध्या उसे देख जाया करते हैं।

एला धीरे-धीरे कहने लगी—“जीजी, क्या तुम सचमुच ही ज्योतिष जानती हो ?”

“क्यों भला ?”

“तुम्हारी बातों को सोचती हूँ तो मैं दंग रह जाती हूँ। तुम्हारी सब बातें सही निकलीं।”

“क्या बात है एला।”

“बात ? सिनेमा-संसार तो बस अलाउद्दीन का चिराग ही है। रूप और यौवन का साथी। पलभर में क्या हुआ, मैं कुछ नहीं जानती। चेचक निकलने से बेहोश थी। नौकरों ने अस्पताल शायद भेजा हो। शायद महीना भर के बाद घर आई होगी। तब ठीक से उठ भी कहाँ सकती थी।”

“चुप क्यों हो गई एला ? कहो—कहो।”

“यही वह पलंग है। नौकरों ने तकिए के सहारे बैठा दिया था।” एला के मोन मुख को देखती हुई नन्दा ने कहा—“एलारानी, यदि कहने में कष्ट होता हो तो मत कहो।”

कुछ देर आँखें बन्द कर पड़ी रही एला। फिर हठात् कह उठी—“नहीं, आज मैं सब कुछ तुम्हें कह सुनाऊँगी। मँनेजर साहब और उनके

साथ कई लोग मुझे देखने पहुँचे हैं, इसी घर में तो वे सब आए थे। पहले जाने कितने बार आए होंगे। बैठकर चाय पीते रहे; घण्टे के बाद घण्टा बीतता चला गया। लेकिन उस बार उनका आना बड़ा ही विचित्र रहा।

मुझे उन सबने देखा। तब आश्चर्य, मैंने उनके पलभर में परिवर्तित मुख भाव को देखा। नहीं, मैं समझा नहीं सकूंगी जीजी, कि वह वँसा परिवर्तन था।

डॉक्टर ने ? अजी उसने तो चेचक निकलने के बाद ही से मेरे घर आना छोड़ दिया था।

हाँ, मैंनेजर आदि आए। शायद कुछ कुशल-मंगल पूछी हों, मुझ याद नहीं। बहुत जल्दी चले गए। उनके व्यवहार से मैं विस्मित हुई जीजी। आखिर बात क्या है ? सोचती रही। लेकिन मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने आइना मंगवाया। आइना मेरे हाथ में था। मैंने उसे अपने मुँह के सामने उठाया, हाथ जीजी, वँसी कुत्सित आकृति शायद ही कभी देखी हो, आइना टूटने की आवाज से नीकर-चाकर दौड़ आए। और तब—“आह जीजी, सीने का यह दर्द।”

एला के मुँह से रक्त की धार बह निकली। मुनन्दा ने यत्न से धो-पोंछ कर उसे लिटा दिया। कहा, “ज्यादा मन बोलो एला, देखती नहीं हो, तुम्हारे बोलने से कँसी हानि पहुँच रही है ? क्यों, डॉक्टर इन्जैक्शन लगा गए थे ?”

“लेकिन क्या होगा अब इन्जैक्शन से ? बोल लेने दो जीजी। फिर शायद बात भी न कर सकूँ। तुम मत उठो, बैठकर मेरी बात सुनो। बहुत पैसा जोड़ लिया है मैंने ! मरते वक्त जान लिया है जीजी, पैसों से सुख नहीं खरीदा जा सकता।”

“सुनो तो एला, जरा चुप रहो।”

“बोल लेने दो जीजी, अब चुप ही तो रहना है। सब बातें, मेरी

दर्द भरी कहानी सुना लेने दो। तुम-सी जीजी कहाँ मिलेगी, जिसे दिल खोलकर सब कुछ सुना सकूँगी ? हाँ, आज मैंने वकील को बुलवाया है। विल बनवाना है। मुझे सम्पत्ति दान करना है तुम्हारे तत्वावधान में, उन रूप्यों से तुम पतिता स्त्रियों के लिए ऐसा कुछ बनवा देना, जिससे वे बेचारी, जिन्होंने न समझकर जिन्दगी में भूल की हो और पीछे जब अपनी गलती समझकर रो पड़ी हों, और जब उनके लिए सब दरवाजे बन्द कर दिए गए हों, एवं उसी एक छोटी गलती को बड़ी गलती बनाकर जिन्दगी को भूल ही भूल में बहने देने का बस एक ही रास्ता उनके लिए खोल दिया गया हो। उन स्त्रियों के लिए, ऐसी नारियों के लिए ऐसा कुछ बनवा देना जीजी, जिससे वे आराम से जिन्दगी बिता सकें। और वह एक भूल अनेक भूलों की सृष्टि में उन्हें ढकेल न सके। वे—अपनी भूलों को समझकर उसे सुधार सकने का समय पाएँ।” एला हाँफने लगी।

गम्भीर मनोयोग से सुनन्दा जोकि अब तक उसे देख रही थी, उसकी बातें सुन रही थी, वह सहसा ही पूछ उठी—“तेरा जी और क्या करने को चाहता है एला ? क्या और किसी को देखने की, किसी से बातें करने की इच्छा होती है। कहो। हाँ, सच कहो एला रानी।”

“मेरा !”—वह लजा कर चुप हो गई।

सुनन्दा ने देखी वह लज्जा की लाली। कुछ समझी हो शायद, कहा—“अपनी ही जीजी से और लजाना ?”

मुँह नीचे किए एला बोली गुनगुनाकर—“क्यों, इसी को प्रेम कहते हैं। कौन जाने ?”

“एला चुप मत हो।”

परन्तु एला चुप ही रही आई।

“और मुझी से शर्म। कह डालो बहन ! अन्ततः मुझे तेरी सब बातों से जानकार हो लेने दे।”

“कहू ?”

“कहो-कहो ।”

“कुछ दिनों से उन्हें देखने के लिए जी चाहता है। लेकिन यह प्रेम भी कैसा ? जिस व्यक्ति को मेरे लिए तिल बराबर भी चाह नहीं, न रही ही है किसी दिन, और ऐसे एक पर मेरा प्रेम ! अपने आपको डाँटती हूँ, धमकाती हूँ, छिः । उनकी बातों न सोचो ।”

“और तब !”

“वही तो कहना है तुम से । घर छोड़ कर आने के बाद से न जाने क्यों मेरा जी उदास हो उठता है । न जाने क्यों उनके लिए रात की चुप्पी में जी जाने कैसा करने लगता है । क्या इसे ही प्रेम कहते हैं जीजी ?”

रोमाञ्चित सुनन्दा चुपचाप सुनने लगी, सुनती रही और सुनती ही रही आई । जैसे इस सुनने का अन्त ही न हो ।

एक समय सुनन्दा उठकर खड़ी हो गई । कहा—

“जा रही हूँ, कल आऊँगी ।”

“इतनी जल्दी जाओगी ?”

“तुम्हारे वकील तो आते ही होंगे । मैं रहकर क्या करूँ ? कल जरूर आऊँगी ।”

सुनन्दा एक प्रकार भागती-सी कमरे से बाहर निकली, घर गई । जल्दी-जल्दी काम किया ।

कल्पना मचलने लगी—“मुझे रोज-रोज अकेली छोड़कर चल दिया करती हो जीजी । आज न जाने दूँगी ।”

हँसकर नन्दा बोली—“क्यों, डर लगता है ? शहर में कहीं शेर-शेरनी आया करते हैं ?”

“वाह जीजी । क्या मैं जानवर या आदमी से डरती हूँ !”

“तो ?”

“अकेले अच्छा नहीं लगता न जीजी ।”

“किन्तु तुमने तो अकेला जीवन ही पसन्द किया है । चुन लिया है । साथी तो तुमने मांगा नहीं । फिर दूसरा कहाँ से आए ! मैं ? और चिर दिन मैं जीवित रही आऊँगी, ऐस भी कोई बात नहीं । तब ? तब क्या करोगी कल्पना ?”

“तुम बहुत खराब हो जीजी, मरने-जीने की बात क्यों ?”

दोनों हँसी, दोनों ने साथ-साथ भोजन किया और नन्दा चल दी

उस अवेला में जब नन्दा एला के घर पहुँची, तब चौधरी साहब सपत्नीक पहुँच चुके थे । सुनन्दा के साथ श्री नाथ थे । एला की दशा खराब थी ।

नन्दा एला के निकट पहुँची । धीरे से उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी, एला ने धीरे से मस्तक उठाकर नन्दा की गोद में रख दिया । चौधरानी रूमाल से आँखें पोछ रही थी । हाथ हिलाकर दरवाजे पर से नन्दा को बाहर बुलाया । तकिया पर एला का मस्तक रखकर वह उठी, कहा— “अभी आ रही हूँ एला ।” नन्दा बाहर गई ।

आँसू बहाती हुई चौधरानी ने नन्दा का हाथ पकड़कर कहा— “बेटी, विपद के दिनों तो तुम्ही काम आती हो, और आ रही हो । एला की अन्तिम इच्छा यदि कोई पूरी कर सकता है, तो वह तुम । कौन जाने, शायद आज की रात न कटे ।”

“किन्तु मुझे विश्वास है, एला अच्छी हो जाएगी । दरवाजे पर नर्स मिली थी, कहती थी आज खून बिल्कुल नहीं गया । क्या कह रही थी मौसी ?”

“तेरी बात सच निकले नन्दा । जरा पहले डाक्टर आए थे, वह कह रहे थे—वह इतनी कमजोर है, तिस पर हार्ट खराब हो रहा है । हो सकता है कि चाहे किसी वस्तु फेन जाए । बड़ी सावधानी से रखने को कह गये हैं ।”

“ऐसा ? ईश्वर सब कुशल करेंगे । क्या कह रही थीं मौसी ?”

“एला की अन्तिम इच्छा रवीन्द्र को देखने की है । उसने मुझसे कल कहा था । मैं और चौधरी साहब तुरन्त उसके घर गये, विनय की लेकिन वह नहीं आया, ऐसा पत्थर-दिल आदमी मैंने तो नहीं देखा नन्दा ।”

फिर सुनन्दा के दोनों हाथ पकड़कर बोलीं—“नन्दा बेटी, तुम एक बार जाओ, मुझे विश्वास है, जिम काम म भी तुम हाथ दोगी, वह सफल होकर ही रहेगा ।”

नन्दा का मस्तक अपने आप नत हो गया । आज दुनिया उसे किस असाध्य साधन करने के लिये बाध्य कर रही है ?

“नन्दा, मेरी बेटी, एक बार चेष्टा करो ।”

नन्दा न मुँह उठाया—“मौसी मुझे माफ करो ! यदि मेरी जान भी एला के लिए जरूरत हो तो देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु वहाँ जाने को न कहो ।”

चौधरी साहब ने आवाज लगाई—“तुम कहाँ गईं ? सुन रही हो ? सुनन्दा देवी को एला बुला रही है, उन्हें भेज दो ।”

नन्दा पुनः एला के निकट बंठ गई ।

नन्दा के हाथ पर अपने अशक्त हाथ को रखकर एला मृदु-मृदु कहने लगी,—“जीजी, उन्हें नहीं देख पाऊँगी ? बिना देखे ही मरूँगी ? मेरी जीजी ! केवल दूर से एक बार देखना है ।”

नन्दा शून्य दृष्टि से केवल उस मृत्यु-मलीन मुख का अननुय सुनती रही । वह उन दीन नयनों की भिक्षा को देख रही थी, नन्दा का जी जाने कैसा कर उठा, उसे लगा, मृत्यु की छाया एला के कोटरगत नेत्रों में उतर आई है, एला का श्वास मानो पल-पल में रुक रहा हो । नन्दा ने दाँतों तले ओठ दबाया—क्या वह मौत के दरवाजे पर पहुँची हुई इस एला की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकेगी ? क्या वह अपने निजत्व,

अपने आत्माभिमान और अपनी सत्ता के गर्व में दूर खड़ी रखेगी ? अहं के अहंकार में मस्त रही आएगी ?

सुनन्दा के अन्तःकरण की किसी शक्ति ने मानो उसे झकझोर कर चेतन कर दिया । नन्दा ने तब एक विचारक की भाँति अपने निजत्व को हटाकर दूर कर दिया । और चुपचाप उठकर बाहर चलदी ।

नही, उसने किसी को प्रश्न-उत्तर करने का समय ही कहाँ दिया ? चौधरी साहब की कार पर जब वह बैठ रह थी, तब मनीश दरवाजे पर पहुँच चुका था ।

पूछा—“कहाँ जा रही हो भाभी ?”

नन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

[३१]

एक विचार-धारा में बहती हुई सुनन्दा चली तो आई सीधे रवीन्द्र के दरवाजे तक, परन्तु उसके बाद ?

नन्दा ने झटके दे देकर जैसे अपने को सतर्क किया । गाड़ी पर से उतरी, कागज का टुकड़ा बेग से निकाला, उस पर अपना नाम लिखकर नौकर को दे दिया । खड़ी रही आई वह फाटक के लोहे की छड़ों को पकड़े हुए । और जब उसका मन कुछ सोच सकने योग्य हुआ, तब उसके विस्मित नेत्रों न देखा स्वयं रवीन्द्र को । उसके स्वागत के लिए वह आया था ।

पूर्ण मौनता में दोनों अग्रसर हुए । कदाचित्त उस एक ही मौनता में गूंगे, बहरे चित्र अतीत के चित्रित हो रहे हों एक ही समय, एक ही पल में और समान आयु लिए हुए ।

“बैरो नन्दा, देवी ।” —मानो गहरे कूप से निकली हो रवीन्द्र की

आवाज । उस आवाज से सुनन्दा चौकी । परन्तु बाहर वह चकित भाव प्रकाशित न हो पाया, सुनन्दा बैठी । बिना भूमिका बाँधे बोली — “आप को जरा देर के लिए मेरे साथ चलना पड़ेगा ।”

“मुझे ? मैं तैयार हूँ, लेकिन कहीं ले जाना चाहती हो ?” नन्दा के मुँह का ‘आप’ सम्बोधन रवीन्द्र गड़ रहा था ।

“एक नारी की मृत्यु-शय्या पर ।”

“समझा । चौधरी साहब पति-पत्नी आए हुए थे । वे कल आए थे । क्या वही तुम ले जाना चाहती हो ?”

सुनन्दा जैसे क्रमशः अपने को खो-सी रही थी, कहा—

“जी ।”

रवीन्द्र के जीवन में विस्मय पर विस्मय आता, ही चला गया था सो ठीक है । सही है । परन्तु विस्मय ऐसा अद्भुत, या असम्भव भी हुआ करता है, इस बात से उसका परिचय हो रहा था वह प्रथम बार ।

सोच उठा रवीन्द्र, यह सामने बैठी हुई नारी क्या वास्तविक नारी ही है ? जो कि स्वेच्छा से सपत्नी के सिरहाने अपने पति को बुलाने के लिए आई हुई है ? क्या इसका मन केवल फौलाद से बना हुआ है ? अथवा पत्थर से ? माना कि विधि विडम्बना से आज वे दोनों अलग-अलग कर दिए गए हैं । एकदम अलग, यहाँ तक कि वे दोनों शायद उस परिचय की छाया तक से अब चकित हो उठते हों, ऐसा परिचय जो कि आज सामाजिक प्रत्येक साक्षी को मिटाकर केवल मात्र दो ही हृदय की साक्षी मात्र में सीमित रह गया हो । किन्तु एक दिन जो प्रेम की आवाज उठी थी उन दोनों के मन में उसका विनाश कहाँ ? वह तो मृत्युहीन है न ? मनुष्य के स्नेह का विनाश कहाँ ?

तो ? क्या इस नारी के मन का स्नेह एकदम जलकर राख बन गया है ? माना कि वह नन्दा की रक्षा न कर सका । एला से शादी तक कराली । लेकिन वह मौखिक विवाह ही क्या सब कुछ हो सकता है ? नहीं-नहीं !

आदमी हर वक्त जो मुँह से कहता है ; उसका मन, हाँ मन से वह मुख का साथ नहीं देता। दृष्टान्त वह स्वयं है। वरना अब भी सामने बैठी हुई नारी के लिए हठात् रवीन्द्र हँस उठा—“तो उसी एला के लिए मुझे बुलाने आई हा ? परन्तु मैं उसे त्याग चुका हूँ।”

सुनन्दा सहमी, अपने पल भर के गुमे हुए मन को उसने खोज निकाला। फिर स्वाभाविक गंभीरता से कहा—“आपने त्याग दिया ? किन्तु एक दिन उसी एला को पत्नी और सहधर्मिणी कहकर ग्रहण किया था आप ही ने। यह तो असत्य नहीं है।”

“ठीक है, लेकिन उसकी करतूतों ने उसे त्याग करने में मुझे बाध्य किया था। उसे मैंने त्याग दिया।”

“कह रही थी ग्रहण आप ही ने किया था।”

‘हाँ, लेकिन उससे क्या ?’

रवीन्द्र की भ्रूललाहट नन्दा ने देखकर भी न देखी, मुन कर भी न सुनी। कहा उसने वैसे ही सयत स्वर से—“ग्रहण का जो एक प्राण हुआ करता है न, उसे कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है ? उसकी मौत नहीं। क्या आप कह सकते हैं कि आपकी धमनी के रक्त में वह कभी अपनी सत्ता का सन्देश नहीं दिया करता है,—हाँ ग्रहण का वह प्राण ?”

और तब रवीन्द्र के मौन मुख के प्रति देखती हुई बोली—“इन बातों को जाने दीजिए। आज का सत्य है—एक नारी अपने मरन-सेज पर आपको देखना चाहती है, सो भी दूर से। केवल एक वार वह देखेगी—बस, मनुष्यता के नाते क्या इसकी आप अवहेलना कर सकेंगे ?”

रवीन्द्र ने मस्तक अवनत कर लिया।

उत्तर की प्रतीक्षा में छोटी घड़ियाँ सुनन्दा के निकट दीर्घतर हो उठी। और एक समय वह उठकर खड़ी हो गई। रवीन्द्र को देखती हुई बोली—“चलिए, बस उठिए।”

वही जिद्दी बालिका-सा पुरातन उस स्वर का आभास। दोनों ही

के अनजान में वह आवाज शायद उनके मन को स्पर्श करने लगी। चौंक-चौंक कर, रोमाञ्चित होकर सुना उस आवाज को रवीन्द्र ने। देखा उस तेजस्विनी नारी को। और तब आच्छन्न की भाँति वह उठकर खड़ा हो गया।

“चलो, कहीं लिए चल रही हो” और रवि गुनगुना कर कहने लगा, मानो आने आप को सुना रहा हो - आज भी उसकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सका। कोई चीज चुककर भी नहीं चुकती, जिसे सोच लिया था शेष हो चुका है। किन्तु कहीं ? उस शेष का भी निशेष अब भी बाकी है। मौजूद है। जिन्दा है। उस जिन्दा को आज भी गला दबाकर मार कर मृत नहीं कर सक रहा हूँ। वह वैसे ही जीवित है। और अधिकारी ? उसका शायद जीवन अस्वीकार के भी ऊपर हो। दिया हुआ अपनत्व वापस लौटाने का कोई मार्ग भी तो नहीं है। नहीं-नहीं। वरन् उस अपनत्व का दूरत्व, उसने उसे और भी निकट कर रखा है।

सुनते-सुनते सुनन्दा रोमाञ्चित हो उठी। उसके कठोर मन में आँसू उमड़ पड़े। मुँह फेरकर आगत आँसू को उसने छिपाया।

“चलो, कहीं लिए चलती हो।” तब शायद रवीन्द्र सहम चुका हो।

“आप कपड़े तो बदल लीजिए।”

“क्या जरूरत है ?”

एला के पलंग से जरा हट कर चौधरी साहब, श्रीनाथ, मनीश और डाक्टर आदि बैठे हुए थे। मृदु स्वर से बातें करते जाते। चौधरानी उसका सिर दबाती। नर्स दवा गिलास में डाल रही थी।

धीरे पट्टेची सुनन्दा रवीन्द्र को साथ लिए।

“इधर आइए।” — उसने रवीन्द्र को कहा। और सीधे उस एला के पलंग के निकट खड़ा कर दिया।

एला ने पति को देखा। उसके नेत्र-पल्लव भ्रुक रहे। उसने फिर

देखा और फिर देखा। मूर्ति की भाँति खड़े-खड़े रवीन्द्र अस्वस्थता अनुभव कर रहा था और मन ही मन उसी परिमाण में नन्दा पर चिढ़ रहा था।

निकट से सुनन्दा को जाते देखकर फुसफुसाकर कहा—

“अब देवी जी की क्या आज्ञा है ?”

सुनन्दा मुसकरा पड़ी। एला के निकट पहुँची। उसके कान में लग कर पूछा—“तुम्हें उनसे कुछ कहना है ?”

“नहीं, अब उन्हें जाने दो। मेरी इच्छा तुमने पूरी कर दी जीजी, उन्हें अब मत रोको। देखती नहीं, जाने के लिए किस तरह से छटपटा रहे हैं ?”

सुनन्दा रवीन्द्र के निकट पहुँची,—धीरे से बोली—“अब आप जा सकते हैं। और यदि जी चाहे तो बैठे हुए लोगों से बात कर लीजिए।”

भुँभलाहट भरी आँखों से रवीन्द्र ने सुनन्दा के प्रति देखा। और सब को नमस्कार करता हुआ द्वार के बाहर निकल गया।

सुनन्दा उसे पहुँचाने के लिए फाटक तक आई। बोली—“अनेक धन्यवाद।”

रवीन्द्र ने लौटकर कुछ कहना चाहा। और तुरन्त मुड़ कर चल दिया।

लौटी सुनन्दा कमरे में। जैसे अभी-अभी कुछ खो आई हो। चौधरी दम्पति गद्गद स्वर से बोले—“आज तुमने असाध्य साधन किया। ईश्वर तुम्हें चिर सुखी करे।”

सुनन्दा हँसी—व्यथा से भरी वह मलिन हँसी।

मनीश का तीक्ष्ण स्वर अद्भुत सुन पड़ा—“देखता हूँ इस बीच मि० गुप्ता से भाभी की खासी मित्रता हो गई है।”

खासी शब्द जिस जोर के साथ उच्चारित हुआ, उसका अतलस्पर्शी अर्थ किसी ने चाहे न समझा हो परन्तु जिसने समझा उसके मुख

भाव का जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ। यों उस कमरे में उपविष्ट प्रत्येक की दृष्टि मनीश पर आकृष्ट हो रही।

उस बात को समझने में मनीश को देर न लगी। वह मन में झुंझलाया। क्रोधित हुआ। उठा, और किमी से कुछ बिना कहे द्वार पर जाकर खड़ा हुआ।

उपविष्ट व्यक्तिगण एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उन दृष्टियों से बचती हुई सुनन्दा पीछे फिर कर स्टोव जलाने को बैठ गई।

[३२]

श्रीनाथ के बनारस जाने की तैयारी सुनकर नन्दा भी अपने छोटे से सूटकेस को सँवारे पहुँच गई—“मैं भी चलो दादू।”

“मैं बनारस जा रहा हूँ, बहन की क्रिया करने। शायद एक महीना लग जाए। उसकी सम्पत्ति की भी व्यवस्था करनी है। उनका था भी कौन ? बस एक नत् दामाद, कौन जाने दो-तीन महीना भी लगे, उतने दिन तुम रह सकोगी ?”

“क्यों नहीं। मुझे ले चलो दादू। यहाँ से ले चलो।”

उस आर्त स्वर ने श्रीनाथ को चौंका दिया, इस नारी के कंठ में ऐसा स्वर ?—“नन्दा—”

“लगता है मुझे—मैं थक गई हूँ, मेरा जी ऊब गया है। कुछ दिन बाहर रह आऊँ।”

“लेकिन तुम्हारे चलने से कैसे बनेगा ? मैं तो तुम्हारे ही भरोसे—मेरी गृहस्थी और मनीश को रखे जा रहा था।”

“किसी के बिना कुछ नहीं भटकता। सब कुछ चल जाता है दादू।”

“और कल्पना ?”

“मेरी बूढ़ी कहारिन राधा है। उसे घर पर रख आई हूँ। कल्पना के लिए जरा भी चिन्ता न करो।”

श्रीनाथ ने चहुँओर सतर्क दृष्टि से देखकर कहा— बात यों है। कहीं हम दोनों के चले जाने से मनीश अपनी पुरानी आदत में न लौट जाए। यानी शराब पीना न शुरू करे।”

“क्या वे अब बिल्कुल नहीं पीते ?”

“नहीं, बस उसी दिन से उसने छोड़ दिया है—जिस दिन तुम्हारे सामन उसने बोटलें फोड़ी थी। और एक खुशखबरी सुनाऊँ। अब वह लड़कियों के साथ सिनेमा या वाटिका आदि कही भी नहीं जाता। घर से निकलता कहाँ है ?”

“दिन भर घर में बैठकर वे क्या करते हैं ?”

“कुछ लिखता रहता है।”

“ऐसा ? क्या लिखते हैं वे दादू ?”

“कौन जाने। मोटी-मोटी कापियाँ हैं। दिन-रात लिखा करता है। शायद कविता हो नाँविल या तो कहानी हो। तुम नहीं जानती ? छोटे में यह बड़ी ही सुन्दर कविताएँ लिखा करता था। कुछ मैंने देखी थीं। अवाक् रह जाना पड़ा था लक्ष्मी इसकी प्रतिभा देखकर।

“तब ?”

“बड़ा होकर इसने सब कुछ छोड़ दिया। और मैं भी मानो उन बातों को भूल-सा गया था नन्दा।”

आज जैसे सुनन्दा का नव-नव विस्मय के साथ परिचय हो रहा हो।

“तुम्हारे घर मनीश नहीं गया क्या ?” श्रीनाथ ने पूछा।

“बहुत दिनों से नहीं गए। एला की बीमारी में मैं कुछ ऐसी व्यस्त रही कि किसी की खोज-खबर तक नहीं ले पाई।”

“मैं कुछ दिनों से उसे देखने नहीं जा सका। अच्छी तो हो रही थी। अब उसका क्या हाल है ?”

“अच्छी है, कमजोर बहुत है। धीरे-धीरे चल-फिर सकती है। बीमारी ने दादू उसके मन से लेकर आकृति तक सब कुछ का परिवर्तन कर दिया है।”

“ऐसा। देखो तो ईश्वर की लीला किसी ने भी नहीं सोचा था कि वह बचेगी।”

“नई जिन्दगी हुई उसकी। इस जीवन में वह फैशनेबुल रूप गर्विता एला का धन, शिक्षा के अभिमान में दूसरे को तुच्छ समझने वाली लड़की का एकदम ही परिवर्तन हो गया है। मैं तो कभी-कभी उसे देख कर आश्चर्य करने लगती हूँ।”

“अगर पहले से उसे यह समझ आ जाती, तो आज रवीन्द्र उसका त्याग न करता।”

“क्या किया जाए। आदमी का मन भी तो एक पहेली है। जानें कब वह किस ओर मुड़ जाय। तुम जल्दी-जल्दी तैयार हो लो दादू। मैं तब तक तुम्हारे कपड़े, बिस्तर रख लूँ। रास्ते के लिए कुछ बना लूँगी।”

“क्या जरूरत है? डाइनिंग कार में ताजा भोजन मिलता है। तुम साथ हो ही।”

“वे कहाँ है? मनीश बाबू?”

“आखिर वाले कमरे में। किसी को वहाँ जाने नहीं देता।” चुपचाप नन्दा चल दी।

द्वार अन्दर से रुद्ध नहीं था। नन्दा ने धीरे से खोला। भीतर पहुँची। आराम-कुर्सी पर आँखें बन्द किए, अर्द्धदग्ध सिगरेट हाथ में दबाए हुए मनीश पड़ा था। सिगरेट की राख कुर्सी के हाथ पर गिर रही थी, पहने वस्त्र में एक गोल छेद था। शायद सिगरेट से जन गया हो।

पहुँची नन्दा भीतर। आँखें गड़ाकर चहुँओर देखा, पुकारा धीर—
“मनीश बाबू !”

मनीश आँखें मलता हुआ उठ बैठा—“यहाँ कैसे भूल पड़ी भाभी ?” कहते-कहते उसकी दृष्टि मोटी कापी पर पड़ी, उठा। शीघ्रता से कापी उठाकर अलमारी में बन्द कर दी। ऐसी तत्परता से यह सब उसने किया, मानो लोकनेत्र के बाहर कोई अमूल्य वस्तु वह छिपाकर रखना चाह रहा हो।

कौतुहल से सुनन्दा उसके पीछे भ्रपटी।

“क्या छिपाया तुमने।”—कहकर उसकी दृष्टि आकृष्ट हुई अलमारी के पल्ले पर जड़े हुए दर्पण में, जिस लम्बे-चौड़े दर्पण में अनिच्छ सुन्दरी नारी आकृति अंकित हो रही थी। देखा और देखती ही रही भाई नन्दा।

पहले शायद वह कभी दर्पण के सामने खड़ी होकर प्रसाधन किया करती रही हो, शायद अपने रूप में वह कभी तन्मय भी हो जाया करती रही हो। और पति जब उसके रूप की प्रशंसा करते, कहते—“इतनी सुन्दर तुम क्यों हो नन्दरानी ? मुझे डर लगा रहता है। क्यों ? पूछ रही हो क्यों ? कभी अगर मुझसे हट जाओ, अगर मुझे भूल जाओ, किसी दूसरे को प्यार करने लगे तो ?”

कृत्रिम कोप से वह पति पर भुंभलाती और किसी बहाने वहाँ से उठकर ड्रेसिंग रूम में पहुँचती, दर्पण के सामने खड़ी होकर अपने को एक बार देख लेती। सुन्दर-सुन्दर वह ऐसी रूपवती।

वे दिन ? दर्पण में अपने को दस बार देखना ? वह सब तो कब का चुक गया है। तो उन बातों का स्मरण करना क्यों बच रहा है अब ? बस—उन देखे हुए स्वप्नों की अंगहीन स्मृति।

सो इन दिनों शायद ही नन्दा कभी दर्पण के सामने खड़ी होती हो, माथे पर सिंदूर भरती एक छोटा-सा आइना हाथ में लेकर, सो भी अनाग्रह भाव से।

देखने लगी सुनन्दा अपने आप को नहीं; वरन् नारी को, नारी के

रूप को, देखते-देखते उसे मोह हो आया। मोहित उसका अन्तर मानो विश्व, संसार को भूल कर, बिसर कर एक नारी-चित्र की क्षुद्र परिधि में भरम रहा।

एक समय स्वयं ही नन्दा अपने निजत्व में पहुँची, मन भुँझला उठा।—क्या यह पागलपन है ? सो भी जीवन की अन्तिम बेला में। और वह मनीश के निकट पहुँची, कहा—“बैठे ही बैठे सो गए ? कहो तुमने क्या छिपाया ?”

“चाहे जो हो।”

“ऐसा ? तो तुम मुझसे छिपाया भी करते हो ?”

“क्यों नहीं ? जब तक कि तुम अपना रहस्य, हर बातों को छिपा सकती हो, तब मैं क्यों न छिपाऊँ ?”

“अच्छी बात है, लेकिन मैं उस मोटी-ताजी कापी को देख कर ही रहूँगी।”

“ऐसा ! अच्छा देखें कौन जीतता है ? वह तुम्हें नहीं मिलेगी।”

“देखा जाएगा। हाँ, सुनो, दादू के साथ काशी जा रही हूँ।”

“तुम ? हटात् ऐसा राग्य ?”

“विचित्रता हीन जीवन, एक-सा वातावरण, ऊब गई हूँ मनीश बाबू।”

वह क्लान्त, श्रान्त स्वर, वह भी सुनन्दा लड़की के कठ मे ? निस्मय से मनीश ने आँखें उठाई, उसे लगा—नन्दा कमजोर हो गई है। स्वस्थ सबल देह में जैसे घुन लगा हो और लगता जा रहा हो।

“बैठो नन्दा, क्या तुम बीमार थीं ?”

मनीश की निकटवर्ती कुर्सी पर नन्दा बैठी, “नहीं तो।”

“बहुत कमजोर लग रही हो।”

नन्दा चुप रही।

“सचमुच जा रही हो भाभी ?”

“हाँ, थोड़े दिन घूम आऊँ न, जाऊँ ? तुम क्या कहते हो ?”

“जाओ, स्वास्थ्य तुम्हारा खराब हो रहा है। लेकिन जिन्हें तुमने पाल रखा है, उनका क्या होगा ?”

“पाल रखा है ? मैंने तो कोई भी जानवर नहीं पाला।”

“पाला कैसे नहीं ? नम्बर एक कल्पना, नम्बर दो मनीश, नम्बर तीन एला, चार—भाड़ पेड़।”

उसके कहने के ढंग से नन्दा हँस पड़ी। बोली—“राजा के बिना राज्य चलता है, तो मेरी कौन कहे ? सब कुछ चलेगा।”

“तुम डरती नहीं हो भाभी ?”

“क्यों भला ?”—कौतुक से नन्दा ने पूछा।

“मुझे इस तरह लावारिश की भाँति छोड़ देना। बिना गार्जियन के अगर फिर मनीश अपनी उच्छृंखलता में लौट जाए। यह कौन कह सकता है कि तुम्हारे चले जाने के बाद वह फिर से शराब पीना शुरू नहीं करेगा ?”

नन्दा मुसकराई—“मैं कह सकती हूँ।”

“क्या ?”

“मनीश अब शराब छू भी नहीं सकता।”

“क्यों ?”

“तब नन्दा भी शराब पीने लगेगी—उसी मनीश की भाभी।”

मुग्ध मनीश नन्दा को देखने लगा। देखते-देखते बोला—“रहस्यमयी: सुनन्दा, क्या अन्त तक मेरे पास पहेली ही बनी रही आएगी ?”

“जल्दी क्या है ! एक दिन सब कुछ कह दूँगी।”

“वह एक दिन कब हागा ?”

“कभी होगा ही।”

मनीश चुप रहा। देर के बाद उसने पूछा—“तुम्हारे पति हैं, याने अभी जीवित है भाभी ? इतना तो कह सकती हो।”

“है ? वरना माँग किसके नाम पर भरती हूँ ?”

कौतुक-परिहास से मनीश बोला—“क्यों ? मेरे नाम से ।”

नन्दा हँसते-हँसते चौटने लगी—“धत्, स्त्री का विवाह कहीं बार-बार होता है ? एक बार होता है, बस सिन्दूर एक ही के नाम पर लगाया जा सकता है, दस के नाम पर नहीं ।”

“क्यों भला ?”

“अजी तब उसका महत्व और पावनपन कैसे रह सकता है ?”

जरा चुप रहकर मनीश ने कहा—“अच्छा भाभी, सच तो कहो ।”

“क्या ?”

“तुम्हारे मन में अब भी पति के लिए प्रेम है ?”

हँसकर बोली—“ऐसी बातें नहीं पूछा करते ।”

“न पूछूँ ?”

“नहीं ।”

“अच्छा यह बतलाओ, क्या वे अब तक पाकिस्तान में ही हैं, या हिन्दुस्तान में ?”

“यह भला मैं क्या जानूँ ?” सुनन्दा उठी, कहा—“जाने की तैयारी करनी है ।”

“सचमुच जा रही हो ?”

“इच्छा तो है । क्या न जाऊँ ?”

“जाओ भाभी । तुम्हारे लिए वायु परिवर्तन की जरूरत है । लेकिन मजाक नहीं, अपने पालतू लोगों की व्यवस्था करती जाना । पीछे कहीं भँभट न हो ।”

“उनके लिए मैं सब कुछ बन्दोबस्त कर चुकी हूँ ।”

“कर लिया है ? अच्छा किया ।”

“मेरे जितने भी पाले हुए आदमी और गाय, भैंस, पेड़-पौधे हैं, उनकी देखभाल करेगा — मनीश ।”

“मैं ! ओ भाभी, मैं ? क्या कह रही हो मैं ?”

प्रशान्त स्वर में वह बोली— “तुम्हारे बिना तुम्हारी भाभी का दायित्व कौन संभालेगा ? कौन निभाएगा ? चलो, चाय पी लें ।”

मन्त्रमुग्धवत् मनीश नन्दा के पीछे चल पड़ा ।

[३३]

पन्द्रह दिनों की जगह जब तीन माह व्यतीत कर सुनन्दा घर लौटी, तब उसे अपने ही घर को पहचानने में विलम्ब हुआ । उस गृह का मानो काया-कल्प हो गया हो । सफेदी-मरम्मत आदि तो किया ही गया । उपरान्त नीचे बड़े-बड़े कई कमरे, दालान बनाए गए थे । एवं बगल वाली पड़ी हुई जमीन को मकान के साथ मिलाकर, सुव्यवस्थित कमरे आदि बने थे । उसकी गाय के रहने का स्थान तक सुन्दरता से बन गया, वहाँ मोटी-ताजी कई भैंस, बकरियों को देखा । बगीचे की उन्नति हर्ष उपजाती थी ।

नन्दा के गले से लिपटकर कल्पना रो पड़ी—“क्यों, क्यों तुम दादा जी के साथ नहीं लौटीं ? क्यों तुमने इतनी देर लगा दी ? और मुझे इतने दिनों तक अपने से अलग रखा ?”

उसकी पीठ पर आदर से थपकियां देती हुई नन्दा कहने लगी—“वहाँ मेरा जी लग गया । वहाँ मेरे पाकिस्तान की एक सहपाठिनी मिल गई । उसने जबरन रोक लिया ।” कल्पना से निपटी तो एला की बारी आई ।

अब तक वह निकली नहीं थी, नन्दा को चकित कर देने के लिए छिपी हुई थी । पीछे से उसने नन्दा की आँखें हाथों से बन्द कर लीं—“कहो मैं कौन हूँ ?”

‘एला है तू।’

और इसके बाद एला मुँह फेरकर बैठ गई—“मैं तुमसे नहीं बोलती जीजी। कभी नहीं बोलूँगी, मुझे बीमार छोड़कर आप बनारस में जाकर बसों। यह मेरी जीजी है, नहीं बोलती ! जाओ।”

नन्दा ने उसे भी मनाकर शान्त किया। एला को देखकर नन्दा घर द्वार के पूर्ण संस्कार का रहस्य समझ गई।

“जीजी, अब मैं यहाँ रहने लगी, उस घर को छोड़ दिया। कल्पना बहन से सख्त मनाई कर रही थी कि तुम्हें न लिखें। मुझे देखकर तुम आश्चर्य में पड़ी थीं ?”

किन्तु जिसे इतनी बातें कही गईं, तब वह गम्भीर चिन्ता में पड़ी हुई थी। और चिन्ता का विषय वही एला थी।

“जीजी, मेरे यहाँ रहने से तुम नाराज हो गईं ?”

“यहाँ आकर शायद तुमने जन्म भर के लिए पति-गृह का द्वार बन्द कर दिया, अपने लिए एला !”

“सुना ही कब था। लेकिन क्यों ?”

“शायद कभी खुल जाता।”

प्रबल वेग से सिर हिलाती हुई एला बोली—“नहीं, नहीं-नहीं, थोड़े ही दिनों में मैंने उन्हें जो कुछ जाना-पहचाना, उसका निचोड़ तो यही है जीजी, कि सदा के लिए उन्होंने मुझे त्याग दिया। और अगर न भी त्यागा होता और यहाँ रहने से वे मुझे त्याग देते तो मेरे लिए वह त्यागना ही वांछनीय होता। देवी के पावन मन्दिर को अगर कोई संकीर्ण गंदी दृष्टि से देखे,—देखा करे, देवी के सेवकों को इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। और रहा ही करती है। समझी जीजी ? तो भी पूछती हूँ—क्यों ?”

“यह तो एक पतिता का घर है न एला।”

एला खिलखिला कर हँस पड़ी—“देखा ? मेरा निष्कर्ष ठीक

निकला न ? इसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया है । तुम कहो चाहे न कहो, यों मेरे आने से तुम खुश हो, इस बात को मैं शपथ-पूर्वक कह सकती हूँ ।”

अब हँसने की बारी थी सुनन्दा की, कहा—“यदि जानती थी तो पूछा क्यों ?”

“यह सुनने के लिए कि देखूँ, तुम क्या कहती हो । कितना अन्याय है जीजी, बिना दोष के पति ने त्याग दिया, फिर पिता ने अपने घर जगह देने से इन्कार किया । तो मैं जाती कहाँ ? जाऊँ कहाँ ? क्या गुब्बारे की भाँति शून्य में लटकती रहती ?”

कल्पना बोली—“ठीक तो कह रही है एला ।”

धीरे बोली सुनन्दा—“बिना दोष के नहीं एला, अपना कसूर समझना सीखो । तुमने अन्याय किया, गलती की, वह तो मानना ही पड़ेगा । मैं मानती हूँ, घर से छिपकर एक-दूसरे आदमी के साथ चले जाना केवल लड़कपन था, केवल उत्तेजना और सिनेमा का प्रलोभन ही रहा है । सब के निषेध की अवहेलना कर सिनेमा में एक्टिंग करना, यह सब अन्याय और हठकारिता है ।”

“लेकिन जीजी, पूरी बातें तो देखो, मैं अपना कसूर सर्वान्तःकरण से मानती हूँ, लेकिन दूसरों का क्या कुछ भी दोष नहीं है ? सोच कर देखो ।”

“यानें ?

“मुझे बचपन से जो शिक्षा मिली, सो तुम जानती हो, मैंने मनमाना नहीं किया, ममी सब में उत्साह देती रहीं ।”

“परन्तु पिता का निषेध रहा करता था ।”

—बीच में नन्दा ने टोका ।

“ठीक है, लेकिन मेरा आदर्श तो ममी ही रही न । उधर जिनसे शादी हुई, उन्होंने मुझे क्या दिया ? केवल स्वार्थ, अवहेलना । अगर

वे मुझे प्रेम देते, स्नेह से अपना लेते तो शायद आज मेरी जिन्दगी बेकार न होती, मैं कुछ और ही होती। मेरी समझ में बात अब तक नहीं आई जीजी, कि अगर उनके मन में कोई एक घर किए हुए बैठी थी, तो मुझमें शादी करने की, मेरी जिन्दगी बर्बाद करने की क्या जरूरत थी ? हो सकता है वह स्त्री उनके पहले की पत्नी हो या कोई और हो लेकिन मुझे क्यों घसीटा ? अपना कसूर मैं मानती हूँ। क्या और सब निर्दोष है ?”

न जाने क्यों मुनन्दा ने मस्तक अवनत कर लिया और मौन वह उठकर चलने लगी।

“कहाँ जा रही हो जीजी ?”

“मनी बाबू से मिल आऊँ।”

“अभी ? नहीं, पहले स्नान-भोजन कर लो, तुम बहुत कमजोर हो रही हो, क्यों भला ?”

“कुछ दिन बुखार आ गया था।”

स्नान-भोजन कर मुनन्दा श्रीनाथ के घर पहुँची, उनसे मुलाकात कर मनीन्द्र के कमरे में गई। मनीश कहीं बाहर गया हुआ था, वह मोटी कापी पलंग पर खुली पड़ी थी। नन्दा को बहुत दिनों से उस कापी का लोभ था। उसने कापी हाथ में उठाली, अंधूरे लिखे हुए उपन्यास के पन्ने पलट-पलट कर देखने लगी, और मनीश के पलंग पर तकिए पर मस्तक रखकर लेट रही।

उपन्यास का तब तक शीर्षक नहीं दिया गया था। उसने पढ़ना शुरू कर दिया और पढ़ते-पढ़ते उसमें ऐसी खो गई कि सारा संसार ही उसके निकट शून्य हो रहा।

संध्या के आँचल में केसर के फूलों से सब गृहस्थों के घर दीप जलना शुरू हो गया था। दिनभर आहार के अन्वेषण में व्यस्त रहकर और गृहस्थों को दिक् करके थके हुए कागों का जत्था बसेरा ढूँढ़ता हुआ

इधर-उधर भागता चला जा रहा था। ऊँचे वृक्षों पर गिद्धों की टोली बठती जा रही थी।

तब उस अंधूरे उपन्यास को शेषकर स्वप्न में सनी-सी नन्दा ने कापी बन्द करने के साथ ही साथ आँखें भी बन्द कर ली।

कापी उसके उद्वेलित हृदय पर पड़ी रही आई। उसके बन्द नेत्रों के भीतर उसी का जीवन जैसे सिनेमा चित्र की भांति एक के बाद एक दूसरा, और तीसरा सीन निकलता चला जाने लगा।

उसका अनुभव गंभीरतर हुआ—यह मनीश बाहर से जो मात्र शिशु-सा ही लगता है, उसमें ऐसी विद्वत्ता, गंभीर ज्ञान ही नहीं, वरन तीक्ष्ण जानकारी भरी पड़ी है ! नहीं, ऐसा विस्मय तो जीवन में कभी आया ही नहीं। सुनन्दा का जीवन-इतिहास, जोकि संसार के सामने आज तक एक रहस्य ही रह गया है, उस रहस्य को इस लड़के ने एक्सरे में दीखते हुए चित्र की भांति कब पढ़ डाला ? कब और कैसे देख डाला ?

“भाभी”

सुनन्दा ने आँखें खोलीं। मनीश उसके निकट पलंग पर बैठा हुआ था। नन्दा ने आँखें खोलीं सो ठीक है। उसे पहचाना, वह भी कदाचित् सही हो। किन्तु उन खुली हुई आँखों में स्वप्नलि छाया अन्तर्धान नहीं हो पाई थी।

“भाभी—ओ भाभी।”...नन्दा को हिला-हिला कर वह पुकारने लगा।

“तुम...तुम मनीश बाबू ! इस कलाकार को कहाँ पर अब तक छिपा रखा था तुमने ?”

“भाभी।”

“पूरा करो। इस कहानी का अन्तिम परिच्छेद शेष करो। मनीश बाबू...शेष-शेष।”

“लेकिन जल्दी क्या है ?”

“और मुझ तो जल्दी है।”

मनीश ने आँखें गडाकर नन्दा को देखा, सिहर उठा...“इतनी कम-जोर तुम्हें आगे कभी-नही देखा था। यह क्या हो गई हो नन्दा रानी ?”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं। अन्तिम परिच्छेद...”

और वह मनीश को देखन लगी।

“क्या देख रही हो भाभी ?”

“मैं देख रही हूँ सुनन्दा की जीवनी लिखने वाले संसार के श्रेष्ठ कलाकार को। विस्मय ! तुमने मेरी प्रत्येक बात को कैसे जान लिया ?”
नन्दा उठकर बैठ गई।

मनीश ने पुनः पूछा—“क्या तुम बीमार थी !”

“ऊँहूँ।”

“ऐसी कमजोर ! जरूर तुम्हें कोई तकलीफ है। अपने ही मनीश से न बतलाओगी भाभी ?”

और मनीश की भाभी तब अपने आप में लौट चुकी थी।

“वहाँ का पानी कुछ खराब था। देखना, अब ठीक हो जाऊँगी।”

श्रीनाथ ने दरवाज पर आकर पुकारा—“लक्ष्मी ! आज हम साथ में बैठकर खाना खाएंगे। कहीं चली न जाना।”

“अच्छा दादू।”

[३४]

दीर्घ दिनों के बाद मनीश सुनन्दा के घर पहुँचा। सो भी नन्दा के निमंत्रण से। एला तथा कल्पना के वहाँ जाने के बाद से उसने नन्दा के घर जाना एक प्रकार छोड़ ही दिया था।

उस घर का परिवर्तन देखकर वह विस्मित हुआ। श्रीनाथ कल्पना

के साथ घूम-घूमकर बगीचा आदि देखने लगे ।

हँसमुखी सुनन्दा पहुँची, कहा—“आजकल तो मनीश बाबू उमर का फूल बन रहे हैं । बिना निमंत्रण आते ही नहीं ।”

उतर देने जाकर मनीश स्तब्ध हो रहा । एला पान की तश्तरी लिए पहुँच गई । किंतु उस एला की वेश-भूषा से लेकर आमूल परिवर्तन तक को देखने का अवसर मनीश को नहीं हो पाया । सुनन्दा को देखकर मनीश के मुख पर खेद, आशका का चिह्न स्पष्टतर हुआ ।

“अजी, यह भी कोई देखना है ? तुम मुझ में क्या देख रहे हो ? क्या कभी भाभी को देखा नहीं ? नई बन गई हूँ ?” सुनन्दा हँस रही थी ।

“कंकाल का ढाँचामात्र रह गया है । उसी ढाँचे को देख रहा हूँ । इस सरती हुई भाभी से मेरी पहचान नहीं थी ।”

नन्दाने उत्तर नहीं दिया, उत्तर दिया एला ने—“आप ठीक कह रहे हैं मनीश बाबू, जीजी बहुत कमजोर हो गई है, यहाँ तक कि कभी कभी बेहोश हो जाती है, खाना खाती ही नहीं, ‘भूख नहीं है,’ कह देती हैं । और काम के बिना जिस जीजी का पल भर समय नहीं कटता था, वही जीजी शाम हुई कि बस बिस्तर पर लेट जाती है, देखा—आपने ? इनके मुँह पर सूजन है ।”

“दादा जी तो यहाँ आते रहते हैं । आश्चर्य, वे कुछ नहीं कहते ! न मुझ से कुछ कहा ।”

“वे बेचारे सदा कहा करते हैं, वैद्य जी को लिवा लाएँ लेकिन जीजी ने हँसकर टाल दिया । अपनी नब्ज तक नहीं दिखलाई ।”

“हूँ” —?मनीश ने, बस ‘हूँ’ ही कहा । एला पान की तश्तरी रखकर चली गई ।

“आत्महत्या कर रही हो नन्दा ? लेकिन किस लिए ?”

मनीश के प्रश्न को नन्दा ने सुना और जरा-सा मुस्करा कर बोली—
“तुम्हारे लिए ।”

चाहे रहस्य मे वह बात कही गई हो, या सच हो। मनीश चौक उठा।

“मैं आत्महत्या कर रही हूँ। यह सूझ क्यों कर हुई ?”

“देखो भाभी, चाहे तुम कितनी ही बुद्धिमती क्यों न हो, लेकिन मुझ से छिपा न सकोगी। मैंने तुम्हें शायद कुछ-कुछ पहचाना है। तुम्हें ऐसी कौन-सी जरूरत पड़ गई जो तुम इस तरह अपनी जान देने के लिए बैठी हो ?”

हँसकर मुनन्दा के उत्तर दिया—“जरूरत भी कही—कह मुनकर, सोच-समझकर होती है ?”

“हूँ, क्या मैं मुन सकता हूँ, इस आत्महत्या का सच्चा कारण क्या है ?”

“तुम हो, बस तुम्हारे लिए आत्महत्या की जरूरत पड़ गई है।”
नन्दा हँसती हुई बोली।

“लेकिन क्यों ? एक नीरव उपासक के लिए इसकी क्या जरूरत थी भाभी ?”

“कितु नीरवता का जो प्राण है, दुआ करता है और होता है सर्व-ग्रासी एक मीन आकर्षण। जानते हो न उसे ?”

मनीश ने पूर्णदृष्टि से उसे देखा। अपूर्व तृप्तता से उसके मुख की रेखाएँ सरल हो उठी, पुकारा—“भाभी।”

“कैसी मुश्किल है ? अजी, मैं किसी के लिए नहीं मर रही हूँ, न तुम्हारे लिए, न कल्पना के लिए, न ही एला के लिए। बीमारी है। बस भूख नहीं लगती, आलसता में शरीर और मन डूबा रहता है। बस, जरा-सी तो बात है।

“हूँ।” कहकर मनीश उठा।

मुनन्दा द्वार रोककर खड़ी हो गई। “मैं तो मर मरकर इनके लिए भोजन बनाऊँ और यह चलने लग गये। वाह ! यह भी कोई मजाक है ?”

“हटो भाभी।”—कहकर मनीश ने नन्दा का हाथ पकड़कर उसे

हटाना चाहा। उसके गरम शरीर का स्पर्श कर वह सिहर डठा—

‘तुम्हें बुखार भी रहता है ?’

“नहीं तो।”

“नहीं क्या ? खासा बुखार है। हटो, पहले डाक्टर को लिवा लाऊँ तब स्नान-भोजन करूँगा।”

‘खाना खराब हो जाएगा।’

“जाने दो। अभी आया।”

सुनन्दा श्रीनाथ तथा मनीश को हँस हँसकर तरकारियाँ परस रही थी—“छ्छा, की तरकारी तो और ले लो दादू। तुम्हें यह ज्यादा पसन्द है। और मछला का दम मनीश बाबू तुम्हारे लिए बनाया है। जानो तो सही पुलाव किस चीज का बना है ? कह न सके न ? चावल के साथ यह जो डाले हुए है, यह गोस्त मछली कुछ भी नहीं है, इन्हें गुच्छी कहते हैं। काश्मीर में यह पैदा होते हैं। खाओ न।”

“आज डाक्टर ने जो कुछ कहा है लक्ष्मी, उसके बाद खाना खान की इच्छा बिल्कुल ही जाती रही है।”

“दादू, तुम भी डाक्टर की बातें मानते हो। डाक्टर लोग तो कुछ न कुछ कहा ही करते हैं, तभी तो मैंने अब तक डाक्टर नहीं बुलाया।”

“भाभी तुमने बुद्धिमानी का काम किया। कहीं डाक्टर आकर मौत न रोक दे।”

मनीश की बातों से नन्दा हँसी और कटहल के दो बड़े-बड़े कट-लट उसकी धाली में डालकर कहा—“पहचानो यह कौन-सी चीज है ?”

दिन कटते चले जाते, नन्दा का शरीर क्रमशः अशक्त होता जाता। तब नन्दा घूप-छाँह में पैर फँसाकर दीवाल से लगी हुई बैठी थी, रक्त शून्य मुख पर क्लान्ति थी। फल की तश्तरी आगे रखकर कल्पना बठी उससे बातें करती जा रही थी।

‘अब फल भी नहीं खाना है ? सबेरे से बस दो चम्मच हार-

लिव्स पेट में गया है।”

“कुछ खाने की इच्छा ही नहीं होती कल्पना, मैं क्या करूँ ?”

“भला यह भी कोई बात है ? बेचारे मनीश बाबू, सुबह-शाम दौड़े घाते हैं, कहीं कुछ, कहीं कुछ तुम्हें खिलाते रहते हैं। उनके सामने जरा कुछ तो भी पेट में चला जाता है। मैं कैसे मानूँ जीजी, कि दिन-रात तुम्हें भूख ही नहीं लगती ?”

“नहीं लगती, मुझे भूखों रहने का चाव थोड़े ही है।”

“है ही, तुम जान बूझकर अपनी जान दे रही हो। भना यह जान किसके लिए देना ?”

हँसकर सुनन्दा ने वही एक उत्तर दिया—“तेरे लिए।”

“मेरे लिए ? अरे क्यों ?”

“जरूरत आ पड़ी है।”

“जरूरत ?”

“हाँ, कल्पी, दुनिया में बस यही एक जरूरत ही तो है, जो कि आदमी को आज आदमी कहला सकी है, बना सकी है। आदिम मानव की जरूरत ही ने उसके प्रत्येक प्रयोजन की वस्तु को अपने-आप खोज निकाला है। वही कह रही थी। जरूरत एक ऐसी चीज है, जो कि अपनी पूर्ति, अपना प्रयोजन स्वयं आदमी से सिद्ध करवा लेती है। और आदमी एक साधनमात्र है।

अचम्भे से कल्पना नन्दा को देखने लगी। फिर हँस पड़ी—“तुम मुझसे मजाक कर रही हो जीजी ?”

नन्दा भी हँसने लगी, किन्तु उस हँसी में उसके प्राण की स्फूर्ति नहीं बोल रही थी।

“तुम यों न खाओगी, मैं एला बहन को भेज देती।”

हल्ला मचाती हुई एला पहुँची, वैसे ही चिल्लाती हुई बोली—
“अरी जीजी, तुम अपनी जान देकर ही दम लोगी, लो खाओ।” उसने

सेव का टुकड़ा उठाया और नन्दा के मुँह में भर दिया । फिर दूसरा और तीसरा, चौथा ।”

“बस कर मेरी मीठी एला । देख मेरा पेट कैसा कड़ा पत्थर-सा हो रहा है । लगता है कि गले तक भरा हुआ है । और तू मान एला, कुछ भी पेट में जाता है तो बड़ी तकलीफ होती है ।”

“सब बातें तुम्हारी बनाई हुई हैं । कल मैंने अपनी आँखों से तुम्हें दवा फेंकते हुए देखा था । तुम आत्महत्या कर रही हो जीजी, लेकिन क्यों ? किसके लिए ?”

नन्दा ने इस तीसरे प्रश्नकर्ता को भी वही एक उत्तर दिया—

“तेरे लिए ।”

“मेरे लिए ?” एला अवाक् रह गई ।

“समझी ? तेरे लिए ।”

“क्यों जीजी, तुम्हारे मरने से मेरी कौन-सी भलाई होगी ? बरन् और खराबी होगी, बर्बाद हो जाऊँगी ।

“नहीं ।”

“फिर भी भूठ ? कहो न जीजी, क्या भलाई होगी ?”

“मेरे कहने की क्या जरूरत ? एक दिन अपने आप समझ लोगी ।”

“तुम दिन पर दिन पहेली बनती जा रही हो जीजी ।”

‘तुम उस पहेली को बूझो तो भला ?’

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं ।

डाक्टर के साथ मनीश ने आते हुए कहा—“आज तो बड़ी खुश जान पड़ रही हो भाभी ?”

“मैं न-खुश कब रहती हूँ ?”

डाक्टर ने सर्व प्रथम ज्वर का चाट देखा । मुख अप्रसन्न हो उठा । कहा—“बुखार दिन-रात एक-सा रहता है, मनीश बाबू, देखू ।” सब चुप थे ।

बह-बहा उठा। उस टफटाहट से सब की आँखें ऊपर उठीं, बाहर से उड़कर आया हुआ एक तीसरा—उस घोंसले में प्रवेश करना चाह रहा था। पक्षी—छटफटाने लगे।

देख रही थी नन्दा उस घोंसले को, विरक्ति से उसके नेत्र कुञ्चित हुए। फिर धीरे-धीरे अद्भुत एक अपरिचित आभा उन नेत्रों में व्याप्त हुई। धीरे, अति धीरे नींद उन आँखों में उतर आई।

सुप्त था संसार, सुप्त था वह सुनन्दा का गृह, सुप्त थे उसके उद्यान के वृक्ष-लता। केवल जाग रही थी एला। वह सूना घर उसे निगलने-सा दौड़ता। माधवी लता के भीतर वह जाग कर बैठी थी, न जाने उसके मन में कौन-सी कथा, कौन-सा चित्र भरम रहा होगा।

मनुष्य की पद-ध्वनि से, पत्र-पल्लवों की आड़ से चकित उसकी दृष्टि उस ओर पड़ी। हाँ, वह मनुष्य ही था—जो कि धीरे चलकर—उस आम्र वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ। फिर झुकी हुई डाल पर से लटकते हुए पक्षी के घोंसले को देखा। हाथ से उस छुआ और उसी प्रकार देर तक खड़ा रहा। गिरजे की घड़ी में रात्रि दो की घटी टन-टनाई। स्वप्नोत्थित की भाँति व्यक्ति जागा-सा। धीरे-धीरे नत मस्तक-सा वह फाटक की तरफ चल दिया।

विस्मित एला ने पहचानना चाहा किन्तु अधखिली चाँदनी में पहचान न सकी। दीर्घश्वास त्याग कर एला उठी। उसके आगे को अग्रसर पैर वहीं रुक गए। मन्त्र मुग्ध की भाँति वह देखने लगी उस दूसरे आए हुए व्यक्ति को। एला ने गम्भीर विस्मय से देखा, यह व्यक्ति भी उसी घोंसले वाले आम्र वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया। उसने भी घोंसले को स्पर्श किया। घड़ी ने चार बजा दिए। धीरे वह चल दिया। और उस अपूर्व विस्मय के एक जीवित स्वप्न को हृदय में लिए एला अपने सूने घर में लौट आई।

